श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स,
संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी—
श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

(३) वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय, कानपुर।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली।—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ,	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	जगाधरी
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जीजैन,	ज्वालापुर
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर	मेरठ
१७	,,	मन्त्री जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सर
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसादजी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलालजी जैन, संघी,	जयपुर

२२	श्रीमान्	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, जैन	गिरिडीह
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	गिरिडीह
२६	,,	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
२८	,,	गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा,	लालगोला
२९	,,	दीपचंद जी जैन ए० इंजीनियर,	कानपुर
३०	,,	मंत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,,	संचालिका, दि० जैन महिलामंडल, नमक की मंडी,	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,,	मक्खनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,,	मोलहड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	,,	दिगम्बर जैनसमाज गोटे	गाँव
३९	,, ❀	गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४०	,, ❀	बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा,	झूमरीतिलैया
४१	,, ❀	इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४२	,, ❀	सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बखाशया,	जयपुर
४३	,, ❀	बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ.	सदर मेरठ
४४	,, ❀	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५	,, ×	जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
४६	,, ×	जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामों के पहले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिस नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

मैं वह हू जो हैं भगवान, जो मैं हू वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ विराग वितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥ ४ ॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥ ५॥

❀ जैन धर्म की जय ❀

योगिभक्ति प्रवचन

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ मनोहर जी वर्णी]

जातिजरोरुरोगमरणातुरशोकसहस्रदीपिता,
दुःसहनरकपतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्धचेतसः।
जीवितम्बुबिन्दुचपलं तडिदभ्रसमा विभूतयः,
सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्तमाश्रिताः ॥१॥

योगसाधना—यह योग भक्ति है, इसमें योगी महापुरुषोंकी भक्ति की गई है। योगका अर्थ है उपाय अथवा लगना या जुड़ना। योग शब्द युज धातुसे बना है जिसका अर्थ है लगना, जुड़ना, उसीका रूप योजना है, जिसका भाव उपाय है। जब कि इस संसारमें नाना दुःख हैं और इसमें रंच संदेह भी नहीं है तब यह कर्तव्य होता है कि इन दुःखोंकी करतूतसे तो हटें और जिसमें शान्ति मिले ऐसे पावन कर्तव्यमें जुटें। खोटे उपायों से, संसारके यत्नोंसे हटकर मुक्तिके यत्नमें जुटनेका नाम योग है। जो ज्ञानी विरक्त संत पुरुष तत्त्वका निर्णय कर लेते हैं, अच्छी तरहसे जब जान जाते हैं कि यह सारा संसार दुःखोंसे भरा है तब वे यहाँसे हटकर शान्तिके लिए कहीं वनमें एकान्तमें रहकर साधना किया करते हैं।

संसारमें जन्म मरणका मूल क्लेश—संसारमें अनेक दुःख हैं और उन दुःखोंका मूल दुःख है जन्म और मरण। जैसे बाँसके पोरमें बीचमें कोई कीड़ा बैठा हो और बाँसके दोनों तरफ आग लगी हो तो जैसे उस कीडे को दुःख है, उसे विवश होकर बरबाद होना पड़ रहा है इसी प्रकार समझिये कि भवके बीचमें यह जीव है और भवके एक ओर तो जन्मकी आग लगी है और एक तरफ मरणकी आग लगी है तो जन्म और मरणकी आग जिसके दोनों ओर छोर पर लगी है ऐसे भवके जीवनमें पड़ा हुआ यह प्राणी नाना तरहसे दुःखी होता है, बरबाद होता है। संसारका और स्वरूप है ही क्या? भव ग्रहण करते जाना। भव मायने पर्याय। जैसे मनुष्यभव, पशुभव, पक्षीभव। तो इन पर्यायोंको ग्रहण किया तो हुआ क्या? पहिले जन्म हुआ और अब मरण हुआ। तो जन्म और मरणके बीचमें यह जिन्दगी है। तो जिस जीवनमें पहिले तो जन्मकी आग लगी है, बादमें मरणकी आग लगी है, ऐसे बीच जीवनमें जो जीव दुःखी होता

है, संकट सहता है वह संकट बहुत विशाल संकट है। कितने जन्म लिये अब तक ? अनन्त और अनन्त ही मरण हुए। तो अनन्त जीवन पाये, उन जीवनों में बहुतसे सुख भोगे, साम्राज्य भोगे, बडे नायक बने, बड़ा महत्त्व पाया। पर उन अनन्त भवोंके सुखमें से किसी भी भवका सुख आज साथ है क्या ? वे सब ऐसे गुजर गये जैसे कि हुये ही न हों। तो ऐसे ही इस भवमें जितना जीवन है उसमें जो कुछ पाया है यह सारा सुख ये सब सुख ऐसे ही हो जाते हैं कि जैसे हुये ही न थे।

मोहियोंकी स्ववश वेदनासहनमें कायरता—यह जीव विवश होकर तो सब कुछ सह लेता है पर स्ववश कुछ सहन नहीं करना चाहता। पशु बनता है, बोझा ढो लेना पड़ता है, मारपीट भी सहते हैं, सब दुःख सह लेते हैं और उन्हें क्या कहें, मनुष्य भी परवश होकर सब दुःख सह लेता है। कभी भोजन न मिला तो एक दो दिन भी भोजन बिना रह लेते हैं और भूख सह लेते हैं। एक बार हम एक बडे कस्बेमें गये तो वहाँ एक स्कूलमें हमें ठहराया गया। वह स्कूल बन्द हुए कोई १२ दिन हुए थे, सभी किवाड़ बंद कर दिये गए थे, जब हमारे ठहरने के लिए दो चार कमरे खोले गए तो एक कमरेमें से एक कुत्ता निकला, जिसका पेट भूख प्यासके मारे बिल्कुल सूख गया था, मात्र हड्डियाँ शेष रह गयी थीं, पर वह जीवित था। तो वह कुत्ता बिना खाना पीनाके किस तरह रहा होगा ? लेकिन मुसीबत आ जाने पर वह कुत्ता मुसीबत सहता रहा। तो जब मुसीबत आती है तो सब बातें सह ली जाती हैं। कई दिन तक भूख भी सहनी पड़े, दूसरोंके अपमान भी सहने पडे, मनके विरुद्ध अनेक बातें हों, उन्हें भी सहना पडे, पर यह मनुष्य राजी होकर, स्वयं उसे तपश्चरण मानकर सहन करने को तैयार नहीं होता। जैसे बतलावो दिनमें दो बार भोजन कर चुकनेके बाद फिर बार-बार भोजन करने की जरूरत क्या ? बार-बार भोजन करते हो क्या जिन्दा रहने के लिए या शरीर पुष्ट रखनेके लिए ? पर कहा जाय कि दो ही बार भोजन करना चाहिये, सुबह जल्दी कर लिया और शामको सूर्यास्तके बाद कर लेना चाहिये। इससे रातभर पेटको विश्राम तो मिलेगा स्वास्थ्य तो सुधरेगा, पर अनेक लोगों को यह बात भी बहुत कठिन मालूम होती है कि घरमें सब प्रकारके आरामके साधन हैं। अभी इतने आरामके साधन न होते तो सब बातें सह ली जातीं।

सम्यक् अवबोध और आचरणकी कलाकी आवश्यकता—अनेक प्रकारके आरामके साधन पाकर संयमचारित्रका पालन नहीं किया जा पा रहा। यह तो एक बात कही है। वैसे तो जीवका जैसा उदय है, जैसा भवितव्य

है, जैसा उनका परिणमन है, होता है औरोंपर दृष्टि देनेसे क्या लाभ है? प्रकरण आने पर कहा है, मगर खुद अपने आपको कल्याणकी बात सोचना चाहिये। जगतमें कोई किसीका सहाय नहीं है। कितने ही आराम के साधन हों पर उन साधनोंमें आसक्त होकर इस जीवनको व्यर्थमे न खो दें, किन्तु सयमका, चारित्रका, सावधानीका जरूर यथाशक्ति यत्न करना चाहिये। पर जिसमें जंसी बुद्धि है वह वैसा करता है। अब भी बड़े-बडे घरोंमें स्त्री पुरुष सभी बडे संयमसे रहते है। इन बडे-बडे आरामके साधनोंको पाकर भी इस जीवनको व्यर्थमें खो देने पर कुछ भी तत्त्व हासिल न होगा। अगर सम्पदा पायी है तो मनमाने स्वच्छन्द होकर असयमसे रहना और प्रभुस्मरणमें मन न लगाना—यह बात तो इस जीव के लिए भली नहीं है। यह ससार समस्त दुःखोंसे भरा हुआ है।

अनित्य समागम और सुखभ्रम—इस लोकमें एक को दूसरा दुखी नजर आता है, मगर स्वय ही स्वयकी बात जान सकते हैं। भले ही २४ घटेमें कुछ समय ऐसा मिलता है कि जहाँ हँसते भी हैं, खुश भी होते, कुछ मौज भी होती है, पर अनेक बार ऐसा भी होता है कि शोक करना पड़ता है, झुँझलाहट होती है, गुस्सा करना पड़ता है, बुरा लगता है, दूसरे लोग सुहाते नहीं है। तो क्या इनमें प्रकट कष्ट नहीं है? और फिर वर्षमें या कभी अचानक कोई घटना घट जाय, उपद्रव आ जाय, धन जन पर लुटेरों द्वारा आक्रमण हो जाय तो कितना क्लेश होता है? सुख में मस्त रहने वाले लोगों को बहुत अधिक दुःखी होना पड़ता है। सुखमें जो जितना अधिक मस्त रहेगा उसे उतना ही अधिक दुःखी होना पडेगा। सम्यग्दृष्टि पुरुषमें और कला है क्या कि जब तक ससारमें है तब तक भी वह शान्त है, सुखी है और ससार (भव) नष्ट हुआ तब तो अनन्त आनन्द है ही। उस सम्यग्दृष्टि पुरुषमें कला क्या है? यही भेदविज्ञानकी तत्त्वज्ञानकी कला है जिसके बल पर वह सदा आनन्दमय रहता है। ये सब पदार्थ अनित्य हैं ना? सभी नष्ट होंगे कि कोई रहेगा भी सदा? उदाहरण देकर बतलावो अच्छा? जिस किसी पुरुषके पास वैभव रहा उसे या तो स्वयं उस वैभवको छोड़कर जाना पड़ा, या वैभव ही उसके जीवन कालमें नष्ट हो गया। तो समागम जितने भी हैं ये सब विनाशीक हैं और अनित्य हैं।

सम्यग्ज्ञानका जीवनपर प्रभाव—भैया! इस जीवनमें पहिलेसे ही यह मान लें, निर्णय कर लें कि जो समागम हैं वे तो मिटने ही वाले हैं। ये भी मिटने वाले हैं, इनका भी वियोग होने वाला है, यदि यह ज्ञान पहिले

से ही बना रहेगा तो जब उन समागमोंका विछोह होगा तो इतना अधिक विह्वल न होना पड़ेगा। जैसे कोई पुरुष साल दो सालसे बीमार है, सभी लोग यह जान गये कि बस यह तो चंददिनोंका मेहमान है, तो उसके मरण होनेपर उन लोगोंको अधिक विह्वल नहीं होना पड़ता, क्योंकि उसके प्रति पहिलेसे ही सभी लोगोंका यह ज्ञान बना था कि यह तो अब थोड़े ही दिनोंमें खत्म हो जायगा। और अगर किसी ऐसे पुरुषके मरणका समाचार मिल जाय जिसके मरणकी अभी कोई आशा ही न थी। जो अभी बिल्कुल जवान था, तो ऐसे जवान व्यक्तिकी मृत्युपर लोगोंको अधिक विह्वल होना पड़ता है, क्योंकि उसके प्रति पहिलेसे ही ऐसा ज्ञान नहीं बनाया गया था कि यह तो अब थोडे ही दिनोंमें मिटने वाला है। यहीं की बातें आप देख लो— विवाहकाजके अवसरमें मालिक हजारों रुपयेकी बारूद फूँक देता है, उसके प्रति उसे रंच दु:ख नहीं होता, क्योंकि उसके प्रति पहिलेसे ही उस मालिकका ऐसा ज्ञान बना हुआ था कि यह तो फुँकने वाली ही चीज है, अभी थोड़े ही समय बाद जलकर खत्म हो जायगी। और अगर उसी मालिकका कोई एक दो रुपयेका गिलास फूट जाय या खो जाय तो उसके प्रति वह बड़ा दु:ख मानता है। तो मूलमें बात यही है कि जिस चीजके प्रति पहिलेसे ही ऐसा ज्ञान बना हुआ है कि यह तो मिटने वाली चीज है, किसी दिन मिट जायगी तो उसके मिटनेपर इस जीवको अधिक दु:खी नहीं होना पड़ता, और जिस चीजके प्रति पहिलेसे ऐसा ज्ञान नहीं बनाया गया है कि यह तो मिटने वाली चीज है, किसी दिन मिट जायगी, तो उसके मिटनेपर इस जीवको बहुत दु:खी होना पड़ता है। तो संसारके समस्त समागमोंके प्रति अपना ज्ञान पहिलेसे ही ऐसा बनाये रखना चाहिये कि किसी न किसी दिन इन समस्त समागमोंका विछोह अवश्य होगा, ये मेरे नहीं हैं, ये तो मेरेसे अत्यन्त भिन्न हैं, इस प्रकारका ज्ञान यदि पहिलेसे ही बना रहेगा तो इनके विछोहके समय अधिक दु:खी न होना पड़ेगा। यहाँके समागमोंको पाकर भी सुखी रहना अथवा दु:खी रहना यह अपने ज्ञानपर निर्भर है। सिवाय ज्ञानके इस जीव का कोई साथी नहीं है। तो ज्ञान बिना इस जीवका कुछ भी शृङ्गार न बनेगा। ज्ञानसे ही इस जीवकी शोभा है। ज्ञान बिना तो इस जीवको शान्ति प्राप्त होना भी असंभव बात है।

संसारमें जन्म जरा मरण रोगका कठिन क्लेश—भैया! यह ध्यानमें रहे कि यह संसार दु:खोंसे भरपूर है। जहां जन्म मरणका तांता लगा है। उस कीडे की भांति जो कि एक बांसके बीचमें भिड़ा हुआ है और

बांसके दोनों तरफ आग लगी है। तो जैसे वह कीड़ा उस बांसके अन्दर घुल घुलकर मरता है ऐसे ही इस जीवनके ओरमें तो जन्मकी आग लगी है और छोरमे मरणकी आग लगी है, इन जन्म और मरण इन दोनोंके बीचमें रहने वाला यह जीव कहां सुखी है ? यहां भी नाना प्रकारके दु'ख हैं ? एक जीवका दुःख दूसरे जीवके दुःखसे मिलता-जुलता नहीं है। करीब करीब सबके दु.ख एक समान हैं फिर भी उनमें अन्तर पाया जाता है। अहो यहां जन्मका दुःख, मरणका दु ख, बुढ़ापेका दु ख ये कितने कठिन दु.ख हैं। बुढ़ापेमें बड़ी झुँझलाहट होती है जब कि बचपन तो अच्छी तरह व्यतीत हुआ, जवानीमें खूब कमाई की, बड़ा वैभव जोड़ा, अनेक नौकर चाकर मित्रजन बड़ी सेवामें रहे, घरके पुत्रादिक भी बड़े विनम्र और आज्ञाकी प्रतीक्षामें खडे रहने वाले रहे, बहुत समय गुजर गया, अब बूढ़े हो गये, शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया, दूसरोंके सहारे रहने लगे, भोजन भी उठाकर खा नहीं सकते, तो जिन्होंने जीवनमें ज्ञान, ध्यान, खुद चल नहीं सकते, खुद खडे भी नहीं हो सकते, अपने हाथसे संयम, भजन, धर्मध्यान कुछ भी नहीं किया उन्हें कितनी अपने पर झुंझलाहट आती होगी ? कितना वे कष्टका अनुभव करते होंगे ? तो बुढ़ापा भी जन्म मरणकी तरह बड़ा कष्टकारी है और रोग तो सभीके कोई न कोई लगा है। कितना ही अच्छा शरीर हो पर किसी न किसी प्रकारका रोग जरूर शरीरमें मिलेगा विभावोंके रोगकी बात नहीं कह रहे, शरीरके अन्दर किसी न किसी प्रकारका रोग सबमें मिलेगा। करोड़ों प्रकारके रोग हैं, और जब कोई रोग कुछ प्रचण्ड होता है, श्वासका रोग हो, जुखाम है, खांसी है, बुखार है, पेट दर्द है, दिलकी कमजोरी है, रक्त-चाप है, आदिक उन सब रोगोंसे कैसी पीड़ा होती है ? वह रोगी ही जानता है।

योगियोंके एकान्तके आश्रयका औचित्य—अनेक प्रकारके दु ख इस संसारमे दिख रहे हैं। उनसे जो हजारों लाखों शोक उत्पन्न होते हैं उससे जो सावधान हुए हैं, उनके विजयी बने हैं, उन सबको यथार्थ समझते हैं और ऐसी ही बातें जिनपर बहुत गुजरी हैं ऐसे पुरुष अब यहां दु'खके समागममे नहीं रहना चाहते। यहांसे हटकर आत्मशान्तिके लिए वनमें एकान्तस्थानका आश्रय लेते हैं, वहां आत्मसाधना करते हैं। जैसे जब किसी पुरुषको सताने वाले, आक्रमण करने वाले, घरके हों, बाहरके हों, कोई भी हो तो वह उन सबसे घबड़ाकर चिल्ला उठता है तो वह किसी प्रकार उनसे पिन्ड छुटाकर किसी जगह एकान्तमें बैठकर सन्तोषकी सास

लेता है। झंझटसे निकले। ऐसे ही समझिये कि वे गृहस्थ पुरुष जो गृहस्थी में बसकर अनेक आक्रमण सहते हैं, अनेक प्रकारके उपद्रवोंमें आना पड़ता है, निरन्तर शोकके साधन ही जुटाये रहा करते हैं, उन सब झंझटों से ऊबकर जब तत्त्वज्ञान मिलता है और अपने पमें साहस जगता है, हिम्मत बनायी जाती है, ममता तोड़ दी जाती है तो उन झंझटोंके समागमोंसे निकलकर किसी वनके एकान्त प्रदेशमें ठहरकर आत्मदर्शन करके वे सन्तोष पाते हैं, लो अब छूटे हम झंझटोंसे।

साधुवोंकी द्विजता—साधुका नाम द्विज भी है। अब तो लोग द्विज नाम ब्राह्मणका कहते हैं, पर द्विज नाम है वस्तुत: साधु का। द्विज मायने दूसरी बार जन्म होना। साधु हो जानेका नाम है दूसराजन्म लेना। कैसे? पहिले गृहस्थीमें रहकर नाना विकल्प उलझनोंमें रहकर जो दुःख भोगे, जो संस्कार बनाये, जो भी झंझटें रखीं। तत्त्वज्ञान होनेपर वैराग्य होनेपर जब साधु दीक्षा ले ली जाती है तो वे सबके सब झंझट ऐसे समाप्त हो जाते हैं जैसे कि ख्याल ही न हो, इसपर गुजरे ही न हों। और इस बातको इस दृष्टान्तसे समझ लें कि जैसे हम इस भवसे पहिले भी कभी किसी भवमें थे, कल्पना कर लो मनुष्य थे, किसी देशमें थे, अच्छे परिवारमें थे, कितने मित्र थे, कितना भला था सब कुछ था, लेकिन वहाँ से गुजर कर आये, यहाँ दूसरा जन्म पाया, इस भवमें आये तो इस जन्म के पानेके बाद पुराने जन्मकी बात कुछ भी याद है क्या? पुराने जन्म की किसी घटनासे दुःख हो रहा है क्या? क्यों दुःख नहीं हो रहा? दूसरा जन्म हो गया। तो इसी प्रकार एक ही भवमें दूसरा जन्म कहलाता है साधु होनेका नाम। जब किसीकी शादी होती है तो भावर पड़ते समय वे दोनों स्त्री पुरुष ७-७ वचन बोलते हैं कि ये वचन तुम्हें जीवनभर निभाने पड़ेंगे। दोनों ही हाँ करते हैं। जब वे जीवनभर सातों बातें निभानेका एक दूसरे को वचन दे देते हैं तब सातवीं भावर फिरती है और वे पति पत्नी कहलाते हैं। उन वचनोंमें कोई वचन ऐसा भी है कि तुमको जीवनभर हमारा रक्षण करना होगा। पर उनमेंसे यदि पति साधु दीक्षा ले ले या पत्नी आर्यिकाकी दीक्षा ले ले तो उस समय तो कोई यह नहीं कहता कि वाह! तुम लोगोंने तो एक दूसरेके जीवनभर रक्षणादिके वचन दिये थे और अब यह क्या कर रहे? अरे वे अब वह पति पत्नी नहीं हैं जो पहिले थे। उनका तो दूसरा जन्म हो गया। जैसे हम आपसे अबसे पहिले भवमें जिन जिनसे वायदे किये हों, जिससे जो कुछ भी बात की हो, मरणके बाद क्या यहां, कोई कहता है कि तुम तो ऐसा-ऐसा कह आये थे कि हम

तो घरमें रहेंगे, घर छोड़कर न जायेंगे और अब उठकर चल दिया। अरे नया जन्म पाया है। तो साधुवोंमें भी नवीन जन्म है तभी तो गृहस्थीका कोई संस्कार नहीं रहता। भला ऐसा सुकुमार पुरुष जो सेजपर पड़े और यदि कोई रुईका बिनोला पड़ा हो अथवा सरसोंका दाना पड़ा हो तो वह भी जिसे न सहा जाय और ज्ञानी विरक्त साधु होनेपर कंकरीली जमीनपर एक करवटमें रहते हैं, उनको अब दु ख महसूस नहीं होता। क्यों? एक घंटेमें क्यों बदल गयी? अरे अब तो उसका जन्म ही बदल गया। इसका नाम है द्विज। तो अब ये ज्ञानी गृहस्थ पुरुष उस दु:खमय वातावरणसे निकलकर एक शान्तिके जीवनमें आ रहे हैं, नये जीवनमें आये हुए है। इसीका नाम है योग। दुःखके कामसे हटकर शान्तिके यत्नमें जुटनेका नाम है योग। ऐसा योग जो धारण करते हैं उन्हें कहते हैं योगी। ऐसे योगी पुरुषोंकी इसमें भक्ति की जा रही है। वे ही पुरुष जो ससारको दुःखमय जानकर और वैसा ही परिचय पाकर अब वहासे हटकर शान्तिके लिए एकान्त वनमें पहुचे हुए हैं।

दुःसह नरकवेदनाके कारणभूत नरकायुके आस्रवका वर्णन—जिस भव्यपुरुषका संसार निकट आ गया है। अन्तकी अपेक्षा भी निकट होता है और आदिकी अपेक्षा भी निकट होता है। संसार निकट होनेके मायने संसारका आखिरी समय पास आ गया है, ऐसे भव्यजीवको वस्तुस्वरूप यथार्थ ज्ञान होता है और वह सर्व ओरसे सर्वदृष्टियोंसे आत्महितके चिन्तन की ही बात किया करता है। जब उनका वैराग्य बढता है तो वे अब परिग्रहोंका त्यागकर शान्तिके लिए एकान्त वनका आश्रय करते हैं। उन्होंने जाना कि ससारमें जन्म बुढ़ापा, मरण रोग आदिक अनेक क्लेशही क्लेश हैं। इनमें रुचि करनेमें सार नहीं। इन सब क्लेशोंसे रहित जो आत्माका शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है उसकी रुचि करनेमें लाभ है। तो वे पुरुष संसारके स्वरूपको जानकर और साथ ही कठिन जो नरकमें पड़ने का काम है उससे उनकी बुद्धि परेशान हो गयी। वे नरकोंके दु:खका चिन्तन करके अब और विशेषरूपसे इस बातपर दृढ़ हो गये कि संसार जालमें, मोह जालमें फँसना योग्य नहीं। नरक आयुके आस्रवका कारण बताया है। बहुत आरम्भ और परिग्रह करना, इसमें सभी खोटी बातें सम्मिलित हो गई—पापोंमें अधिक आसक्त होना, विषयोंमें लीन होना, दूसरोंको लुश करनेकी चेष्टा करना आदिक। कोई निष्पक्ष ज्ञानदृष्टिसे निहारें तो उसे यों दीखेगा कि ये व्यामोही धनिक लोग बड़े दु:खी हैं। एक तो बड़ा दु:ख यह है कि उनकी बुद्धि विपरीत हो गयी है, यथार्थ

बात समझनेकी सुधि नहीं है, अवकाश नहीं है, क्या लाभ हुआ इस मनुष्य-जन्मको पाकर ? प्रभुभजन तत्त्वचिन्तन, साधुसेवा, साधर्मीजनोंकी संगति आदिक इन समस्त धर्मोंसे उन्हें पहिले ही छुट्टी मिल गयी। वे अब कहां रहते हैं, किन-किनकी गुलामी करते हैं, उन सबकी बात बहुत विलक्षण है। कोई विवेकी पुरुष यदि दो चार दिन भी उनके साथ रहकर देख ले तो वह सारा नक्शा खींच लेगा कि ये तो बड़े दुःखी हैं। तो इस जगतमें बहुधंधी होना, बहुपरिग्रही होना ये नरकआयुके आस्रवके कारण हैं।

नरकस्थान और नरकोंमें जन्म—नरकगतिकी तो बड़ी विचित्र कहानी है। नरक क्या है ? एक भूमि है। ७ नरक हैं, उनकी ७ न्यारी न्यारी भूमियां हैं। एक भूमिमें भीतर ही भीतर बहुत लम्बे चौड़े बिल बने हैं तो वे लाखों, करोड़ों, असंख्याते योजनोंके हैं। लेकिन उनका मुख किसी ओर नहीं है। पृथ्वीके भीतर ही भीतर पोल हैं। इस कारण वे बिल कहलाते हैं। जैसे एक फुट लम्बी, एक फुट चौड़ी और एक फुट गहरी लकड़ीमें भीतर ही भीतर १०-५ छिद्र हों, पर चारों तरफसे देखने पर मुख भी वे छिद्र उस लकड़ीमें नहीं दिखते इसी प्रकार उन बिलोंके भी पृथ्वी में किसी ओर नहीं बने ऐसे तो उन नारकियोंके रहनेके स्थान हैं सो उस बिलका जो ऊपरी भाग है, जो जीव नरकमें जाता है उसमें तिरछे टेढे मेढे, घटाकार बुरे मुख वाले ऐसे कई स्थान बने हैं। जो जीव नरकमें जाता है, उस स्थानमें जन्म लेकर नीचे गिर जाता है, यही जन्म कहलाता है। देखो देवोंका भी जन्म बिना माता पिताके है और नारकियों का भी जन्म बिना माता पिताके होता है पर देव तो उत्पादशय्यापर बच्चे की तरह लेटे हुए उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु उन नारकियोंका जन्म ऐसा होता है कि उन घटाकार आदिक विचित्र आकार वाले स्थानोंसे शिरके बल नीचे टपक पड़ते हैं ऐसा तो उनका जन्मका विधान है और पृथ्वी पर गिरनेपर वे सैकड़ों बार उछलते हैं, गिरते हैं गेंदकी तरह।

जन्मने वाले नारकीपर चारों ओरसे नारकियोंका आक्रमण—वे नारकी जीव जब पैदा होते हैं तो उस समय वहां रहने वाले नारकी जीव उनपर टूट पड़ते हैं, उनके तिल तिल बराबर खण्ड कर डालते हैं। पर वे टुकड़े फिर पारेकी तरह मिल जाते हैं और फिर उन नारकी जीवोंकी वही हालत होती है। ... ने यहाँ पर देखा होगा कि किसी दूसरे गाँवका कोई कुत्ता ... जाता है तो आपके गाँवके बहुतसे कुत्ते मिलकर उस ... रते हैं और उस कुत्तेको हैरान करते हैं, इसी प्रकार वे

बहुतसे नारकी जीव उस आये हुए नये नारकी जीवपर टूट पड़ते हैं और उसके खण्ड खण्ड कर डालते हैं। यह तो उनकी बड़ी विकट कहानी है।

नरककी पृथ्वीके स्पर्शका क्लेश और नरकदेहकी विक्रियासे सुलाभ शस्त्र-प्रहारका क्लेश—अब और भी नारकियोंके दु:खकी कहानी सुनो—वे नारकी जीव जब जमीन पर आते हैं तो उस जमीनको छूनेमात्रसे हजारों बिच्छुवोंके डंक मारनेके बराबर वेदना होती है। इस बातका अन्दाज आप यहीं कर सकते हैं। जैसे जब कभी बिजलीका तार टूट जाता है और बिजलीका करेन्ट दीवालमें आ जाता है तो उसके छूने मात्रसे बिच्छू के डंक मारने जैसी वेदना होती है, वहाँसे लोग दूर भाग जाते हैं और अगर न भगें तो वहीं प्राण भी जा सकते हैं। तो यह बिजली भी क्या है? उन नरकोंकी भूमि जैसी ही तो है, उनमें कैसे तेज आ गया? तो यह बात नरककी पृथ्वियोंमें प्रकृत्या पायी जाती है। तो उन नारकी जीवोंको वहाँकी भूमिका स्पर्श करने मात्रसे हजारों बिच्छुवोंके डंक मारने जैसी वेदना होती है और भी कहानी सुनो। उन नारकी जीवोंको दूसरे नारकी जीवके मारने के लिए शस्त्र कहीं अलगसे नहीं लाने पड़ते। उनका शरीर ही ऐसी विक्रिया वाला है कि करौती, बसूला, चाकू आदि जिस चीजसे मारनेकी इच्छा हुई कि उनके हाथ स्वयं उस शस्त्ररूप बन जाते हैं। जो यह वर्णन आता है कि नरकमें किसी नारकीको चारों तरफसे साँप खाते हैं, बिच्छू खाते हैं तो वहाँ कहीं साँप बिच्छू आदि अलग नहीं हैं। वे ही नारकी जीव सर्प बिच्छू आदिक बन बनकर दूसरे नारकी जीवोंको कष्ट दिया करते हैं।

नरकायुकी अनिष्टता—नारकियोंको इतना दु:ख भोगना पड़ता है कि वे नारकी जीव यह नहीं चाहते कि मैं जिन्दा रहूं, जब कि मनुष्य और तिर्यञ्च ऐसा चाहते हैं कि मैं मरूँ नहीं। चाहे कैसी भी परिस्थिति आय। कोई बुढिया है बहुत हैरान है, चल फिर भी नहीं पाती, बच्चे लोग भी कोई पूछते नहीं हैं तो वह प्रतिदिन हाथ जोड़कर भगवानसे विनती करती है कि हे भगवन तू मुझे उठाले, मैं बड़ी दु:खी हूं। उसी बुढ़ियाके निकट कदाचित् निकल आये सर्प तो वह चिल्लाकर बच्चोंको पोतोंको पुकारती है—अरे दौड़ो बेटा, मुझे बचाओ, देखो सांप बड़ा निकला है और अगर कोई बच्चा यह कह बैठे कि ऐ बुढ़िया दादी, तू तो रोज रोज भगवानसे विनती करती थी कि ऐ भगवान मैं बहुत दु:खी हूं, तू मुझे उठाले, तो तुम्हारी विनती सुनकर भगवानने तुम्हें उठानेके लिए यह दूत भेजा है, तुम क्यों डरती हो? तो यहां कोई मरना नहीं

चाहता। नारकी जीव चाहते हैं कि मेरा मरण हो जाय पर मरते नहीं हैं, तिल तिल बराबर उनके खण्ड हो जाते हैं फिर भी पारेकी तरह फिर मिल जाते हैं, तो ऐसी दशा उन नारकियोंके मारपीटकी है। खुद मरते हैं और मारते हैं।

नरकोंमें गर्मी और ठण्डका विकट क्लेश—और भी नारकियोंके दुःख की बात देखिये—छहढालामें बताया है कि नरकोंमें इतनी गर्मी है कि वहाँ मेरुके बराबर भी लोहपिण्ड हो तो वह भी गल जाता है। अब समझ लीजिये कि नरकोंमें कितनी गर्मी होती है। इसी प्रकार ठंडकी भी वेदना भी वहाँ बड़ी कठिन है। नरकमें ठंड ऐसी है कि कोई लोहेका मेरुपर्वतके बराबर भी पिण्ड हो तो वह भी ठंडके मारे गलकर चूर-चूर हो जाता है तो इतनी विकराल ठंडकी वेदना भी ये नारकी जीव सहते हैं। नरककी उन वेदनाओंका चिन्तन जब कोई ज्ञानी जीव करता है तो उसकी बुद्धि संत्रस्त हो जाती है, अहो क्या रखा है इस संसारमें ? विषयोंकी प्रीतिका यह फल है, आत्माकी सुध बिसारनेका अज्ञानभावमें लगे रहनेका, मोह करनेका यह फल है, ऐसा उस ज्ञानी जीवको जब बहुत-बहुत उपयोगमें आया तो बुद्धि संत्रस्त हो जाने से अब गृहस्थीमें टिकनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। सकल परिग्रहोंका त्यागकर एकान्त वनका आश्रय करता है। किस लिए ? शान्तिके लिए। ये सब क्लेश हैं। ये सब क्लेश कैसे दूर हों, उसका उपाय खोजता है। वह ज्ञानी पुरुष जिस समय अपने उपयोगको बाहरसे हटाकर एक अपने आपकी ओर लगाता है, जिस समय यह आत्मा ऐसे आनन्दमय ज्ञानस्वभावकी ओर दृष्टि करता है उस समय उसे न संकट है, न संकटके साधन उसे नजर आते हैं। ऐसे सुगम उपायको जिसने पहिचान लिया ऐसा तत्त्वज्ञानी पुरुष आत्मसाधनाके लिए परमार्थ एकान्त स्थानका आश्रय करता है ताकि विषयोंका साधन न रहे। तो आश्रय नहीं रहने से, नोकर्म न रहनेसे ये कर्मोदय भी नहीं होते और उनको एक विशुद्ध मार्गमें बढ़नेकी प्रेरणा मिलती है जिससे वे अपनी इस शान्तिके धाममें अधिक देर तक टिक सकते हैं।

योग शब्दका लोकव्यवहारमें भी प्रयोग होता है। जैसे जब कोई विचार चलता है कि अमुक कार्य करना चाहिये तो कहते हैं ना, इसका जोग तो लगा ही लो तो जोगके मायने हैं, कार्यसिद्ध करनेका उपाय। सर्वश्रेष्ठ कार्य कौनसा है जो सिद्ध किया जाना चाहिये, जिसकी सिद्धि होनेसे हम आप जीवोंमें फिर कोई कष्ट नहीं रहेगा, ऐसा कौनसा काम है ? खूब सोच लीजिये। एक जीवनमें अच्छी तरह खा पीकर आरामसे

रहकर पलंगों पर सोकर बड़ी प्रशंसाके बीच रहकर जीवन गुजार लिया, पर इतने से तो काम न बनेगा। इसके बाद भी तो कहीं जन्म लेना होगा, फिर क्या हाल होगा ? एक नौकर राजाके यहां पलंग सजाया करता था। एक दिन नौकरके मनमें भी आ गया कि मैं राजाका पलंग बहुत दिनोंसे सजा रहा हूं, इस पर राजाजी सोते हैं, आज इस पर एक दो मिनट लेट कर हमें भी देखना चाहिये कि इसमें कितना आराम मिलता है ? तो ज्यों ही वह लेटा कि दो मिनटमें ही उसके निद्रा आ गयी। वह सो गया। राजा आया तो उस नौकरको खूब बेंतोंसे पीटा। इतने पर भी वह हँस रहा था। राजाने उसके हँसनेका कारण पूछा तो नौकरने कहा कि हमें इस बातकी हँसी आती है कि हम तो दो चार मिनटको इस पलंग पर लेट गए तब तो कोड़ोंसे पिटे, और हमारा राजा जो इसपर बहुत दिनों से सो रहा है उसकी न जाने क्या हालत होगी ? तो इस जीवनको खूब आराम-आराममें ही बिताना योग्य नहीं। हाँ इतना तो ठीक है भूख प्यास, ठंड गर्मी, रोग आदिकी वेदनायें ऐसा अधिक सता न सकें जिससे कि हम अपनी सुध भूल जायें, सो उनकी व्यवस्था कर ली जाय, पर इस शरीरको बहुत-बहुत आराम देनेकी जो बातें चलती हैं वे सब बेकार हैं। इस आरामके फलमें तो बहुत कष्ट भोगना होगा। इस आराममयी जीवनसे आत्माका कुछ भी उत्थान न होगा।

वैषयिक सुखकी प्रचुरता वाले भवसे आत्मोत्थानकी अशक्यता—देवगति में और भोगभूमियों मनुष्यतिर्यंचोंमें देखो— कोई स्थूल कष्ट नहीं है। भोगभूमिमें इष्टवियोग नहीं, जब बच्चे पैदा हुए तो मां बाप गुजर गए। वियोग काहेका ? वियोग तो तब हो जब वे माँ बाप उन बच्चोंका मुख देख लें, और वे बच्चे भी अपने माँ बापका मुख देख लें। तो भोगभूमिया जीवोंमें सब प्रकारके आरामके साधन हैं। देवगतिके जीवोंमें उनके कंठसे अमृत झर जाता है और भोगभूमियां जीवोंके यदि दो तीन चार दिनमें भूख लगती है तो वहाँ मनमाने कल्पवृक्ष हैं, उनको कोई कष्ट ही नहीं है। सब प्रकारके आराम हैं और कर्मभोगियाँ जीवोंके जीवनमें दुःख ही दुःख भरे हैं। तो इस दुःखका बड़ा उपकार है। कर्मभूमियां मनुष्यभवके जीवनमें दुःख लगे रहते हैं उस जीवनसे उत्थान सम्भव है। मुक्ति संभव है। तो ये ज्ञानी संतजन इन संकटोंसे छूटनेके कार्यका योग लगा रहे हैं। संसारको दुःखमय जानकर उससे विरक्ति आयी और बड़े दुःसह जो कठिनतासे सहे जा सकते हैं ऐसे नरकोंके दुःखोंके चिन्तनसे जिनकी बुद्धि सन्त्रस्त हो गयी है और इसी कारण कुछ आत्मस्पर्शसे जिसका चित्त प्रसन्न

हो गया है ऐसे ये योगी पुरुष आत्मशान्तिके लिए वनका आश्रय लेते हैं।

प्रबुद्धचेता आत्मार्थी पुरुषका जीवनकी चपलताके सम्बन्धमें चिंतन—जब तक मनकी शल्य नहीं हटती, मनमें प्रतिबोध नहीं जगता ज्ञानप्रकाश नहीं होता तब तक सन्मार्गके लिए प्रेरणा कहा मिलती है? विषयोंका जीवन क्या जीवन है? विषयोंके सुखमें चित्तमें प्रतिबुद्धता नहीं है। वह केवल कल्पित मौज है और क्षोभसे भरा हुआ मौज है। उनका वास्तविक प्रसाद नहीं है। जिन्होंने संसारको दुःखमय जानकर परमउपेक्षा की, संसार शरीरभोगोंसे विरक्त होकर अपने आपके अन्त विराजमान ज्ञायकस्वरूप कारणपरमात्मतत्त्वकी रुचि की ऐसे आत्मार्थी जीवका चित्त प्रतिबुद्ध होता है। तो ऐसे प्रतिबुद्धचेता सतजन विचार कर रहे हैं कि अहो यह जीवन ओसके बूँदकी तरह चचल है। जैसे ओसकी बूंद दिखनेमें मोती जैसी लगती है और वह कुछ सारभूतसी प्रतीत होती है, लगता है कि इसका हार बनाकर पहिन लें, पर क्या वह सारभूत चीज है? वह तो छूनेसे मात्रसे अथवा पत्तोंके जरासा हिलने मात्रसे कान्तिहीन पानी बन जाता है, इसी प्रकार यह जीवन है जिसमें हम आप लोग जी रहे हैं। इसमें बड़ा आश्चर्य तो इस बातका होना चाहिये कि हम अभी तक जी रहे हैं। क्योंकि मरनेका कोई आश्चर्य नहीं। मरण तो सभीका होता है। कोई गर्भमे ही मर जाता है, कोई उत्पन्न होनेपर, कोई बड़ा बालक बनने पर, कोई जवान होनेपर, कोई बूढ़ा होनेपर। तो मरनेका कुछ आश्चर्य नहीं, आश्चर्य तो जीनेका है। यह जीवन पानीका बबूला जैसा है। जैसे बरसातके दिनोंमें पानीमें बबूले उत्पन्न हो जाते हैं तो लड़के लोग उन बबूलोंको देखकर आश्चर्य करते हैं जो अधिक देर तक ठहरे रहते हैं। उन बबूलोंके मिटनेमें कोई आश्चर्य नहीं जो कि तुरन्त मिट जाते हैं। क्योंकि उन्हें तो मिटना ही है। तो मरते तो सभी हैं। इस मरनेमें कोई आश्चर्य नहीं, आश्चर्य तो जीवित रहनेमें है। यहीं देख लो— कीड़ा मकौड़ा, पशु पक्षी, मनुष्यादि सभी किसी न किसी बहानेसे मरणको प्राप्त हो हुआ करते हैं। तो मरनेका आश्चर्य नहीं, किन्तु जीवन जो बना है लम्बा कुछ थोड़ासा यह आश्चर्यकी बात है।

आत्मलाभके कार्यके उत्साह और यत्नकी आवश्यकता—हम आप लोग अब तक जिन्दा हैं, आगे भी यहां कुछ कितना जिन्दा रहेंगे या नहीं इसका कुछ भरोसा नहीं। कितना समय है, इस जीवनमें कितना उत्तम अवसर है। मन है विचार कर सकते, तत्त्वचिन्तन कर सकते, आत्माकी सुधि ले सकते। ऐसे अपूर्व अवसरको हम यों ही खो दें तो यह कितनी मूढ़ताकी

बात है। मन लगायें असार कामोंमें और यहां सारभूत कामके लिए उत्साह नहीं है, प्रेम नहीं है। जैसे कि घरके कामोंको अपना काम समझा जाता है, जो कि अपने हैं भी नहीं, और यहा यह अपना काम है आत्मा की बात, आत्माके स्वरूपका ध्यान, यहां दृष्टि लगाना, इसे अपना काम नहीं समझा जा रहा है और असार भिन्न मायारूप, जिनमें भलाईका नाम नहीं उनको समझा जाता कि ये मेरे काम हैं। यह जीवन ओसकी बूँदकी तरह चचल है--अल्पस्थितिक है। थोड़े समयमें नष्ट होनेको है। हम कुछ हितकी बात कर लें तो यह मेरी भलाईकी बातहोगी।

वैभवकी चचलताका चिन्तन—योगीजन जो शान्तिके लिए एकान्त वनका आश्रय करते हैं उनका यह चिन्तन चल रहा है कि यह सारा वैभव बिजलीके समान विनश्वर है, जैसे मेघोंमें बिजली चमकती है तो वह ठहरती नहीं, चमकी नहीं कि खत्म, क्षणमात्रमें ही नष्ट हो जाने वाली है, इसी प्रकार यह विभूति भी उस विद्युत् की तरह क्षणमात्रमें नष्ट हो जाने वाली है और कुछ ठहर भी गया तो कितनी देर ठहरेगा। उसे यों समझ लो कि मेघोंके समान चचल है। जैसे मेघ थोड़ा ठहर गए और फिर यथाशीघ्र बिखर कर समाप्त हो जाते हैं इसी तरह यह वैभव भी थोड़े काल ठहर कर बिखर जाने वाला है। तो ये सब समागम विद्युत्की तरह अथवा मेघके समान अत्यन्त चंचल हैं। ये सब चिन्तन वे योगीजन कर रहे हैं जिनको अब ससार, शरीर, भोगोंमें प्रीति नहीं रही। प्रीति न रहने के ये सारे कारण इस छंदमें बताये जा रहे हैं। ये सारे समागम एक शरीरके आरामके ही तो साधन हैं, आत्माके आरामके साधन नहीं हैं और शरीर है सो यह जन्म जरा मरण रोगकर भरा हुआ है, भिन्न चीज है। उसके आरामके साधनोंको जोडकर हम अपने सकट क्यों मोल लें? हम अपने को ससारमें क्यों रुलायें? अतएव इस दुष्ट शरीरके आरामके साधनोंमें जब प्रीति न रही तो अब उन साधनोंमें रहे कौन? और फिर कदाचित् शरीरके साधन बना लो, पर उसका फल तो बड़ा कठोर है। नरक जैसे दुःखोंको भोगना पड़ता है। उसे अब इस शरीरके साधनोंमें रुचि नहीं रही।

योगियोंका आत्मलाभके योगका उद्यम—अब कुछ गहरा चिन्तन किया गया है कि इस चचल वैभवके पीछे अपने जीवनको न खोवो और यह जीवन भी एक ओस बूँदकी तरह क्षणस्थायी है। अब तो जितना शेष जीवन है वह जीवन एक आत्माकी सेवामें लगे इसीमें भलाई है। इन समस्त बातोंका चिन्तन करके मुनिजन आत्मशान्तिके लिए वनके अन्तमें

या और छोर किसी जगह वे अब पहुचे हैं परमार्थत तो वे अपने आप के स्वरूपके एकान्तमें पहुचे हैं, यही तो है एकान्त। जहा दृष्टि हटायी परसे और अपने आपमें देखा निजको कि यह तो स्वभावतः समस्त पदार्थों से विविक्त केवल ज्ञानस्वरूप यहीं तो विराजमान है।' जिस प्रभुकी खोज में जगह-जगह भटके, मंदिर-मंदिर, पर्वत-पर्वत देखा और इन आँखोंको बड़ा कष्ट दे देकर निरखा, बड़ी-बड़ी आशकायेंकीं पर वह साधन था, वह साक्षात् प्रभु न था। वह प्रभुता तो अब यहाँ समझमें आया, जिसके दर्शन के लिए मैं जगह-जगह भटका, खोजा। यह प्रभु तो लो यहीं बड़े सुखसे है, अपने आपमें विराजमान है। लो इस प्रभुने तो मेरे साथ बड़ी हँसी की। खुदमें विराजमान है और मैं भटकता रहा। कुछ भी इसने न बताया कि अरे कहाँ ढूँढ़ते हो, मैं तो यहीं बैठा हू। अरे प्रभु ने कहाँ हँसी की? मैं ही मूर्खतासे स्वयं भूला भटका और नहीं पहिचाना कि यह प्रभु तो यहीं विराजमान है। उस ही अत.विराजमान प्रभुको निरखने के लिए बाहरमें प्रभुके स्वरूपको निरखा जाता है। इस समता समृद्धिसे सम्पन्न स्वभावत अविकारी इस ज्ञानस्वभावके दर्शन करने में हित प्राप्त होता है, उसको सिद्धिके लिए, उसमें उपयोग निरन्तर स्थिर रहे इस ही निज प्रभुको निरख निरखकर तृप्ति बराबर बनी रहे, इस कार्यसिद्धिके लिए अब इन ज्ञानी सतोंने जोग जुगत जुड़ाया है, एक साधन जुटाया है, उस ओर लग गए हैं, उनको रास्ता मिल गया है इसलिए वे अपने आत्मरसके उपयोगमें रहकर तृप्त हो रहे हैं और ऐसा सन्तुष्ट हो रहे हैं कि अपने आपमें समाये जा रहे हैं। इतना आनन्द बरस रहा कि वे अपने आपमें समा नहीं पा रहे हैं तो लबालब आनन्दसे तृप्त होते हैं। यह है योगियों का वास्तविक योग। जिस उपायके द्वारा उस अविकारी शुद्ध चैतन्य दशा की प्राप्ति होगी, जिसमें रहकर सदाके लिए सर्वसकटोंसे मुक्ति प्राप्त होगी।

> व्रतसमितिगुप्तिसयुताः शिवसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।
> ध्यानाध्ययनवशगता विशुद्धये कर्मणा तपश्चरन्ति ॥२॥

कर्मोंकी विशुद्धिके लिये योगियोंका तपश्चरण—जो तत्त्वज्ञ पुरुष जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकसे व्याप्त इस ससारसे विरक्त होते हैं, इस जीवन को ओस बूँदकी तरह चंचल जानकर इस समस्त विभूतिको विद्युत् और मेघके समान अस्थिर जान कर आत्मशान्तिके लिए वनमें पहुंचे हैं और सर्वपरिग्रहोंका त्यागकर निर्ग्रन्थ हुए हैं ऐसे ये महापुरुष वहां क्या करते हैं? उसका वर्णन इस छंदमें किया गया है। देखो भैया! एक दिन भी बेकार

रहकर दिन काटना कठिन लगता है। यहाँके लोगोंको कोई काम न हो, ठलुवा बैठे हों तो दिन बड़ा भारी मालूम पड़ता है, अब कितने बजे, अब कितना दिन रहा, यों दिन बड़ा महसूस होता है। लोग यों शंका कर सकते हैं कि घर छोड़ा, वैभव छोड़ा, तृणमात्र भी साथ नहीं ले गए, केवल गात मात्र ही परिग्रह कह लीजिये, केवल शरीरमात्र है इनके साथ, अन्य कोई भी परिग्रह साथ नहीं है। वे मुनिजन जंगलमें अकेले कैसे दिन काट लेते होंगे? शंका करने वाले लोग ऐसी शंका करते होंगे और यहाँ ये साधुजन इस तरह रहते हैं कि दिन रातके समयका वहाँ पता ही नहीं पड़ता कि कैसे निकल गए। क्या करते हैं वे वनमें? वे कर्मोंकी विशुद्धि के लिए, कर्मोंसे दूर होनेके लिए तपश्चरण करते हैं। यह बात ऊपरसे सुननेमें ऐसी लगती है कि ८ प्रकारके कर्म लगे हैं जीवके साथ, जिनके उत्तर भेद १४८ और सही तौरसे देखा जाय तो असंख्यातों प्रकारके उत्तर भेद हैं। उन कर्मोंको दूर करने के लिए गर्मी सर्दी सहना आदिक ऐसे घोर तपश्चरण करते हैं, ठीक है यह भी बात साथ-साथ लगी है, पर अन्त विचार करो तो वे रागद्वेषादिक जो कर्म हैं उन कर्मोंको दूर करने के लिए पराश्रयको तज कर तत्त्वचिन्तनमें लगते हैं ऐसा घोर तपश्चरण करते हैं, ठीक है यह भी बात साथ-साथ लगी है पर और अन्तः विचार करें तो वे रागद्वेषादिक विकल्पवितर्कविचारादिक जो कर्म हैं उन कर्मोंको दूर करने के लिए अपने चैतन्यस्वरूपमें प्रतपन कर रहे हैं।

कर्म, विशुद्धि और तपश्चरण—कर्म नाम तो असलमें रागद्वेषभावका ही है। क्रियते इति कर्म। जो किया जाय सो कर्म है। आत्माके द्वारा क्या किया जाय? आत्माकी ही कोई परिणति और करनेका जहां नाम लिया है वहां अधिकार है अशुद्ध परिणतिका नाम लेनेका तो वहा क्या किया जा रहा था इस संसारमें? रागद्वेष भाव। उनके शोधनके लिए। देखिये शोधन शब्द भी यहाँ भी ठीक बैठता। इस औपाधिक भावको दूर करना और अपनेमें शुद्धज्ञातृत्व लाना, यही है आत्मशोधन और ऐसा यहा किया जा सकता है। तो उन कर्मोंके शोधनके लिए वे अपने चैतन्यस्वरूपमें स्थिर होने रूप परम तपश्चरण करते हैं। चैतन्यस्वरूपमें अपनी दृष्टि और उपयोगको स्थिर करें, इसमें प्रतपन होता है। अभी लोग बहुतसे धर्मकार्य करनेके लिए जब चिन्तन करने बैठते हैं, मनको प्रभुस्वरूपमें लगाना चाहते हैं, आत्मस्वरूपमें लगाना चाहते हैं तो कुछ थोड़ा सा तो चलते हैं, पीछे घबड़ाने लगते हैं, फिर चित्त वहाँसे उचट जाता है, तो मालूम होता है कि निजमें अवस्थान करनेका काम भी बड़ा तपश्चरणका

काम है। तो ये योगीश्वर वनमें जाकर कर्मोंके विनाशके लिए तपश्चरण कर रहे हैं।

योगियोंकी अहिंसामहाव्रतसयुतता—इनका वहा अन्तर्बाह्य स्वरूप क्या बन रहा है ? अब वे किस ढगमें रह रहे हैं ? गृहस्थीमें तो पता था कि वे किस ढंगसे रहा करते थे, अब साधुअवस्थामें आकर किस ढगसे चल रहे हैं। तो उनका प्रोग्राम, उनकी क्रिया, उनकी करतून तेरह अगोंमें बतायी गयी है। ५ महाव्रत, ५समिति और ३ गुप्ति। इन १३ प्रकारके अगोंसे उन का चारित्र पूर्ण होता है, विशुद्ध होता है। ५ महाव्रत कौनसे हैं ? अहिंसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्यमहाव्रत, और परिग्रहत्यागमहाव्रत। ये महाव्रत इसलिए कहलाये कि साधारण पुरुष इन्हें नहीं धारण कर सकते हैं। महान् पुरुष धारण करते हैं। ये व्रत किसी महान् उद्देश्यके लिए धारण किये जाते हैं। ये व्रत स्वय महान् हैं इस कारण महाव्रत कहलाते हैं।

वे महापुरुष अहिंसा महाव्रतका पालन करते हैं। ऐसा अपने आत्माको सयत बनाया है कि मनमें किसी भी प्रकारके रागद्वेष भाव नहीं उत्पन्न हो पाते हैं। रागद्वेष उत्पन्न होनेका नाम हिंसा है। इतनी समता है, इतना विशुद्ध तत्त्वज्ञान है कि वे रागद्वेषमें नहीं पड़ते, अन्यकी तो कथा ही क्या है ? धर्मके नामपर भी धर्मकी चर्चाके प्रसगमें भी जहाँ ये जानते हैं कि अब रागद्वेष आनेको हैं तो उस चर्चाको भी छोड़ते हैं और मौन रहकर अपने आपमें अपने स्वरूपकी आराधना करने लगते हैं। वे रचमात्र भी रागद्वेषको अहित जानते हैं। सो रागद्वेष न करने रूप अहिंसा महाव्रतको उन्होंने धारण किया है और इसहीके प्रसादसे बाह्यमें भी अहिंसा भली प्रकार पलती है। सभी जीवोंमें जब साम्यभाव जग गया, सब मेरे ही समान हैं, सब चैतन्यस्वरूप हैं, सबमे वही तेज है, ऐसा ज्ञान होनेपर अब उनकी प्रवृत्ति इतनी सावधान हो गयी कि चलते समय किसी समय जीवकी हिंसा न हो जाय ऐसी अपनेमें सावधानी रखते हैं। उनके ६ कायके जीवोंकी हिंसाका परित्याग हो चुका है मन, वचन, काय, कृतकारित अनुमोदनासे, और इसी कारण वे किसी आरम्भमें नहीं पड़ते। यहां तक कि वे अपनी क्षुधा मेटनेके लिए आहार तक बनानेको एक झंझट समझते हैं। उनकी तीव्ररुचि होती है आत्मतत्त्वकी, इस कारण समस्त बाह्यपरिस्थितियोंको अहितकर जानकर अहिंसा महाव्रतका पालन करते हैं। इसी कारण इनका बाहरीरूप ऐसा है कि न कोई इनके बाग है, न कहीं खेती है, न ऊँट घोड़ा आदि हैं। न भस्म रखते हैं, न चोटी रखते

हैं, न कोई शस्त्र चिमटा आदिक रखते हैं। एक गातमात्र परिग्रह है और अन्तरङ्गमें इस ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्वकी ओर उनकी धुनि है, रुचि है, ऐसे अहिंसाकी मूर्ति ये योगीश्वर होते हैं जिनकी इस अहिंसामयी मुद्रा को निरखकर जातिविरोधी जानवर सिंह हिरण आदिक उनके निकट बैठे रहते हैं और वे भी शान्त हो जाते हैं। अहिंसाकी प्रतिष्ठामें निकटवर्ती जीव भी अपना वैर-विरोध छोड़ देते हैं। ऐसे अहिंसा महाव्रतसे संयुक्त हैं वे योगीश्वर।

योगियोंकी सत्यमहाव्रतसंयुतता— दूसरा महाव्रत है सत्यमहाव्रत। जिसका आत्मा स्वच्छ है, सत्य है, जहाँ माया नहीं, लोभ नहीं, मानका परिणाम नहीं, जो शान्तिकी मूर्ति हैं, चारों कषायें जिनकी मंद हो गयीं ऐसे पुरुष किसीका अहित करने वाले वचन कैसे बोल सकें? सो वे हित मित प्रिय वचनोंका सदा उपयोग करते हैं। वे योगीश्वर ऐसे ही वचन बोलते हैं जो दूसरोंके लिए हितकारी हों। ऐसे वचन वे कभी नहीं बोलते जिनमें किसी दूसरे जीवका अहित सम्भव हो। दूसरे उनके वचन परिमित होते हैं। अधिक वचनालापसे वे अति दूर रहते हैं। जितना बोलना वे आवश्यक समझते हैं उतने ही वचनोंका प्रयोग करते हैं। तीसरे उनके वचन प्रिय होते हैं। अप्रिय वचनोंका वे प्रयोग नहीं करते। जिन वचनों के द्वारा किसीके मनमें ठेस पहुचे ऐसे वचन वे कभी नहीं बोलते हैं। अतः वे योगीश्वर सदा हित मित प्रिय वचनोंका प्रयोग करते हैं। ऐसे वे सत्य की मूर्ति योगीश्वर सत्यमहाव्रतका पालन करते हैं।

योगियोंकी अचौर्यमहाव्रतसंयुतता— तीसरा है अचौर्यमहाव्रत। उन योगीश्वरोंके चोरीका सर्वथा त्याग है। उनमें चोरी करनेकी बात असम्भव है। उनमें चोरी करनेकी बात सम्भव ही नहीं है क्योंकि वे सदा अपने को सावधान रखा करते हैं। रागवश किसी भी चीजको अपनी मान लेना यह भी चोरी है। है परपदार्थ और उसके प्रति स्नेह जग जाय, उसके प्रति राग हो जाय तो यह भी एक चोरीका भाव है। इतनी भी सूक्ष्म बातसे बचने वाले महापुरुष किसीकी वस्तुको चुरा लें, यह कहां सम्भव है? और ऐसे ही महान् परिणामके कारण उनकी बाहरीवृत्ति ऐसी है कि कोई चुरानेका साधन ही नहीं। कोई कपड़ा हो, जेब लगी हो अथवा सदूक आदिक कोई चीज रखते हों तो चुरानेकी बात भी सम्भव है। जब कोई उनके परिग्रह ही नहीं है तो फिर उनमें चुरानेकी बात कहां सम्भव है? इस अचौर्यमहाव्रतके वे साक्षात् एक प्रतीक हैं। जहां वे ठहरे हों वहां ठहरना चाहें अन्य कोई तो ठहर जावे उन्हें साधु मना नहीं करते। हां

ध्यानकी साधनाके लिए उन योगीजनोंको एकान्त स्थान प्रिय है। इसलिए वे एकान्तस्थानमें ठहरते हैं। वहीं और कोई ठहरना चाहे तो उसका विरोध भी नहीं करते। वे तो कहीं एकान्तमें जाकर ठहर जाते हैं। यों अचौर्यमहाव्रतके धारी वे योगीश्वर कर्मोंकी विशुद्धिके लिये, कर्मोंको दूर करनेके लिए अन्तर्बाह्य तपश्चरण करते हैं।

योगियोंकी ब्रह्मचर्यमहाव्रतसंयुतता--चौथा महाव्रत है— ब्रह्मचर्यमहाव्रत। उसका परमार्थ प्रयोजन तो है यह कि ब्रह्म मायने आत्मा और चर्य अर्थात् लीन हो जाना, आत्ममग्न होते रहना सो है ब्रह्मचर्यका पालन और ऐसे जो परमब्रह्मचर्यके पालनके प्रयत्नशील हैं उनका बाह्यमें ब्रह्मचर्य होता है, वे कुशील पापका मन, वचन, कायसे परित्याग कर देते हैं। मोहीजनोंको इस ब्रह्मचर्यमहाव्रतका धारण करना कठिन मालूम होता है लेकिन जिनकी दृष्टि अपने आत्मस्वरूप पर लगी है और इस आत्मावलोकनमें ही अपना सर्वस्व हित समझते हैं, अन्य कोई धुनि है ही नहीं, वे इस आत्मस्वरूपके निकट बने रहनेमें तृप्त रहा करते हैं, आनन्दमय हुआ करते हैं, उनके वेदना भी उत्पन्न नहीं होती। ब्रह्मचर्यका विरोधी परिणाम कुशील है, वह तो मनोज है। मनमें संकल्प हुआ कि यह काम वेदना हुई और कामवेदनासे पीड़ित होकर उस तरहका फिर वह यत्न करता है। तो जिनका मन संयत है और मन इस आत्मस्वरूपकी ओर ही लगा हुआ है, वह ही धुनि जिनकी हुई है ऐसे पुरुषोंको ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना कुछ भी कठिन नहीं है। उनके लिए तो अति सुगम है। तो ऐसे ब्रह्मचर्यकी मूर्ति ये योगीश्वर वनमें आत्मशान्तिके लिए कर्मोंकी विशुद्धिके लिए तपश्चरण करते हैं।

योगियोंकी परिग्रहत्यागमहाव्रतसंयुतता--इसी प्रकार ५वां महाव्रत है परिग्रहत्याग महाव्रत। धन दौलत, परिवार मित्रजन, यश कीर्ति आदिक ये सब परिग्रह बन जाते हैं। इन समस्त परिग्रहोंका त्याग ये साधुजन इसलिए करते हैं कि इनसे आत्माका रच भी हित नहीं है, और जब तक इनका सम्पर्क रहेगा तब तक आत्माको क्षोभ रहेगा, अज्ञान रहेगा, और उस अज्ञानभावमें जो करतूत करेंगे वे सब करतूत जन्म मरणकी परम्परा बढ़ाने वाली बनेंगी। इन परिग्रहोंसे तो इस संसारमें रुलना ही होता है। शान्तिकी बात परिग्रहके सम्बंधसे कभी मिल ही नहीं सकती। अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग समस्त प्रकारके परिग्रहोंका त्याग वे साधुजन सहज ही कर लेते हैं, और सकल परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रन्थ अवस्थामें रहते हुये इस केवल आत्मस्वरूपको निरखकर वे तृप्त रहा करते हैं। यों व परिग्रहों

का त्याग करके वनमें एक आत्मशान्तिके लिए परमतपश्चरण करते हैं। यही उनका योग है। योगियोंकी यही एक परमआनन्दका लाभ प्राप्त करनेकी योजना है।

योगियोंकी आन्तरिक ईर्या— जाननहार रहनेकी स्थितिको छोडकर अन्य जितने भी विभाव उत्पन्न हुआ करते हैं उन सबमें मेरा हित नहीं। यह मैं आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित एक ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, इसमें बाहरका कुछ आना जाना नहीं रहता, यह अपने स्वरूपमें ही रहकर अपने आपकी सृष्टि किया करता है। जब बाह्यपदार्थोंका आश्रय लेकर कर्मोदय का निमित्त पाकर अपने आपमें कुछ रचता है तो वह विकार परिणमन रचा करता है, वे सारे विभाव दुःखरूप हैं। क्या रागमें अभी तक किसी ने शान्ति पायी ? भले ही मोही लोग व्यामोहमें इसपर ध्यान न दें और रागमें अंध होकर रागकी प्रवृत्तिमें रहकर अपना समय व्यतीत करदें, पर कुछ थोड़ा भी विवेकपूर्वक विचारा जाय तो स्पष्ट विदित होता है कि राग में शान्ति नहीं है। अच्छा यह तो बताओ कि राग किया जानेलायक संसार में क्या पदार्थ है ? अनन्त जीवोंमें से जो दो चार जीव अटपट घरमें आ गये हैं, क्या वे राग किये जाने योग्य हैं ? उन जीवोंसे आपका कुछ नाता है क्या ? कुछ भी तो नाता नहीं है, फिर अत्यन्त पर इन चेतन पदार्थों का आश्रय लेकर अर्थात् केवल कल्पनायें करके जो मैं अपने रागभावकी सृष्टि कर रहा हू उसके फलमें जो दुःख हो रहा है। उस दुःखसे बचाने में न ये ही समर्थ हो सकेंगे जिनमें राग किया जा रहा है, न अन्य कोई भी समर्थ होगा। क्या कभी किसीने द्वेष रखकर भी शान्ति भी पायी है ? द्वेष करते हुएमें अपने ही अन्दर क्रोध भाव व अरुचिभाव आदिक उत्पन्न हो जाते हैं, खुदको भोजनपान भी नहीं रुचता, विकल्पोंकी घुड़दौड़में कितना हैरान होना पड़ता है ? कौनसे विभावमें इस जीवको शान्ति मिलती है सो तो निरखिये। ये योगी पुरुष यह सब कुछ यथार्थ जानकर रागद्वेषके आश्रयसे दूर हुए हैं और बाह्यवृत्तियोंको त्यागकर अपने हृदयमें अब वे चलना चाहते हैं। वे बड़ी सावधानी इस बातकी रखते हैं कि अपने आपके पथमें अन्तः ही अन्तः गमन करते जायें।

योगियोंकी ईर्यासमितिसयुतता— बाहरमें कहाँ जाना, किस चीजसे राग करना ? कौन मेरा प्रभु है ? किसको क्या दिखाना ? वहाँ सबसे हटकर एक अपने अन्तः में गमन कर रहा है यह योगी। ऐसे योगीश्वर जब कभी बाहरमें गमन करते हैं किसी धार्मिकप्रयोजनसे तो बड़ी समिति-पूर्वक गमन करते है। किसी जीवकी हिंसा न हो जाय। तत्त्वज्ञानी जितनी

भी अपनी वृत्ति प्रवृत्ति करता है उन सबमें महान् उद्देश्य बना रहता है। किसी जीवकी मुझसे हिंसा न हो जाय। इसमें साधारण उद्देश्य तो यह है कि इसे तकलीफ होगी, मेरे कारण यह क्यों दुःखी हो। मैं तो थोड़ा-सा प्रमाद रखूँ और इस जीवके प्राणों पर संकट न पहुचे, साथ ही एक अन्त पवित्र उद्देश्य यह हुआ है कि किसी जीवका यदि इस प्रकार पैर आदिक रखनेसे घात हो गया तो वह जीव संक्लेशपूर्वक मरण करेगा और जिसके कारण वह अपना उत्थान करते करते उच्च अवस्थामें आया था उससे निम्नअवस्थाको प्राप्त हो जायगा। जैसे मान लो किसी तीन-इन्द्रिय जीवका घात हो गया और संक्लेशपूर्वक मरण करने के कारण वह एकेन्द्रियमें पहुच जाय तो यह हुआ उस जीवका निम्नअवस्था पाना। अब वह जीव अपने सुलझने के रास्तेसे बहुत दूर हो गया। यद्यपि वह असंज्ञी जीवा था, असंज्ञी जीवोंको मन न होनेसे सुलझनेका कुछ भी विवेक नहीं रहता लेकिन कुछ ज्ञानका विकास, कुछ क्षयोपशमका विकास ये तो होते हैं ना? तो जिस तीनइन्द्रिय जीवका घात हो जाने से, उसे संक्लेशपूर्वक मरण करने से निम्नअवस्थाको प्राप्त करना पड़ा तो उसका तो यह एक बहुत बड़ा अकल्याण हो गया।

ईर्यासमितिमे चार प्रकारकी सावधानी—ये योगीश्वर जो अपने आपके अन्तःस्वरूपमें सावधानीसे गमन करनेका, विहार करनेका उद्देश्य रखा करते हैं वे योगीश्वर जब बाहरमें विहार करते हैं तो कहीं जीवहिंसा न हो जाय, ऐसी सावधानीपूर्वक विहार करते हैं। तभी तो ईर्यासमितिमें ४ बातोंका ध्यान रखा जाता है। चार हाथ आगे जमीन देखकर ही चले ताकि जीव न मरे। इतने मात्रसे ईर्यासमिति नहीं बनी। कल्पना कर लो कि कोई पुरुष पाप करनेके लिए जा रहा है और किसी जीवकी हिंसा न हो जाय यों निरखकर सावधानीसे जा रहा है तो क्या वह ईर्यासमिति मानी जायेगी? दिनके प्रकाशमें जो चार हाथ आगे जमीन निरखकर जाय, किसी अच्छे धार्मिक कामके लिए जाय और समतापरिणाम रखता हुआ, क्षोभ न रखता हुआ, क्रोध न करता हुआ विरक्तबुद्धिपूर्वक जाय तो ईर्यासमिति होती है। ये योगीश्वर इस ईर्यासमितिसे सयुक्त हैं और कर्मोंकी विशुद्धिके लिए परमार्थ तपश्चरण कर रहे हैं।

योगियोंकी भाषासमितिसंयुतता—दूसरी समितिका नाम है भाषासमिति। भाषाका भलीविधिसे प्रयोग करना इसका नाम है भाषासमिति। किसी जीवके लिए मर्मछेदी वचन न निकल जायें, किसी का दिल दुखाने वाले न हो जायें और किसीका अहित भी न हो जाय। ऐसी दोनों तरह

की सावधानी रखते हुये ये महापुरुष वचन बोला करते हैं। बात तो की जाय हितकी पर कटु शब्दोंमे यदि बोला जाय तो वे शब्द तुरन्त ही सुननेमें अप्रिय लगेंगे, तो प्रथम तो ऐसे अप्रिय शब्द सुनकर कोई भी पुरुष हितकी ओर दृष्टि नहीं ला सकता। कोई विरला पुरुष ले आये यह बात अलग है। तो अप्रियवचन बोलना भाषासमितिसे बहिर्गत है। कोई पुरुष प्रिय वचन तो बोले पर अहितकारी बोले, जैसे कि सभी लोग प्रायः रागद्वेषादिसे युक्त बातें बोला करते हैं, यद्यपि वे बातें लोगोंको सुनने में भली लगती हैं, पर वास्तवमें वे इस जीवका अहित कराने वाली बातें हैं। तो जो वचन हितरूप हों और प्रिय हों वे वचन समितिके अन्तर्गत हैं और ऐसी सावधानीसे बोलने वाले पुरुष स्वयं इतने मर्यादित हैं कि उनके वचन परिमित ही निकलते हैं। ऐसी भाषासमितिके पालनहार योगीश्वर जो कि विचार तो यह रखते हैं कि कुछ बोलना ही न पड़े, पूर्ण मौनसे अपने आपमें अत संयत होकर अपने उस स्वरूपानुभवका स्वाद लेते रहें। उत्सुकता तो यों है, आन्तरिक इच्छा तो यों है फिर भी करुणा-वश, कर्मविपाक इसही तरहके वहाँ हैं कि दूसरोंके भलेके लिए भीतरमें भावना जगती है, वे भाषासमितिका प्रयोग करते हैं।

योगियोंकी एषणासमितिसयुतता—ये योगीश्वर मौनसे रहकर, शान्त रहकर अपनेमें कुछ खोजा करते हैं। निज अन्तःप्रकाशके खोजने की विधि गुप्त है, अन्तस्तत्त्व भी गुप्त है, उस अन्तस्तत्त्वके खोजनेके लिए वे योगीश्वर भीतर ही भीतर अपने उपयोगको समाये चले जा रहे हैं। तो वे योगीश्वर अन्दर ही अन्दर क्या निरख रहे हैं, उन्होंने क्या खोज की है, जो कुछ उन्हें दिखा, जहां वे रमा करते हैं, वह है उनका वास्तविक आहार। आत्माका पोषण। आत्माका भोजन अपने आपमे पड़ा हुआ है, जो अद्भुत आनन्दका कारण है उसकी एषणा कर रहे हैं योगी। एक ही मात्र जिनके जीवनका उद्देश्य है। अपने आपमे बसे हुए इस ज्ञानस्वरूप कारणपरमात्मतत्त्वके निकट रहना, कृतार्थ रहना, सब झंझटोंसे दूर होना। जो सत्य है उसपर जिसकी सहजदृष्टि लगती है ऐसा अन्त. ही अन्तः आत्मीय वास्तविक आहारकी एषणा करते रहने वाले और उस आहारसे तृप्त रहने वाले योगीश्वर जब कभी क्षुधा वेदना से शरीर सम्बंधके कारण त्रस्त हो जाते हैं और जानते हैं कि अभी हमको आन्तरिक एषणा करनेको और समय चाहिये। अभी हम अपने वास्तविक स्वरूपके अनुभवरूप आहारमें पूर्ण नहीं हो पाये हैं, अभी जिन्दा रहना चाहिये, सो एक इस निजकार्यसिद्धिके लिए जब वे भोजनकी एषणा

करते हैं, तब वे विधिपूर्वक अन्तरायोंको टालकर, गृहस्थकी पूर्ण भक्ति निरखकर जिसके द्वारा वे आहारशुद्धिका अनुमान करते हैं ऐसी समस्त विधियों सहित वे वैराग्यपूर्वक आहारमें भी कुछ प्रवृत्ति करते हैं, वह प्रवर्तन संयमरक्षाके लिए है। कुछ थोड़ा भी किसी जीवपर संकट आये, ऐसी बात सुन लें तो वे फिर आहार नहीं करते, इतने करुणावान हैं। दूसरे जीवकी विपदा भी सुनते रहें और वहां अपना आहार करते रहें, ऐसी चेष्टा करुणावानके नहीं हुआ करती है। कहीं बड़ी विपत्ति हो, कोई प्राणघात जैसा आक्रन्दन कर रहे हों। कहीं कोई जीव मरता हुआ दिख जाय, चूहेको बिल्लीने पकड़ लिया यों ही दिख जाय, कोई पञ्चेन्द्रिय जीव मरा हुआ दिख जाय, या अपने पैरोंके बीच आकर कोई कुन्थु जीव यों ही बेहोश हो जाय, कुछ भी घटना दुःखदर्दभरी दिख जाय तो वे आहार करना नहीं चाहते। जितने अन्तराय हैं उन सबमें एक बात भरी है कि वे अपने शरीरसे इतना निष्पृह हैं कि वे अधिक राग सहित भोजन प्रवृत्ति नहीं कर सकते। ऐसे ये योगीश्वर एषणासमितिमें सावधान रहते हैं। एषणाका अर्थ है— व्यवहारमें भोजनके लिए जाना, भोजनकी खोज करना। एषणाका अर्थ खोज है। जिनको पता नहीं कि आज कहां आहार होना है, जहां भी योग मिला वहां आहार ले लेते हैं। ऐसे निष्पृह और केवल आत्मसाधनाका ही उद्देश्य रखने वाले योगीश्वर एषणासमितिका पालन करते हैं।

योगियोंकी आदाननिक्षेपणसमितिसयतता—चौथी समिति है आदाननिक्षेपणसमिति। ये योगीश्वर परमार्थतः अन्दर ही अन्दर रहकर किसको तो लेते हैं, किसको रखा करते हैं, किसका शोधन किया करते हैं? विभावोंको हटाना, स्वभावको ग्रहण करना, यही जिनका भीतरमें एक काम चल रहा है, ऐसी ही जो अपनी धुनि बनाये रहता है, इस आन्तरिक स्वभावमें, उपयोगके निक्षेपणमें, समतासे विकारभावोंके अन्यप्रक्षेपणमें जो अपनी सावधानी बनाये हुए हैं वे जब बाहरमें कुछ जरूरत समझते हैं, कमण्डल, पिछी, पुस्तक उठाने और धरनेकी, तो सावधानीपूर्वक उन वस्तुवोंको धरते और उठाते हैं ताकि किसी जीवको बाधा न हो जाय। जिन्होंने समस्त जीवोंको अपने ही समान समझा है वे जानते हैं कि कैसी कैसी परिस्थितियोंमें जीवका अहित है और उस जीवको दुःख होता है, वे किसी भी जीवको दुःख देना अथवा दुःखी देखना पसंद नहीं करते। उनकी सबके प्रति सुखी रहनेकी भावना रहती है और उनका यत्न भी ऐसा होता है कि जिससे सब जीव सुखी और शान्त रहें। ऐसे योगीश्वर

आदाननिक्षेपणसमिति से संयुक्त होते हैं और वनान्तमें रहकर कर्मोंकी विशुद्धिके लिए अपना परम तपश्चरण किया करते हैं।

योगी संतोंके साथी अहिंसा, करुणा और वैराग्य— जिनके स्वपरका यथार्थ निर्णय हुआ है और इस ही कारण परभाव परद्रव्य सबको भिन्न और अहितरूप जानकर उनसे जिन्होंने अपेक्षा की है और इसके ही प्रसादसे जिनको अपने स्वद्रव्यमें स्थिति पानेके लिए प्रेरणा मिली है और स्वमें स्थितिका यत्न करते हुये जो अपनी वास्तविक करुणा कर रहे हैं ऐसे योगीजन जब कभी संयमकी सिद्धिका साधन जानकर कभी क्षुधा-वेदनासे ऐसे पीड़ित होकर जिससे कि शरीरकी रक्षा किया जाना असंभव समझ ली हो, आहारके लिए विधिपूर्वक जाते हैं तो आहार किस विधि से करते हैं उसका यह प्रकरण है। योगी पुरुष अहिंसा और करुणा की मूर्ति होते हैं। उनकी सारी विधियोंमें अहिंसा और करुणा गर्भित है। फिर भी एक मुख्यता यह बतानेके लिए कि जीवघात न हो, वह तो है अहिंसा और किसी जीवको कष्ट न पहुचे ऐसे भावको कहते हैं करुणा। अहिंसा करुणा और विरक्ति इन तीन बातोंका सम्मिश्रण रहता है उनकी आहारचर्या आदिक सब विधियोंमें।

योगीके उद्दिष्ट दोषका परिहार—ये विरक्त योगीसंत जब सिद्ध भक्ति करके आहारचर्यामें निकलते हैं तो स्वात्मगौरव जीवोंकी अहिंसा और दयाका परिणाम ये तीनों उनके साथ-साथ ही चलते हैं। जहाँ कहीं विधिवत् दातार ने पड़गाहा, जो दातार निर्लोभ है, भक्तिवान है पड़गाहा तो वहाँ भोजन करने जाते हैं, किन्तु यदि यह समझ जायें कि यह भोजन तो केवल मेरे लिए ही बना है, इतना सा ही तो यह भोजन है, एक आदमीके लिए बनाया गया यह भोजन है, इसमें यही तो भाव होगा कि इनके लिए सिर्फ बनाले, हम लोग तो दूसरे चूल्हेमें चौकेमें खा लेंगे यथा-तथा, ऐसा दृश्य देखकर भी साधुजन वहाँ आहार नहीं लेते हैं। इसमें करुणाकी बात भरी हुई है, ऐसी बुद्धि होनेपर कि केवल मेरे लिए भोजन बना है और भोजन करले तो साधुके इसमें दोष आता है। इस प्रसंगमें यह आजकी पद्धतिमें शंका करने वाले लोगोंको यह जान लेना आवश्यक है कि जब कभी गृहस्थ अपने घरके सब लोगोंको भी शुद्ध भोजन मिलेगा, सबके लिए शुद्ध भोजन बनाना है और उसमें यह हमारा भाव रहा आये कि हम साधुको भी पड़गाहेंगे, तब भी वहाँ उद्दिष्ट दोष नहीं आता है। यह केवल उस ही के लिए भोजन बने और घरके लोग सब अलग चौकेमें भोजन करेंगे ऐसी बात हो तो वहाँ उद्दिष्ट दोष होता है। गृहस्थ तो

बनाता ही भोजन। यदि एक साधुको आहारदान करनेका भाव रखकर आज अहिंसा विधिका यत्न करके उस भोजनको बनाया है तो उसने एक विशेषता ही तो की है कि जो भोजन सब घर वालोंके खाने के लिए अटपट विधिसे यथातथ्य हिंसा आदिक प्रवृत्तियोंसे बनाया जाता था आज उसमें सावधानीसे हिंसाकी बात तजकर विधिसे बनाया है तो उसे भोजन बनानेका काम तो रोज करनेको था ही, सो किया तो वही, उसमें एक सावधानी रखी, हिंसा टली, तब उसने अपराध नहीं किया। कहां उद्दिष्ट दोषकी बात नहां आयी। उद्दिष्ट दोष तो वहा ही है जहा केवल उस साधुके लिए भोजन बनाया जाय। इसमें साधु करुणावश कि मेरे लिए इसने इतना श्रम किया है, अलगसे आरम्भ किया है क्योंकि सब घरके लिये भोजनका तो आरम्भ किया जा रहा है, अलग उनका अपना किसी चौकेपर और यहाँ केवल मेरे लिए ही किया गया है, ऐसा जानकर करुणाकी मूर्ति अहिंसाव्रती योगी पुरुष आहार ग्रहण नहीं करते। कोई पुरुष कभी ऐसा भाव करके कि आज खूब शुद्ध भोजन बनायें, बहुत अधिक और साधुओंके लिए जो भी यहां आयें, सब भोजन कर जायें तो इतना प्रचुर भोजन बनने पर भी वह उद्दिष्ट दोषमें शामिल है। कारण यह है कि उस श्रावकने अपने लिए तो रोजकी भांति अलग ही प्रबंध रखा और यह प्रबंध केवल सब साधुजनोंके लिए है तो वहा भी वह दोष है। तो ऐसे आरम्भवान और चौके वाली घटनाको जानकर साधुजन आहार नहीं लेते। इसमें करुणाकी छाया है, अहिंसाकी छाया है और विरक्तिकी भी छाया है। यदि आसक्ति होती तो सोचते कि होने दो कुछ भी, यहां तो अच्छी तरह भोजन मिलेगा, तो वैराग्य, करुणा और अहिंसा, इन तीन की बात इसमें शामिल है।

साधिक और पूतिदोषका एषणासमितिमें परिहार—उद्दिष्ट तो है बहुत बड़े दोषकी बात, पर कोई पुरुष बनते हुए भोजनमें ही साधुको दान देने के अभिप्रायसे कुछ और भी डाल दे और भी अधिक भोजन बनावे, अथवा भोजन बनानेकी रुचि हो तो किसी प्रश्नके बहाने साधुको और रोक लेना कि आध घटा देर और हो जाय, इस तरहसे जो भोजनकी प्रवृत्ति श्रावक करता है वह साधिक दोष कहलाता है। इसमें भी साधुके निमित्तका दोष आ गया है। मेरे लिए ऐसा कोई कष्ट किया है, यह जान जायें तो साधुजन आहार नहीं लेते। ये जो दोष कुछ पहिले बताये जा रहे हैं इसमें यह समझना कि इन दोषोंका भागी श्रावक है। ये दोष श्रावकके ऊपर लगते हैं, पर साधुजन जान जायें तो आहार नहीं लेते। ये

साधुके द्वारा किए गए दोष नहीं, श्रावकके द्वारा किए गए दोष हैं। कुछ दोष साधुका होते हैं, उनको इसके बाद बतावेंगे। कभी कोई श्रावक यों करे कि प्रासुक वस्तुमें अप्रासुक वस्तु मिला दे, गर्म जल मिला दे, किसी गर्म चीजमें ठंडी चीज मिला दे तो ऐसे आहारको अप्रासुमिश्रण आहार कहते हैं। श्रावक इसमें दोष पाता है और श्रावक ऐसा सोचे कि इस बर्तन को तब तक अन्य काममें न लेंगे जब तक कि साधुको आहार न दे लेंगे। ऐसे ही चूल्हा चक्की आदिक सभी चीजोंके सम्बन्धमें अगर कोई कल्पना की बात आती है तो उसमें हिंसाका दोष लगता है और साधुके निमित्तका भी दोष लगता है। रंचमात्र भी साधुके निमित्तसे कुछ खटपटकी हो तो वे साधुजन आहार नहीं लेते हैं। मान लो चूल्हा तो रोज नहीं बुझाया जाता था और आज चूल्हा बुझाया गया तो यह भी दोषमें ही शामिल हुआ। ऐसी छोटी छोटी बातें भी जहां थोड़ा भी कष्ट देखा श्रावकका वहाँ करुणामूर्ति साधु आहार नहीं लेते हैं। यह साधुजनोंके आहारचर्याकी विधि बताई जा रही है।

एषणासमितिमें मिश्र और प्राभृतदोषका परिहार—कभी कोई श्रावक ऐसा जनरल (साधारण) चौका लगाये कि जो भी आयेगा, गृहस्थ आयेंगे उन्हें खिलायेंगे, साधु भेष वाले आयेंगे उन्हें खिलायेंगे और कोई साधु आयेंगे उन्हें भी खिलायेंगे इस प्रकार भी बनाया हो, बड़ा चौड़ा हो, बड़े प्रबंध की बात हो तो वहां भी साधुजन आहार नहीं लेते, इसका कारण है कि वह वैराग्यके विरुद्ध बात है। इसमें असंयमी जनोंका संपर्क होगा, असंयमीजनोंकी भीड़ रहेगी और ऐसी जगह आहार करने में दीनताका भाव रहेगा, उसमें दैन्य दोष आयेगा और साधुके प्रति भक्ति भी विशेष न कहायेगी। तो भक्तिरहित श्रावकके यहां साधुजन आहार नहीं लिया करते हैं। इस प्रकार साधुजन अपने वैराग्य, करुणा और अहिंसाकी प्रतिष्ठा किये रहते हैं। श्रावकोंका कर्तव्य है कि वे प्रतिदिन प्रतिग्रह करके साधुजनों को आहार देकर भोजन करें। अगर कोई श्रावक प्रतिदिन नहीं कर्तव्य कर सकता तो वह नियम ले ले कि मैं अमुक तिथिके दिन शुद्ध भोजन सब घरके लिए बनाऊँगा और साधुको आहार देकर खाऊँगा और उस दिन आहार दे तो वह विधिमें शामिल है। फिर वह गृहस्थ यदि ऐसा सोचे कि इस दिनका नियम तो है, पर बजाय उस दिनके मैं एक दिन अथवा दो दिन पहिले कर लूँ तो ऐसा करने पर उस श्रावकको दोष आयेगा। यदि कोई साधु इस बातको जान जाय कि इस श्रावकका नियम तो इस दिन का है और उसके बजाय इस दिन किया है, तो इसमें इस दाताको बड़े

विकल्प करने पड़े होंगे, इसने अपने नियत प्रोग्रामको बदलकर नये-नये प्रोग्रामकी बात सोची होगी, इसको तमाम प्रकारकी आकुलताय, तमाम प्रकारके विकल्प करने पड़े होंगे, तो ऐसा सोचकर वे साधुजन उस दातार के यहां आहार नहीं लेते। कितना आत्मगौरव है, कितनी दातार पर करुणा है?

एषणासमितिमें बलिदोष व न्यस्तदोषका परिहार—कोई कोई श्रावक ऐसे भी होते हैं कि आहार किया, किसी देवताको भी उसमेसे चढ़ा दिया, कोई समय होता है ऐसा, जैसे कोई पर्व हो या विवाह आदिकके अवसर हों तो उसमें कुछ देवताओंको भी भोजन चढ़ाते हैं, किसी भी जगह चढ़ा दिया और उस बने भोजनमें या उस ऐसे बचे हुए भोजनको वह श्रावक देवे तो साधुजन नहीं लिया करते हैं। इसमें वे सावद्य दोष समझते हैं। बड़े आरम्भ किये, कहां-कहां, चढ़ानेकी दृष्टिसे भोजन बनाया, यह भोजन निर्दोष नहीं है। योगी इतना तक भी दूसरेका कष्ट बचानेका भाव रखते हैं कि जिस बर्तनमें भोजन बनाया गया हो उसमेंसे निकालकर भोजन-सामग्री अलग रख दे, और फिर सजे सजाये थालमें साधुको आहार करने को दे तो वे साधु भोजन नहीं करते हैं, इसे न्यस्तदोष कहते हैं। इसमें एक तो नवीन आरम्भ किया। सहज बात थी, भोजन बना, जिस बर्तनमें बना रहे उसीमें रहने दे, समयपर निकालकर दे दे, उसमेंसे निकालना, फिर कहीं रखना, फिर उठाना देना, इसमें नया आरम्भ भी हुआ और फिर कोई दूसरा दे, धरे, तो भी कुछ गड़बड़ीमें वह पड़ सकता है, ऐसे आहारको साधुजन नहीं लेते।

एषणासमितिमें प्रादुष्कृत और क्रीतदोषका परिहार—साधु घर आ जाय, फिर भोजनके बर्तनको एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह ले जाय और दे तो उसमें भी दोष है। साधुके घर आनेपर फिर किवाड़ खोलना, कोई पर्दा दूर करना, कोई बर्तन मलना, दीपक जलाना आदिक भी कार्य सदोष हैं। ऐसी घटनापर साधुजन आहार नहीं लेते, क्योंकि उस भोजन में शुद्धि नहीं होती है। जीवहिंसा सम्भव है, ईर्यापथ नहीं बनता। करुणा की मूर्ति योगीश्वर क्रीतआहारको नहीं ग्रहण करते हैं। कोई पुरुष जब ही साधु भिक्षाके अर्थ घर आये तब ही यह कोई सचित्त अचित्त कोई द्रव्य देकर उसके एवजमें भोजन ले आये और दे तो उसे साधुजन ग्रहण नहीं करते। जैसे साधु तो आहार करनेके लिए आ गया है और कोई घरका व्यक्ति कहे कि जावो जल्दी बाजारसे अमुक चीज ले आवो, घी दूध शक्कर आदिक तो ऐसे अनेक प्रकारके परिवर्तन वाले आहारको साधु-

न ग्रहण नहीं करते हैं। इसमे विकल्प बहुत किये जाते हैं और विकल्पों की बहुलतासे यह नैमित्तिक आरम्भ होता है। उसमें दोष आता है।

एषणासमितिमे प्रामित्य और परिवर्तित—कोई पुरुष ब्याजपर उधार लाये हुए अन्नसे भोजन तैयार करके दे अथवा वैसे ही उधार लाकर भोजन बनाकर दे तो यह प्रामित्यदोष है, ऐसा भी आहार साधुजन नहीं ग्रहण करते, क्योंकि उधार लाई हुई चीजको चुकानेमें सक्लेश उठाना पड़ेगा, ऐसा आहार करनेमें अदयाका दोष है। साधुवोंकी मधुकरी वृत्ति होती है। वे बने हुये भोजनमेंसे अपना योग्य भोजन लेते हैं, उसमें यह कल्पना नहीं रखते कि यह चीज बहुत मिष्ठ है, उत्तम है, जो कुछ बना है सो ले लिया। वे एक जीवनरक्षाके लिए आहार ले आते है। और यह समझमें आये कि इसने बड़ा कष्ट उठाया, इसने दूसरेसे उधार लेकर बड़ा कष्ट उठाकर भोजन तैयार किया है, ऐसा जान जायें तो साधुजन आहार नहीं लेते। कारण कि इस श्रावकको उधार लिया हुआ सामान अदा करनेमें संक्लेश उत्पन्न होगा। कोई किसी चीजकी अदल बदल कर ले कि भाई तुम हमसे दूध ले लो, हमें घी दे दो, हम आहार देंगे, ऐसे अदल बदलका भी पता हो जानेपर साधुजन आहार नहीं ग्रहण करते हैं। सुननेमें बातें बहुत छोटी लग रही होंगी, लेकिन दातार तो हर किस्मके होते हैं। कोई धनी ही दातार बने सो बात तो नहीं, गरीब दातार भी होते हैं। उपरोक्त सभी बातें दातारमें सम्भव हैं। इस कारण आचार्यने पहिलेसे ही लिख रखा है और जैनशासनमें ये सब विधियां परम्परासे चली आयी है।

एषणासमितिमें निषिद्ध अभिहृत दोषका परिहार--कोई पुरुष नौकर या घरका ही कोई कभी किसी चीजका निषेध कर दे कि इस चीजको न दो, तो चाहे उसने निषेध किया हो सहजभावसे, लेकिन निषिद्धि हो जाने पर साधुजन उस चीजको नहीं ग्रहण करते हैं, क्योंकि निषिद्ध चीजका ग्रहण करनेपर असभ्यता आयगी। कोई परगांवसे, दूसरे मुहल्लेसे, दूरसे आहार लाये और जहां साधुका आहार होता है वहां दे तो उस आहारको साधुजन नहीं ग्रहण करते। दोनों ओरके उसी लाइनके अन्य तीन-तीन घरों तकसे लाया हुआ आहार साधुजन ले सकते हैं, पर बहुत दूरके अथवा सड़कें काटकर आने वालेके आहारको साधुजन ग्रहण नहीं करते, क्योंकि उसमें ऐसा व्यासंग रहता है कि वह अच्छी तरह देखकर भी न आ सका होगा, मार्गमें जीवरक्षा करके भी न आ सका होगा।

एषणासमितिमें उद्भिन्न, आच्छेद्य एव मालारोहणदोषका परिहार-- कभी कोई चीज, जैसे घी अथवा शक्कर डिब्बेमें बन्द हो, पैककी हुई हो

और उसे उसी समय खोलकर साधुको देने लगे तो वे साधुजन उसे नहीं ग्रहण करते, क्योंकि जल्दीमें खुलनेपर वहा जीवहिंसाकी सम्भावना है। कदाचित् कोई श्रावक किसी बडे आदमीके डरसे आहार दे, जैसे कहीं राजा नाराज न हो जाय, या ये सब बड़े आदमी हमपर अप्रसन्न न हो जायें आदि सोचकर आहार दे तो ऐसे आहारको भी साधुजन नहीं लेते, इसलिए कि उसमें गृहस्थको सक्लेश होता है। कोई पुरुष सीढ़ीसे उतर कर ऊपरसे कोई चीज नीचे लाकर आहारमें दे तो उसे भी साधुजन नहीं ग्रहण करते क्योंकि उस उतरने वालेके सीढ़ीपरसे गिर जाने तक का सदेह रहता है। ऐसे करुणावान साधु पुरुष ऐसे मालारोहण आहारको नहीं ग्रहण करते हैं, इस तरह ये १६ दोष हैं। ये दोष श्रावकजन किया करते हैं, पर साधुजन जान लें कि श्रावक ऐसे दोष करके आहार दे रहा है तो उसे वे नहीं ग्रहण करते हैं।

एषणासमितिमें धात्रीदोष और दूतदोषका परिहार—कुछ दोष ऐसे हैं कि जो साधुकी आसक्तिसे साधु ही उन दोषोंको किया करते हैं। जैसे गृहस्थके घर कुछ ऐसी बात कह कर कि तुम्हारे घरके बच्चे बडे अच्छे हैं इनको यों खिलाओ, यों सुलाओ, यों नहलाओ, इनको इस तरहसे पहिना ओढ़ा कर शृङ्गार करके, अच्छे ढंगसे रखा करो, आदि कुछ ऐसी बातें बच्चोंकी रक्षा करने वाली धाई आदिको कहना कि जिससे श्रावक यह समझले कि इन महाराज जी को हमारे बच्चोंसे बड़ा प्रेम है और फिर वह श्रावक बडे उत्साहपूर्वक हमें आहार दे, इस प्रकार के भाव यदि साधुमें आ आयें तो वह दोष उस साधुका ही है। तो ऐसा दोष करके भी साधुजन आहार नहीं ग्रहण किया करते। कभी कोई साधु किसी दूसरे ग्रामको जा रहा है और किसीने कहा कि महाराज जी उस गाँवके अमुक व्यक्तिको हमारी यह चिट्ठी दे देना या हमारी कुशल कह देना और वह साधु यदि वैसा करता है तो उसमें दूतदोष लगता है। उस दोषको करके फिर उस घर साधुको आहार न करना चाहिये और अगर करता है तो उसमें दोष है। क्योंकि वैसा करने में ऐसा भाव आता है कि साधुने अपने आहार की व्यवस्था कराली।

एषणासमितिमें निमित्तदोष, वनीपकवचन दोष व आजीवदोषका परिहार—कोई निमित्तज्ञानी साधु हो तो निमित्तकी बात बताकर, सगुन असगुन, लाभ अलाभ आदिककी बातें बताकर फिर उसके यहां आहार ले तो उसमें भी दोष है, क्योंकि उसमें भी एक आजीविका चलानेका भाव आ गया। गृहस्थ तो और तरहसे कमाकर खाते हैं और यह साधु उस तरहसे कमा

कर खाता है, यही तो बात आयी। ऐसा भाव यदि साधुका हो तो वह सदोष है। तो ऐसा भाव बनाकर भी साधुजन आहार नही किया करते हैं। कोई आहार देने वाले श्रावककी हाँ में हाँ मिलाकर कुछ उसे सतुष्ट कराकर भी साधुजन आहार नहीं ग्रहण किया करते, क्योंकि उसमें दीनता का दोष है। ऐसे दोषको वनीपक दोष कहा करते हैं। अपनी जातिकी शुद्धि बताकर जैसे मैं बडे उच्च कुलका हू मैं गृहस्थीमें इस प्रकारके साधनों में रहता था आदि, यों अपनी कला चतुराई बताकर कुछ जत्रमंत्र आदिक देकर फिर उसके घर आहार करे ऐसे उपार्जित दोषोंसे युक्त आहार भी साधुजन नहीं ग्रहण करते हैं।

एषणासमितिमे क्रोध, मान, माया, लोभ, पूर्वस्तुति, पश्चात्स्तुति, चिकित्सा विद्या आदि उत्पादन दोषोंका परिहार—क्रोध करके भी साधुजन आहार नहीं ग्रहण किया करते हैं, क्रुद्ध होकर आहारप्रबन्ध कराकर आहार ग्रहण नहीं करते हैं। मान अभिमानके वश होकर भी साधुजन आहार नहीं ग्रहण किया करते, मायाचार छल कपट आदिक करके भी आहार नहीं ग्रहण किया करते, लोभपरिणामके वश होकर भी साधुजन आहार नहीं ग्रहण किया करते। लोभ तो समस्त पापोंका मूल है, आसक्तिका भाव रखकर भोजन करनेमें तो उनके मूल गुणोंमें विराधना है। कोई दातारकी पहिले स्तुति करे जिससे कि यह श्रावक मेरी ओर आकर्षित हो और फिर उसके यहाँ भोजन करे तो यह पूर्वस्तुति दोष है, आहार करनेके बाद बैठकर कुछ भोजन की व उस श्रावककी प्रशंसा करे, इस उद्देश्यसे कि यह फिर इसी प्रकारसे आहार कराये तो यह पश्चातस्तुति दोष है। कुछ चिकित्सादिकी बात बताकर फिर उसके घर आहार करे तो उसमें भी साधुको दोष है, कोई मत्र विद्या अध्ययन जंत्र मत्र वशीकरण आदिककी आशा देकर उसके यहा आहार ग्रहण करे तो वह भी साधुका दोष है। इन समस्त बातोंमें यही परखते जाना है कि योगी पुरुष जो समस्त परिग्रहोंका त्याग करके वनमें एकान्तमें रहकर आत्मयोग साधना कर रहा है उसकी कैसी वृत्ति होती है? वे आहार करनेमें कितने अनासक्त रहते हैं? जैसे हिरण घास भी चर रहे हों और जरा भी किसी चीजकी आहट पाये तो वे झट उस आहारको तज देते हैं और सावधान हो जाते हैं, यों ही समझिये कि ये साधुजन ऐसे अनासक्त रहते हैं कि उस आहारचर्याके प्रसंगमें कोई भी दोष आ जाय तो उस समय वे आहारको तजनेमें रंच भी संकोच नहीं करते हैं। इतने आत्मगौरवके प्रेमी ये साधुजन होते हैं।

एषणासमितिमें चार महादोषोंका परिहार—उक्त चौदह चौदह उद्गम

और उत्पादक दोष हैं, इसके अतिरिक्त अन्य चार महादोष हैं जैसे अगार दोष। किसी वस्तुको स्वादिष्ट जानकर उसे खानेकी इच्छा करना और यह कुछ और भी देवे, इस प्रकारकी उसमें बुद्धि करना, ऐसी आसक्तिका भोजन करने को अगारदोष कहते हैं और ग्लानि करते हुए भी भोजन करे कि यह चीज अच्छी नहीं बनाया, यह तो रूखासूखा भोजन है, ऐसी ग्लानि रखकर भोजन करनेको धूमदोष कहते हैं। और विरुद्ध पदार्थोंको मिलाकर खाना संयोगदोष है और भोजनके परिमाणसे अधिक भोजन करना, यह अतिमात्र दोष है। साधुजन इतने निस्पृह होते हैं और आत्मसाधनाकी इतनी रुचि रखते हैं कि वे आसक्तिपूर्वक भोजन नहीं करते हैं, साथ ही यह बताने के लिए भी यह प्रकरण रखा है जो कि रोजके प्रसंगमें ही था कि यह जान जाये कि आहारमें किस किस प्रकारके दोष हुआ करते हैं जिन दोषोंको टालकर ही आहार देना चाहिये। इन दोषोंके परिहारका कथन सुनकर सहसा अनुमान हो जाता है कि यों मुनि अन्तरङ्गमें इतनी विशुद्धि रखते हैं।

एषणासमिति शंकित और पिहित दोषका परिहार—अपने आपके लिए सर्वस्व माने गये अपने आत्माके निकट बसनेकी धुन रखने वाले योगी संत जब कभी परिस्थितिवश आहारके लिए निकलते हैं तो कैसे श्रावककृत दोषोंसे बने हुये भोजनको टालते हैं और कैसे स्वयकृत दोषोंसे रहित भोजनको ग्रहण करते हैं? इसके वर्णनके बाद आज यह बात चलेगी कि जो आहार किया जाता है वह कैसा आहार निर्दोष कहलाता है और कैसा सदोष होता है? सदोष आहारमें कुछ तो भोज्यपदार्थगत दोष हैं और कोई कुछ कल्पनाकृत भी हो जाते हैं। दोनों प्रकारके दोषोंसे रहित आहार ग्रहण करना चाहिये ऐसा वर्णन इस प्रसंगमें चल रहा है। आहारमें दोष १० हुआ करते हैं—जैसे पहिला शंकित दोष। किसी भी भोजनमें साधु को ऐसी शंका हो जाय कि यह भोजन लेने योग्य है अथवा नहीं है, आगम में इसे लेने योग्य बताया है अथवा नहीं बताया है, तो ऐसे शंकित भोजन को साधुजन नहीं ग्रहण करते। दूसरा है पिहित दोष। किसी वजनदार ढक्कनसे या किसी अप्रासुक वस्तुसे ढका हुआ भोजन हो और उसे उघाड़ कर दिया जाय तो उस भोजनमें पिहित दोष लगता है। किसी भोजन बनाने वाले बर्तन पर कोई वजनदार चीज रखी हो और उसे कोई हल्की समझकर जल्दीमें उठाले तो वह ढक्कन गिर जाता है। जैसे जीनेकी सीढी जब बराबर बराबर दूरीपर बनी होती हैं तो झट हिसाबसे पैर रखते हुए चढ़ जाते हैं अथवा उतर जाते हैं और अगर सीढ़ी ऊँची नीची

बनी हैं तो अधिक सावधानी न रखने पर चढने अथवा उतरनेमें पैरमें मोच आ जाती है, इसी प्रकार समझ लो भोजन बनाये जाने वाले वर्तनमें कोई वजनदार ढक्कन रखा हो तो उसे जल्दी जल्दी उठाने में गिर जानेका संदेह रहता है, तो उस बर्तनमें बनी हुई भोजनसामग्री को साधुजन नहीं लेते हैं।

एषणासमिति मेंम्रक्षित, निक्षित, छोटित दोषका परिहार—तीसरा है म्रक्षित दोष—घी तैल आदिकके द्वारा सचिक्कण हुए हाथ या चम्मच कटोरी आदिसे दिये गए आहारके ग्रहण करने को म्रक्षित दोष कहते हैं। ऐसे चिकने हाथसे या चिकने बर्तनसे छोटे जीवोंको जरासी देरमें बाधायें पहुच सकती हैं। कहो घी की चिकनाई में कोई मक्खी ही आकर मर जाय। तो ऐसे सदोष आहारको साधुजन नहीं ग्रहण करते हैं। चौथा है निक्षिप्त दोष—जो भोजन वस्तु सचित्त पृथ्वी, जल, अग्नि, बीज सहित और त्रस जीव पर रखी हो उस पदार्थके ग्रहण करने को निक्षिप्त दोष कहते हैं। जिससे किसी जीवको बाधा होती हो जिस बर्तनसे कोई जीव दब गया हो या किसी सचित्त चीज पर रख दी गई हो तो उसे निक्षिप्त दोष कहते हैं, फिर उस भोजनको साधुजन नहीं ग्रहण करते हैं। ५वां है छोटित दोष। कुछ भोजन सामग्रीको हाथसे गिराकर या असावधानीसे अगुली ढीली बना ले और उससे दूध पानी आदिक गिरता रहे तो ऐसी विधिको सदोष कहते हैं और उसमें से कुछ भोजनसामग्री गिरा दे, कुछ ग्रहण करले, न अच्छा लगे कोई दूध पानी रस वगैरह तो उसे अगुली ढीली करके गिरा दे और इष्ट चीजको ग्रहण करले, यह तो साधुकी विधि में नहीं है अथवा दातारके हाथसे ही भोजन गिर जाय या खुदके ही हाथ से भोजन टपकता रहे तो ऐसा आहार ग्रहण करनेमें दोष है।

साधुवोंके निर्दोष आहारके परिज्ञानसे गृहस्थोंको योग्य कर्तव्यकी शिक्षा—यह साधुवोंकी एषणासमितिकी बात कही जा रही है। इससे यह शिक्षा लेनी कि जब इतनी बारीकी शुद्धि रखना आगममें बताया है साधु पुरुषों को तो हम भी अपनी शक्ति माफिक अपनी सीमामें कुछ तो विचार करें, यथातथा जितने चाहे बार खाना, गद्दीपर खाना, चलते हुए खाना, जूते पहिने खाना, ये सब कितनी गिरी हुई सी बातें हैं। कुछ इस पर ध्यान देना चाहिये और जो भी आलू, गोभीका फूल आदिक अभक्ष्य पदार्थ हैं उनको जो लोग खाते रहते हैं वे कितना मर्यादासे गिरे हुये हैं। रात्रि-भोजन करना कितना सदोष काम है ? किसीको रातको भोजन करते हुए भी देखने में बुरा सा लगता है कि क्या अनुचित काम हो रहा है ? क्या

यह शरीर अहर्निश खाने से ही स्वस्थ रहता है ? कुछ तो पेटको भी आराम देना चाहिये। अहिंसा भी पले, पेटको आराम भी मिले, समय बचे, धर्मबुद्धि बने, ऐसे कामोंको करने में आलस्य रखना यह तो एक अपनी बड़ी भूल है। देखो साधुजन कैसे-कैसे सूक्ष्म दोषों को टालकर भोजन करते हैं।

एषणासमितिमें अपरिणत और व्यवहरणदोषका परिहार—छठवाँ है अपरिणत दोष प्रासुक जल आहार साधुवोंको योग्य है। यदि कोई जल ऐसा हो कि जिसका स्पर्श, रूप, गंध, रस न पलटा हो और गृहस्थने उसे कुछ प्रासुक किया भी हो, पर वे साधु अपरिणत जलको देखेंगे तो ग्रहण न करेंगे क्योंकि प्रासुक जलमें रूप, रस, गंध ये बदल जाया करते हैं। उससे परीक्षा रखते हैं कि यह जल ग्रहण करने योग्य है या नहीं है। यदि अपरिणत जलको वे साधु ग्रहण करें तो इसमें अपरिणत दोष है।-७ वां है व्यवहरणनामक दोष-। यदि दातार अपने लटके हुए कपड़ेको यत्नाचार रहित खींचकर बर्तन चौकी आदिको घसीटकर या अन्य प्रकारकी असावधानी रखकर आहार दे तो उस आहार ग्रहण करने को व्यवहरण दोष कहते हैं।

एषणा समितिमें दायक दोषका परिहार--८ वां है दायक दोष। कैसे पुरुष आहार दे सकते हैं और कैसे नहीं दे सकते हैं ? इस सम्बंधमें आहार देने वाला तो उत्तमजाति, उत्तम कुलका हो, सर्व अंगसम्पन्न हो, बहुत पवित्र धारणा वाला हो, सो आहार दे, पर कौनसे देने वाले अयोग्य हैं जिन्हें अपने हाथसे आहार न देना चाहिये उन दायकोंकी बात कह रहे हैं। जो व्यक्ति शराब पीता हो, वह व्यक्ति साधुको आहार नहीं दे सकता, जो रोगसे पीड़ित हो, रोग तो सभीमें रहते हैं, पर ऐसे रोग हों, कमजोरी हो, श्वासका रोग हो, खड़ा न हुआ जा सकता हो, ऐसे व्यक्ति साधुको आहार नहीं दे सकते। जिसको पिशाच मूर्छित कर देता हो, जैसे बहुत सी महिलायें ऐसी नजर आती हैं जिनको लोग कहते हैं कि इसे भूत लग गया है, पता नहीं वह कौनसा रोग है, वे स्त्रियाँ मूर्छित हो जाती हैं, अथवा कोई एक मिरगी का रोग होता है जिसका कुछ पता नहीं रहता कि कब वह मिरगी रोग वाला पुरुष अथवा महिला मूर्छित हो जाय। इसे दौड़ाकी बीमारी भी कहते हैं, तो ऐसे रोग वाला पुरुष हो अथवा महिला हो वह साधुको आहार देने योग्य नहीं है, क्योंकि उसके पता नहीं कब बेहोशी आ जाय ? वह बेहोश हो जाय तो साधुजनोंके लिए अन्तराय का कारण है। कोई रजस्वला स्त्री हो अथवा बच्चा हुए ४० दिन न

व्यतीत हो गये हों उसे आहार अपने हाथसे साधुको न देना चाहिये जो वमन कर आया हो ऐसा पुरुष अथवा स्त्री भी आहार देने योग्य नहीं रहता। किसीने अपने शरीरमे तेल लगा रखा हो उसे भी बिना स्नान किए साधुको आहार न देना चाहिये। कोई किसी खम्भा या भींत आदि से छिप कर आहार देना चाहे, उसमें केवल हाथ दीखें, मानों वे हाथ किसी देवने निकाल दिये हों ऐसे ढंगसे भी यदि कोई आहार देना चाहे तो साधुजन आहार नहीं लेते। कोई साधुके पास किसी ऊँचे स्थानपर खड़े होकर या साधुसे काफी नीचे स्थानपर खड़े होकर आहार देना चाहे तो वैसा आहार भी साधुजन नहीं लेते। कोई नपुंसक हो, जातिसे बहिष्कृत हो, पतित हो या मूत्रक्षेपण करके आया हो, उसके हाथका भी आहार साधुजन नहीं लेते। वेश्या हो अथवा सन्यासलिङ्ग धारण करने वाला हो, ८ वर्षसे कमका बालक अथवा बालिका हो या कोई अत्यन्त वृद्ध पुरुष अथवा महिला हो, या कोई ५ महीने से अधिककी गर्भवती स्त्री हो तो ऐसे दातारों के हाथसे साधुजन आहार नहीं लेते। कोई अग्निको जलाये, कोई अग्निको बुझाये, अग्निसे राखको ढाके, मकान लीपे अथवा अंगपर एक ही कपड़ा हो, दूसरा कपड़ा भी अङ्गपर न हो, ऐसे दातारके हाथका साधुजन आहार नहीं ग्रहण करते।

एषणासमितिमें लिप्त व विमिश्रदोषका परिहार तथा साधुवोंकी अन्तर्भावना— ९वां है लिप्त नामक दोष। गेरु खड़िया, आटा, हरित, अप्रासुक-जल आदिसे भीगे हुए हाथ या बर्तन द्वारा भोजनके ग्रहण करनेको लिप्त-दोष कहते हैं। इस प्रकार भीगा हुआ हाथ या बर्तन हो तो उससे साधुजन भोजन नहीं ग्रहण करते। १०वां है विमिश्रदोष। जिस भोजनमें सचित्त, पृथ्वी, जल, बीज, हरित और जीवित त्रस मिले हुए हों उस भोजनको मिश्रदोषसे दूषित कहा है किसी भी ग्रहणकी जाने वाली चीजमें यदि कोई मरा हुआ त्रस जीव पड़ा है तो वह तो अभक्ष्य हो ही गया पर जिन्दा भी त्रस जीव पड़ा हो तो उसमें विमिश्रदोष हो गया। ऐसे सदोष आहार को भी साधुजन नहीं ग्रहण करते हैं। आहार देने वालेका भाव निमग्न हो और भोजन करते हुएमें वे साधुजन ऐसी भावना रखते हैं कि मेरा तो निराहार स्वभाव है। आहार करना मेरे आत्म का स्वभाव नहीं, यह तो झंझट है। जन्म मरणसे दूर होना है ना, और जन्म मरणकी परम्परा बढाने वाले इस शरीरका प्रेम दिखाने वाला यह भोजन इसको कहां उचित है। तो उसका निराहार स्वभाव है, परिस्थितिवश आहार ग्रहण करना पड़

रहा है। न जाने कब ऐसा समय आयेगा कि यह आहारका झंझट मिट जायगा। मैं तो एक ज्ञानानन्दपुञ्ज हूं जहां आहारकी प्रक्रिया ही नहीं है, ऐसे निराहार स्वभावकी भावना रखते हुये साधु आहार ग्रहण करते हैं। कितना अन्तर हो जाता है ? अपने स्वभावको चित्तमें रखते हुए आहार ग्रहण करनेमें कितने दोष टल जाते है। दोष होते हैं रागसे, उसके राग नहीं रहता। दोषोंसे रहित ही भोजनको साधुजन ग्रहण किया करते हैं।

काक और अमेध्यनामक अन्तराय— ४६ दोष टालकर उत्तमकुल वाले गृहस्थके गृहपर विधिपूर्वक भक्तिसहित पड़गाहे जानेपर जो सात रत अन्तरायोंको टालकर आहार ग्रहण करता है ऐसे योगीके एषणासमिति पलती है। अन्तराय ३२ प्रकारके होते है। कुछ अन्तराय तो चर्याके लिए सिद्धभक्ति करनेके बाद ही माने जाते है और कुछ अन्तराय घरपर भोजनशाला में पहुचनेपर उनको भोजन प्रवृत्ति करनेपर माने जाते है। उन अन्तरायोंमें प्रथम नाम दिया है काकनामक अन्तराय। आहार करनेके लिए साधु जा रहे हों तब या आहार कर रहे हों तब साधुके शरीरपर कोई कौआ आदिक जानवर मलोत्सर्ग कर दे तो काकनामक अन्तराय है। चलती हुई हालतमें तो प्राय इसकी सम्भावना है कोई उड़ता हुआ पक्षी बीट कर दे, पर छोटी छोटी चिड़िया तो भोजनशालामें भी पहुच जाती है वहा बीट कर दें, या साधुवोंका तो वनमें भोजन होता था जहां पक्षी रहते थे, तो उनके द्वारा मलोत्सर्ग करनेपर फिर अन्तराय हो जाता था साधु आहार न ग्रहण करते थे। दूसरा अमेध्य अन्तराय है— आहारके लिए साधु जा रहे हों अथवा आहारके लिए खडे हों मुनि, उनके पैर-घुटने, जंघे आदिक किसी भी अंगपर कोई विष्टा आदिक अशुचिपदार्थका स्पर्श हो जाय तो वह अमेध्यनामक अन्तराय है।

छर्दि, रोधन, रुधिरनामक अन्तराय—छर्दिनामक अन्तराय यदि किसी कारण मुनिको छोटा भी वमन हो जाय, जिसे लोग कहते कि कुल्लासा गिर गया तो उसके बाद भी मुनिजन भोजन नहीं करते। जो जीव जितना मन्दकषाय है वैराग्यप्रिय है, अनासक्त है उसको थोड़ासा भी विघ्न आने पर भोजन नहीं रुचता है, और जो लोग आसक्त हैं, मोही हैं, अज्ञानी हैं, जो भोजनमें आसक्त हैं उन्हें तो अन्तराय हो जाय, कुछ भी हो जाय तो उसे कुछ नहीं गिनते। मुनिजन तो विरक्त भी हैं, ज्ञानी भी हैं, खानेका उद्देश्य भी नहीं है, केवल जीवन रखनेके लिए कुछ आहार करना पड़ता है, ऐसे विरक्त सतोंके थोड़ा भी विघ्न आये तो वे आहार ग्रहण नहीं करते। रोधन अन्तराय—आज भोजन मत करना, ऐसा कोई रोक दे तो

यह मुनिजनोंके लिए रोधननामक अन्तराय है। रुधिरनामक अन्तराय—अपने या अन्य किसीके शरीरसे रुधिर पीप आदिक निकलता हुआ मुनिको दिख जाय तो यह भी उनके लिए रुधिरनामक अन्तराय है। इन समस्त अन्तरायोंमें ऐसी परीक्षा करते जाना कि देखो कितने अनासक्त हैं ये योगीश्वर कि रंच भी बाधा आये तो आहार फिर नहीं लेते। वैसे तो ध्यानादिकमें बैठे हुए कठिनसे कठिन उपसर्ग आये वहां वे बड़े कठोर (कड़े) बन जाते हैं। उन समस्त उपसर्गोंको वे समतासे सह लेते हैं। पर आहार का प्रसंग ऐसा है कि मुनियोंकी बात तो ऊँची है ही, मगर गृहस्थ भी थोड़ा बहुत विघ्न आ जाय, मन बिगड़ जाय, परोसने वाले की प्रीति न दिखे तो साधारण गृहस्थसे भी भोजन नहीं लेते बनता। और जो आसक्त हैं वे पिटते भी जाते और खाते भी जाते हैं।

अश्रुपात, जान्वध:परामर्श व जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय—अश्रुपात अन्तराय—शोकसे अपने या दूसरेके अश्रु बह जाने को या किसीके मरने आदि कारणसे जोरसे रोनेका शब्द सुनाई पड़े जिससे उनके भी नेत्रोंसे आसू निकल आयें यह सहसा बोध हो जाता है तो वह अश्रुपात नामक अन्तराय हो जाता है। जान्वध:परामर्श अन्तराय सिद्धभक्तिके अनन्तर कदाचित् घुटनोंके नीचेके हिस्सेका हाथसे स्पर्श हो जाय तो वह जान्वध परामर्श नामक अन्तराय है। कोई सोच सकता है कि यदि हाथसे घुटनेके नीचेके अंग छू गए तो अन्तरायकी कौनसी बात आ गई? लेकिन यह तो सोचो कि यदि घुटनोंके नीचे किसी मच्छरने काट लिया और उसे जरा सा खुजाने लगे तो इसमें कायरताका दोष आ जाता है तो वहां अन्तराय हो जाता है। जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय—घुटने तक या ऊँचे या इससे अधिक ऊँचे पर लगे हुए अर्गल, पाषाण आदिको लाँघकर जाना सो जानूपरिव्यतिक्रमनामक अन्तराय है। इसमें भी किसी को यह शंका हो सकती है कि इतना सा लाँघकर चले जाने मात्रसे कौन सा अन्तराय हो गया, तो यहाँ भी दीनता और कायरताकी बात आती है कि देखो इन्हें आहार ऐसा प्रिय हो गया कि इतना ऊँचे नीचे स्थानोंको लाँघकर भी जाते हैं। जो विरक्त पुरुष हैं, उनको इस तरहसे आहार करने जाना योग्य नहीं होता, अतः वह उनके लिए जानूपरिव्यतिक्रम नामक अन्तराय है। जैसे छोटे लोग कभी बिना बुलाये ही चौकेमें घुसकर भोजनको उठाकर खाते हैं और जो राजा लोग हैं, रईस जन हैं वे तो इस तरहसे नहीं खाते, वे तो बड़ी विधिपूर्वक भोजन करते हैं। लोग बड़े आदरसे हाथ जोड़कर लाकर उन्हें भोजन कराते हैं। वे यदि अपने ही घरमें घुसकर किसी

डिब्बा आदिकसे कुछ भोजनसामग्री निकालकर खाने लगें तो यद्यपि वे खाते हैं अपना ही, पर उसे भी वे चोरी समझते हैं। इस तरहसे भोजन करते समय उन राजा अथवा रईस लोगोंके मनमें ऐसी बात तो दो एक बार आ ही जाती होगी कि कोई देख तो नहीं रहा है। और यदि उनके ऐसा भाव आ गया तो यही चोरी है। तो सबकी स्थितियाँ अलग अलग होती हैं। योगीपुरुष आहारके लिए जा रहे हों और ऊँचे ऊँचे पत्थर लाँघकर जाना पड़े तो वह उनके लिए अन्तराय है।

नाभ्यधोनिर्गम, प्रत्याख्यातसेवन, जन्तुवध काकादिपिण्डहरण, पाणिपिण्ड पतन, पाणिजन्तुवध अन्तराय--नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय--यदि अपने शरीर को नाभिसे नीचे करके किसी द्वारसे निकलना पड़े तो वहां अन्तराय हो जाता है। इन अन्तरायोंमें योगियोंके वैराग्यका निरीक्षण करते रहें। वे कितने विरक्त पुरुष हैं कि सहजवृत्तिसे जायें और आहार मिले तो उन्हें स्वीकार है मगर कठिनतासे हड़बड़ाकर जाकर वे आहार नहीं ग्रहण करते। प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय– किसी चीजका त्याग किया हो और वह चीज खानेमें आ जाय तो बस उसके बाद वे आहारका त्याग कर देते हैं। जन्तुवधनामक अन्तराय--यदि अपने ही सम्मुख कोई चूहा, बिल्ली, कुत्ता आदिक जीवोंका घात होता दिख जाय तो वह जन्तुवध नामक अन्तराय है। काकादिपिण्डहरण अन्तराय–काक चील आदिक जानवरके द्वारा हाथ परसे ग्रासके ले जाने को या छू जानेको काकादि पिण्डहरण नामक अन्तराय कहते हैं। पाणिपिण्डपतन अन्तराय– कोई मुनि भोजन कर रहे हों और हाथकी अंगुली खुल जाने से भोजनका कोई ग्रास नीचे गिर जाय तो उसे पाणिपिण्डपतन नामक अन्तराय कहते हैं। पाणिजन्तुवध अन्तराय–भोजन करते हुएमें मुनिके हाथ आदिक पर कोई मक्खी आदिक जन्तु आ जाय और घी आदिक चिकनी चीजके लगे होने से वह मर जाय तो वह पाणिजन्तुवध नामक अन्तराय है।

मांसदर्शनादि, उपसर्ग, पादान्तरपञ्चेन्द्रियगमन, भाजनसंपात, उच्चार, प्रस्रवण, अभोज्य गृहप्रवेश, पतन, उपवेशन अन्तराय—मांसदर्शनादि अन्तर भोजन करते हुएमें मुनिको मद्यमांसादिक दिख जायें तो वह मद्यदर्शनादि अन्तराय है। उपसर्गनामक अन्तराय—भोजन करते हुएमें यदि देव मनुष्य या तिर्यञ्च किसी के द्वारा कोई उत्पात हो तो वह उपसर्गनामक अन्तराय है। पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय--भोजनके लिए मुनि चल रहे हैं, आहारके समय खड़े हुए हैं और उनके पैरोंके बीच कोई पञ्चेन्द्रिय जीव आ जाय तो वह पादान्तरपंचेन्द्रियागमनामक अन्तराय है यानि ऐसी

आकस्मिक घटना होनेपर विरक्त पुरुषोंको भोजनकी उत्सुकता नहीं रहती। भाजनसंपात अंतराय—साधुको आहार देने वाले के हाथसे कटोरा आदिक पात्र गिर जाय तो यह उनका भाजनसपातनामक अंतराय है। साधु भोजन को जा रहे हों या आहार कर रहे हों उस समय कोई विष्टामल आदिक निकल आवे तो यह उच्चारनामक अंतराय है। प्रश्रवण अंतराय— साधु के अगर मूत्रका स्रवण हो जाय तो यह भी उनका अंतराय है। अभोज्य-गृहप्रवेश अन्तराय— भिक्षाके लिए साधु जा रहे हैं और कोई अच्छासा घर जानकर घर में घुस जावें, और बादमें किसी तरह पता चल जावे कि यह तो चांडालका घर है, तो यह भी उन साधुजनोंका अन्तराय है। पतन-नामक अन्तराय—साधुके मूर्छा, भ्रम, श्रम, रोग आदिके कारण भूमिपर गिर जाने को पतननामक अन्तराय कहते हैं। और यह तो गिरने की बात है। कमजोरी आदिकके कारण यदि साधु भूमिपर बैठ जाय तो यह भी उसके लिए एक अन्तराय है। ऐसे अन्तरायको उपवेशन अन्तराय कहते हैं। मुनिजन खडे होकर भोजन किया करते हैं। खडे होकर भोजन करने में पेटभर भोजन न खाया जाता होगा, इसी कारण उन्होंने खड़े होकर भोजन करना पसंद किया होगा, या उनको आत्माके ज्ञानध्यानका इतना जोर शोरसे काम लगा हुआ है कि उन्हें बैठकर अच्छी तरह खाने की फुरसत ही नहीं है। आये झट खडे खडे कुछ आहार ले लिया और चल दिया। तो वे आहार करने जाते समय यदि किसी कारणसे भूमिपर बैठ जायें तो यह उनका अन्तराय है। ऐसा अन्तराय हो जानेपर फिर वे मुनि-जन आहार नहीं ग्रहण करते हैं।

संदश, भूमिस्पर्श, निष्ठीवन उदरकृमिनिर्गमन व अदत्तग्रहण अन्तराय— संदेश अन्तराय— भिक्षाके लिए जाते समय या आहार करते समय यदि कोई कुत्ता बिल्ली आदिक जानवर उन्हें काट ले तो फिर उनका अन्तराय हो जाता है। यदि ऐसी हालत पर भी वे अन्तराय न मानें तो फिर वे आहारमें बहुत अधिक आसक्त कहलायेंगे तो ऐसे अन्तरायका नाम संदश अन्तराय है। भूमिस्पर्श अन्तराय - सिद्धभक्ति करने के बाद मुनिजन आहारचर्याको गए और रास्तेमें या कहीं हाथसे भूमिका स्पर्श हो गया तो यह उन मुनिजनोंके लिए भूमिस्पर्शनामक अन्तराय है। निष्ठीवननामक अन्तराय— आहार करते हुएमें मुनिके कफ, थूक, नाक आदिक निकल आये तो वह निष्ठीवननामक अन्तराय है। गृहस्थ लोग तो नाक थूक आदि पोंछनेके लिए रुमाल रखते हैं, महिलाएँ भी अपनी धोती साड़ी आदिकसे पोंछकर रुमालसे पोंछकर नाक कफ आदि सभाल लेती हैं, पर

मुनिजनोंके पास क्या है नाक कफ आदि पोंछनेके लिए ? नाक, कफ, थूक आदिक निकल आनेपर फिर साधुजन आहार नहीं ग्रहण करते हैं। यह निष्ठीवन अन्तराय है। उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय मुखद्वारसे अथवा गुदा द्वारसे मुनिके पेटके कीडे निकल आयें तो यह भी उनके लिए उदरक्रिमिनिर्गमन नामक अन्तराय है। अदत्तग्रहण नामक अन्तराय--दातारके दिए बिना ही भोजन औषधि ग्रहण कर ली जाय या संकेत करके भोजनादि ग्रहण किया जाय तो उसे अदत्तग्रहण नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रहार, ग्रामदाह, पादग्रहण व हस्तग्रहण, अन्तराय—प्रहार नामक अन्तराय—अपने ही निकटमें किसी पर कोई प्रहार करता हुआ दिख जाय तो यह भी मुनिजनोंका अन्तराय है। ग्रामदाह अन्तराय--जहाँ पर मुनि निवास करता हो वहीं पासमें ही किसी ग्राममें भयंकर अग्नि लगी हो तो ऐसे समयमें भी मुनिजन अन्तराय मान लेते हैं, कारण कि उस समय लोगोंमें बड़ी खलबली मच जाती है और हाहाकार भी हो रहा है ऐसे समयमें वे आहार ग्रहण करें, यह कहा सम्भव है? पादग्रहण अन्तराय- जैसे लोग किसी वस्तुको पैरकी अगुलियोंसे दाबकर कोई चीज उठा लेते हैं ऐसे ही यदि मुनि भी किसी चीजको अपने पैरकी अंगुलियोंमें दाबकर उठाले तो यह भी उसके लिए पादग्रहण नामक अन्तराय है। हस्तग्रहण अन्तराय--भूमिपर रखी हुई किसी वस्तुको यदि मुनि हाथ से उठा लें तो यह भी उनके लिए अन्तराय है। याने मुनिजनोंकी ऐसी सहजवृत्ति हो जिसमें आसक्तिकी बात न आये वह तो उचित है और उसके विरुद्ध बातें अन्तरायमें शामिल हैं। ये सब अन्तराय हैं। कोई अन्तराय चर्यामें होते हैं, कोई अन्तराय आहार करते समय होते हैं। इन समस्त अन्तरायोंको टालकर योगीजन आहार ग्रहण किया करते हैं, इतना वे आहारमें अनासक्त हैं।

योगसाधनामें प्रतिष्ठापनासमितिका व्यवहार—जिन पुरुषोंने इन समागमोंकी असारता जान करके और अपने आपके लदे हुए इस शरीर की असारता जान करके वैराग्य पा लिया है ऐसे पुरुषोंका मन अब न तो मोहमें लगता है, न विषयोंके भोगनेमें लगता है। संसार शरीरभोगोंसे विरक्त होकर आत्मध्यानके लिए सब कुछ संन्यास करके वनमें जाते हैं और वहाँ आत्मध्यान किया करते हैं। ऐसे योगी शरीरसे इतने विरक्त हैं कि वे ककरीली जमीन पर सो रहे हैं तो एक ही करवटसे सोते हैं। कदाचित् थकानके कारण करवट बदलनी पड़े तो उस पीठके नीचेकी जमीनको और पीठको भी पिछीसे झाड़कर करवट लेते हैं। कभी उन्हें

थकना पड़े तो जमीनको शोध करके वहाँ वे मल मूत्रका क्षेपण करते हैं, इतने दयालु हैं और वैराग्यवान् भी विशेष हैं।

योगियोंका सुगम रम्य पुरुषार्थ—योगीजन साक्षात अहिंसाकी मूर्ति हैं, ऐसे योगीजन क्या किया करते हैं अपने आपके अन्दर ? तो अत्यन्त पवित्र ज्ञानज्योतिस्वरूप अनुभव किया करते हैं— मैं केवल ज्ञानमात्र हू, मैं अन्यरूप नहीं हू, यही निरन्तर अनुभव करते रहते हैं। ऐसा न सोचे कोई कि वे योगीजन अकेले जंगलमें आखिर क्या किया करते हैं ? वे तो ज्ञान-स्वरूप अपने आपको अपनी नजरमें लिए रहते हैं और यह इतना लम्बा काम है, इतना महान् काम है, इतना अधिक विस्तारको देने वाला ज्ञान है कि ज्ञानानुभवमें उनका सारा जीवन व्यतीत होता है। इससे बढ़कर और कोई हितका काम भी नहीं है। ये योगी पुरुष तीन गुप्तियोंसे सहित होते हैं—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

योगियोंकी मनोगुप्ति—यह मन विषयकषायोंमें विकल्पोंमें विचर विचरकर ऊधम मचाया करता है, अपनी चाहके बड़े पुल बनाया करता है। इसीसे तो शेखचिल्ली बन जाता है। कुछ न कुछ कल्पनायें सभी बना रहे हैं। उन कल्पनाओंसे मिलता-जुलता कुछ भी नहीं। एक पुरुष खाटपर लेटा हुआ था। पत्नी बैठी थी। दोनों गप्पे मार रहे थे। पत्नीने कहा क्यों जी अपने अगर एक लड़का हो गया तो उसे कहाँ सुलावोगे ? तो वह पुरुष उस खाटमें थोड़ासा सरककर कहता है कि वह बच्चा यहां सो लेगा। और अगर दूसरा हो गया तो ? जरासा और खाटपर सरक जाता है और कहता है कि यहाँ सो लेगा और अगर तीसरा हो गया तो वह कहा सोयेगा ? तो इस बार ज्यों ही वह खाट पर से जरासा सरका कि नीचे गिर गया और एक टॉग टूट गयी। तो अब वह कहता है, हमें नहीं चाहिये ऐसे लड़के। जब लड़के नहीं हैं केवल लडकों की कल्पना ही बना रहे थे तब तो यह टॉग टूटी और अगर सचमुच ही हो गये तो न जाने क्या हाल होगा ? तो यह मन अनेक प्रकारके कार्य के पुलावा बाँधा करता है, जिनसे इस आत्माका कुछ भी लाभ नहीं है। वे मुनिजन जो मनोगुप्ति के धारी होते हैं मनको इतनी केन्द्रित रखते हैं कि कुछ भी विचार नहीं करते, बिल्कुल शून्य जैसी स्थिति उनके उपयोग की बन जाती है। ये मन मे उठने वाले जितने प्रवर्तन हैं ये प्रभुताके दर्शनको रोकते हैं।

त्रिगुप्तिबलसे विशिष्ट ज्ञानका लाभ—जिन योगीजनोंके ये मन, वचन, काय तीनों गुप्तिया भली प्रकार सध जाती हैं उन पुरुषोंको अवधिज्ञान सुगम हो जाता है, मनःपर्ययज्ञान सुगम हो जाता है। एक बार जब

श्रेणिक महाराजने बदला चुकानेके लिए अपनी रानी चेलनासे कहा कि तुमको इस जगह आहार बनाकर मुनियोंको आहार कराना है। तो वह जगह ऐसी थी कि वहां हड्डियां गड़वाकर ऊपरसे कुछ मिट्टी डाल दी गयी थी। खैर चेलनाने, आहार तैयार किया पर जब पड़गाहनेको खड़ी हुई तो क्या कहा - हे त्रिगुप्तिधारक महाराज! तिष्ठ तिष्ठ। अब उन आने वाले सभी मुनियोंने यही सोचा कि यह तो त्रिगुप्तिधारक मुनियोंके लिए बोल रही है सो अपने आपके विषयमें सोचकर कि हम अभी त्रिगुप्तिधारी नहीं हुए हैं, सभी मुनि लौट गए। इस दृश्यको देखकर राजा श्रेणिक बड़ा प्रभावित हुआ कि देखो इन मुनिराजोंको इतना ज्ञान हो गया है कि पहिचान गये — यह आहार अशुद्ध जगहमें तैयार किया गया है। इन तीन गुप्तियोंका बहुत बड़ा प्रभाव होता है। आत्मामें भैया! जितने भी क्लेश हैं प्रायः कारक मनके हैं। कोई बड़ेसे बड़ा पुरुष हो, उसे किसी भी प्रकारकी असुविधा न हो, फिर भी वह मनमें कुछ न कुछ कल्पनायें बनाकर क्लेश मानता है। तो ऐसे मनको वशमें करके ये योगीजन अपने आत्माके ध्यानमें अपना समय लगाते हैं।

ज्ञानमय आत्मप्रभुकी ही वास्तविक शरणरूपता—संसारमें सार सिवाय एक अपने आत्मप्रभुका शरण लेनेके और कुछ हो तो बतलावो। किसका शरण गहें कि जीवन सुखी हो जाय? सबसे धोखा मिलेगा। कदाचित् ऐसा भी समागम मिल जाय कि जो बड़े अनुकूल हों, आप प्रसन्नतासे उनके बीच रह रहे हों, पर वे समागम क्या सदा रह सकेंगे? उनका वियोग तो होगा ही। वियोग होनेपर फिर बड़ा क्लेश मचाना पड़ेगा। संसारके इन सुख समागमोंमें रमकर इस जीवका गुजारा न चलेगा। पहिले तो यही कठिन है कि जिन जीवोंका संयोग हुआ है वे मेरे मनके अनुकूल चलें। और कदाचित् कोई अनुकूल भी चले, ऐसा भी समागम मिले, मगर वह समागम क्या सदा रहने वाला है? उसका तो बिछोह होगा? तब फिर सार तो न रहा यहां किसीमें मोह करनेमें। मोहमें रहकर कोई भी जीव शान्ति नहीं पा सकता। शान्तिका मार्ग तो इस जीवको मोहके छोड़नेमें ही प्राप्त होगा। अब घरमें रहते हैं। बहुत समागम है पर मन तो आपका आपके पास है, ज्ञान तो आपका आपके ही पास है। उनके बीच रहकर भी आप ऐसा विचार चिन्तन कर सकते हैं कि आपका धर्ममार्ग भी सत्य मक। बच्चेको खिलाते हुए भी यह ज्ञान अगर रखें कि यह जीव न्यारा है, मैं न्यारा हूं, इस जीवसे वास्तवमें नाता कुछ नहीं है। यह आ गया किसी भवसे, गृहस्थीमें है तो जो हमारा कर्तव्य है सो कर

पर यह है अत्यन्त भिन्न पदार्थ। इसी प्रकार गृहस्थीके बीच जितने भी नाते हैं उनमें ऐसी ही भिन्नताकी दृष्टि रखे तो उसका गृहस्थीके बीच भी मोक्षमार्ग सध रहा है। इसी प्रकारकी बुद्धि धन दौलत मकान महल आदि के प्रति रख, ये कुछ भी मेरे नहीं हैं, मै तो इनसे अत्यन्त भिन्न हू, इनसे मेरा कुछ भी हित नहीं है, ये कोई भी समागम मेरी मदद करने वाले नहीं हैं। मेरी मदद करने वाला तो मेरा यह शरीर भी नहीं है, खुदको ही खुदकी मदद करना होगा। तो योगीजन कल्याणोचित सब ज्ञान करके अपने एकान्तपनकी साधनामें रहकर सर्वपरिग्रहोंकी कल्पनायें तजकर आत्मसाधनामें अपना समय लगाया करते हैं। वे मनोगुप्तिके धारक योगीश्वर सबकी उपासनाके योग्य हैं।

योगियोंका वाग्गुप्तिपालन— योगी पुरुष वचनगुप्तिका भी पालन करते हैं। वे वचन बोलना ही नहीं चाहते। किससे बोलें? किससे बोलकर हमारा कुछ हल होगा? क्यों बोलने की क्रिया करें, क्यों ये श्रम करें, क्यों ये विकल्प उठायें। सो वे वचनोंका परित्याग करते हैं, और भीतरमे कुछ वचन उठ भी रहे हैं उन्हें नहीं रोका जा सकता है तो ऐसा अन्तर्जल्प करते हैं कि अपने आपके अन्दर प्रश्न करते हुए आत्माके ही बारेमे सारे प्रकाशको निरख रहे हैं, उस ज्ञानमयस्वरूपसे अनुभव रहे हैं, उस कालमें जो कुछ भी अन्तर्जल्प हो रहा वह हो रहा, किन्तु कोशिश उस अन्तर्जल्प को दूर करनेकी करते रहते हैं। भीतरमें इतने भी असली शब्द न उठे कि मैं ज्ञानप्रकाशमात्र हू, उससे भी परे होकर निस्तरंग केवल आत्मा आत्मा का ज्ञान करू, इस प्रकार उनकी धारणा रहती है तो जहाँ इस प्रकार वचनगुप्तिका पालन किया है वे योगीश्वर अन्यत्र क्या काम करें? वे अपने आपके आत्मामें इस ही ज्ञानज्योतिस्वरूपका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं और यही कारण है कि हम आप ऐसे योगीश्वरोंकी उपासनामें रहा करते हैं।

योगियोंका बोलनेकी उपेक्षाका भाव— अध्यात्मयोगमे वर्तने वाले संतजन ज्ञानानन्दस्वरूप निजअन्तस्तत्वकी रुचिके कारण अपने आपमे ही समाये रहना चाहते है। मन, वचन, कायकी क्रियाओंमें उनका अनुराग नहीं है। इस कारण अब किस परका वे विकल्प करें? किसी परमें भी रुचि नहीं, परके विकल्पमें भी रुचि नहीं। मैं परसे रहित, विकल्पसे रहित केवल एक ज्ञानज्योतिस्वरूप हू ऐसा उन्हें दर्शन हुआ है, इस दर्शनके प्रतापसे विशुद्ध आनन्दका अनुभव हुआ है। अब उनका अन्यत्र कैसे प्रेम जाय? तो अध्यात्मस्वरूपमें रुचि होनेके कारण उनकी वचनगुप्ति रहती

प्रकार सध रही है। किससे बोलना ? जो दृश्यमान कुछ है यह तो अजीव है, जीव तो दृश्य नहीं होता। जीवमें रूप, रस, गंध, स्पर्श है नहीं। मैं अजीवसे बोलकर क्या करूँ और जो जीव है, ज्ञानघन आनन्दस्वरूप, अमूर्त, भावमात्र जो जीवतत्त्व है उससे बोलता कौन है ? बोले कौन ? किससे बोलना ? इन मायामय जीवोंसे क्या चाहना, आदिक अनेक चिन्तन करके ज्ञानी पुरुषोंको वचनोंकी प्रवृत्तिकी भी धारणा न रही, सो वे वचनगुप्तिमें अपना अधिक समय लगाते हैं।

योगियोंके वचनगुप्तिके योगसे उपादेय शिक्षा—हम आपको भी उनकी इस वचनगुप्तिके योगसे यह शिक्षा लेनी है कि बहुत कम बोलें, और बहुत कम बोलने पर जब आवश्यकता होगी बोलना पड़ेगा तो वह बोल संगत निकलेगा। यदि आदतमें ही खूब बोलना रख लिया तो खूब बोलनेकी आदतमें कई बोल ऐसे निकलेंगे जो अनावश्यक होंगे। कुछ सभ्यतासे विरुद्ध वचन मुखसे निकल जानेपर वक्रिया अपनेमें कुछ दीनता और अयोग्यताका अनुभव करने लगता है, और जब स्वयं ही अपने आपमें अयोग्यता व दीनताका अनुभव होगा तो फिर अब वह मुक्तिमार्गका काम कैसे करेगा ? भैया ! कमसे कम बोलना यह जीवनका बहुत अच्छा गुण है। यह आत्महितकी भी बात है और लौकिक जीवन भी बहुत सुन्दर निभानेका बहुत बढ़िया साधन है। बोलना कम, सुनना ज्यादा। इसीलिए बोलनेकी चीज (जीभ) एक मिली है और सुननेके लिए दो कान मिले हैं। अतः बोलनेकी अपेक्षा सुननेका काम दूना करें, याने सुननेसे आधा बोला करें उस बोलनेमें भी नियन्त्रण होना चाहिये कि अपना विनयगुण न जाता रहे। विनयगुणसे मतलब केवल हाथ जोड़ना, शिर नवाना नहीं किन्तु गुरुजनोंके गुणोंका आदर होना, उनका उपकार न भूलना, कृतघ्न न होना, यह सब विनय है। जिन गुरुजनोंके उपदेशका श्रवणकर हम ज्ञानी बने हैं और वास्तविक दर्शन जिनके प्रसादसे प्राप्त हुआ है उनके प्रति हम कृतज्ञ बनें, उनके दोषोंको न देखें बल्कि उनके गुणोंपर दृष्टि दें। इससे तो हमें लाभ प्राप्त होगा और यह जो दुनियाकी वाहवाही चाहनेकी बात है वह तो एक असार बात है, अपने आपको पतनकी ओर ले जाने वाली बात है।

विशुद्ध विनम्र भावनासे कल्याणलाभ—मैं तो इतना पढ़ लिखकर भी ज्ञानी नहीं बना हूं, मैंने तो अभी कुछ नहीं समझा, मुझे तो समझना है, चाहे छोटे छोटे बालकोंसे भी कोई अच्छी बात सुननेको मिले, पता नहीं वह पवित्र आत्मा किस समय क्या बढ़िया बात कह दे, वह भी कोई पवित्र

आत्मा है, यह भी पहिले किसी बडे पदपर रहा होगा, यों पवित्र भावना रखकर किसीकी उपेक्षा न रखकर, हमें जो ज्ञान मिले उसे ले लें और गुणपूरक वचन बोलें। जिसमें किसीके गुणकी तारीफ हो ऐसी तो कथा करना। पर किसीके दोषका सम्पादन हो ऐसी वाणी न बोलना। यह एक बड़ा भारी गुण है। पूजा करते हुएमें आप सब भी पढ़ा करते हैं कि— 'सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।' मैं गुणियोंके गुणोंकी कथा तो करूँ और दोषोंको कहनेमें मैं पूर्ण मौन रहूं, तभी हममें वचनगुप्तिकी पात्रता आ सकती है। तो कम बोलना, हितमित बोलना, नियन्त्रित बोलना, यह हम आपके लिए कल्याणकारी चीज है। अपनी ऐसी भावना बने और यत्न भी हो कि मैं न बोलूँ तो ऐसी स्थितिमें अपने आपमें अपने उपयोगको जमाकर मनमाना सुरस अमृत पीता रहूंगा। यह तो लाभकी बात होगी, पर वचनोंका यह श्रम और यह हैरानी यह लाभकी बात नहीं है। ऐसी प्रतीति होनेके कारण ये अध्यात्मयोगी संत वचनगुप्तिका पालन करते हैं।

योगियोंका कायगुप्तिपालन—तीसरीगुप्ति है कायगुप्ति। शरीरको वश में करना, इतना वशमें करना कि यह हिलेडुले तक भी नहीं। बहुत निरखना, शिर हिलाना, आँखें मटकाना, गर्दन हिलाना, बड़ी कला दिखाना ये बातें योगी संतजनोंमें नहीं हुआ करती हैं। वे शान्ति और काययोगकी गुप्तिका ही यत्न रखने वाले संतजन जब कभी चलते हैं तब समितिपूर्वक चलते हैं और चाहते हैं कि हमारा अधिक समय अपने आपके चिन्तनमें जाय। यहाँ उनके कायगुप्ति स्वतः होती है। जब रानी चेलनाने पडगाहते समय यह कहा था कि हे त्रिगुप्तिधारक अत्र तिष्ठ तिष्ठ, तो ऐसा सुनकर कोई भी मुनि आहार करने न आया। उनके न आनेका कारण यही था कि उनमेंसे कोई भी मुनि त्रिगुप्तिधारक न था। सभी मुनियोंने यही सुना— हे त्रिगुप्तिधारक महाराज, अत्र तिष्ठ तिष्ठ, तो ऐसा सुनकर उन सभी मुनियोंने अपने आपके विषयमें सोचा था कि मेरे अभी अमुक गुप्ति नहीं है, तो किसी मुनिके अभी मनोगुप्ति न हुई थी किसीके वचनगुप्ति न हुई थी और किसीके कायगुप्ति न हुई थी सो सभी मुनि यही सोचकर लौट गए कि इसने तो त्रिगुप्तिधारी मुनिको पड़गाहा है। तो वे मुनि तो त्रिगुप्तिधारी न होनेके कारण न आये और कोई मुनि जो त्रिगुप्तिधारी थे वे इसलिए न आये कि उन्होंने पड़गाहते समय ही यह जान लिया था कि जिस जगह आहार बनाया गया है वह जगह अशुद्ध है, उसमें बहुतसी हड्डियाँ गड़ी हुई हैं। तो जब कोई भी मुनि आहार करने न आया तो बादमें

राजा श्रेणिकने उनमें से कई मुनियोंसे आहार न लेनेका कारण पूछा। तो एक मुनिने यों कहा कि उसने तो त्रिगुप्तिधारक मुनिको पड़गाहा था। मेरे तीन गुप्तियोंमें एक कायगुप्ति न थी जिससे मैंने आहार नहीं लिया। तो राजा श्रेणिकने पूछा— महाराज कैसे कायगुप्ति नहीं पली? तो उस मुनिने बताया कि देखो— एक बार मैं मृतकासनमें एक श्मशानमें पड़ा हुआ था, कुछ अंधेरासा था, उस समय किसी ऋद्धिकी सिद्धि करने वाला पुरुष आया और मेरी खोपड़ीको ईंट समझकर मेरी ही खोपड़ीके बगलमें एक ईंट और रखकर चूल्हासा बनाकर आग जलाकर खिचड़ी पकाना शुरू किया था, उस समय जब अग्निकी भयंकर जलन मैं न सह सका तो जरा सा मेरा शरीर हिल गया था, तो इससे मैंने अनुभव किया था कि अभी मुझे कायगुप्ति नहीं प्राप्त हुई है। तो ये योगीश्वर इस तरहके कायगुप्ति के वश करने वाले हुआ करते हैं तो ऐसे कायगुप्तिके धारक मुनिराज कर्मोंकी विशुद्धिके लिए वनमें तपश्चरण किया करते हैं।

योगियोंकी शिवसुखनिधिसे समृद्धता— भैया! देखो जिनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं, कोई दूसरा साथी नहीं, एक शरीरमात्र ही जिनके साथ है ऐसे योगीपुरुषोंके पास कौनसी निधि है जिसके कारण वे जंगलमें रहकर भी गौरवशील बने हुए हैं, बहुत आनन्द पा रहे हैं? जैसे कोई धनी मुसाफिर, जिसके पास ट्रैवुलर चेक रखे हुए हैं, वह जहां चाहे खाली हाथ रहकर भी महीनोंकी मुसाफिरी कर लेता है पर उसे कहीं असुविधा नहीं रह सकती तो इसी तरह वनमें विहार करने वाले योगीश्वर कौनसी निधि अपने पास रखे हुए हैं जिसके बल पर वे जरा भी दु:खी नहीं होते और आनन्दमग्न रहा करते हैं? उनकी वह निधि है शिवसुख, कल्याणमय आनन्द, स्वाधीन आत्मीय आनन्द। ज्ञानस्वरूपको ज्ञानमें लेने पर, ज्ञानानुभव होने पर जो एक विशुद्ध आत्मीय आनन्द जगता है उस शिवसुखको वे अपनी दृष्टिमें, अपने उपयोगमें रख रहे हैं और यों भी समझिये कि जैसे कोई गृहस्थीमें रहने वाली अत्यन्त क्षा॰॰वाय बुढ़िया उसके अपने ही पास बहुतसा धन हस्तगत होने के कारण वह बड़ी खुशहाल रहा करती है इसी प्रकार समझलो ये योगीश्वर जंगलमें अकेले रहकर भी शिवसुखकी निधि पासमें होने के कारण बड़े प्रसन्न रहा करते हैं। उनको तो कैसी भी भीषण परिस्थितियाँ आयें पर उनके उस शिवसुख निधिका एक ऐसा प्रताप है कि वे मुनि वनमें भी रहकर, अकेले भी रहकर किसी भी स्थिति में रहकर बड़े प्रसन्न रहा करते हैं, किसी भी स्थितिमें वे घबड़ाते नहीं हैं। तो उन्होंने मनमें उस शिवसुखको धारण किया है। वह समृद्धि वह

निधि उन्होंने अपने आपमें रखी है जिसको लिए हुए वे वनमें भी विहार कर रहे हैं, रह रहे हैं और तपश्चरण कर रहे हैं, कठिन स्थितियाँ भी आयें तो भी उनकी निर्मलता कहीं जाती नहीं है, ऐसे वे योगीश्वर कर्मोंकी विशुद्धिके लिए घोर तपश्चरण करते हैं ऐसे योगीजन वीतमोह होते हैं। उनमें मोह नहीं रहता, वे मोहसे रहित होते हैं। मोह मायने परमें लगाव। परके प्रति अज्ञान भाव नहीं रहा, अपना स्वतंत्रस्वरूप अपने चतुष्टयसे जैसा है उस विशुद्ध आत्मस्वरूपको वे उपयोगमें लिए हुए हैं। ऐसे वीतमोह साधु कर्मोंको दूर करने के लिए, भावकर्मकी विशुद्धिके लिए, आत्मशोधनके लिए वे आन्तरिक अध्यात्मरमणरूप परम तपश्चरण किया करते हैं।

योगियोंकी ध्यानाध्ययनवशागतता—महाव्रतोंसे युक्त, पंचसमितियोंके पालनहार, ३ गुप्तियोंमें तत्पर, अपने मनमें मोक्षसुखको धारण करने वाले निर्मोह योगी स्वतत्र हैं, निरपेक्ष हैं, मगर ध्यान और अध्ययनके वशमें पड़ गए। ध्यान अध्ययन यद्यपि स्वतंत्रताके ही सहकारी कारण हैं, तथापि भक्तिवश एक तो इस तरह देखें कि वे ध्यान और अध्ययनके वशमें पड़ गए हैं और दूसरे इस तरह भी देख सकते हैं कि ध्यान और अध्ययनमें तत्पर रहने वाले ये योगी इस ध्यान और अध्ययनको भी अन्तरङ्गसे नहीं चाहते हैं। इस ध्यानके अध्ययनके विकल्पोंसे परे निज अतस्तत्त्वकी रुचि रखा करते हैं। जब इस दृष्टिसे देखें तो यह भी कहना युक्त है कि वे योगी ध्यान और अध्ययनके वशमें पड़ गए हैं। जैसे कोई स्वच्छन्द रहने वाले बच्चेके सम्बन्धमें माता पिता सोचते हैं कि क्या उपाय करें, यह तो बड़ा स्वच्छन्द हो गया है। कितना ही समझायें, पर मानता नहीं है, तो क्या उपाय करते हैं? उसकी शादी कर दिया। शादी कर देने पर वह स्त्रीके वशमें आ गया तो क्या कहते वे मां बाप? लो यह तो अब स्त्रीके वशमें हो गया। यह तो लौकिक बात कही जा रही है। कोई बड़ा स्वच्छन्द आचरण करने वाला पुरुष राज्य सरकारकी आधीनतामें आ जाय तो लोग कहते ना कि अब तो आ गया चक्करमें, वशमें, पड़ गया। तो ये तो सब एक लौकिक वशगतता हैं, मग इन योगियोंने घर छोड़ा, समागम छोड़ा, सबसे हटे, किसीके वशमें ये न आ पाये, उन्हें न घर बाँध सका था, न स्त्री पुत्रादिक बांध सके, ऐसे स्वतंत्र हो गए, पर लो अब वे जंगलमें भी पहुंचे तो उन्हें घरके लोग या कोई इष्टजन देखने गए, सो क्या देखते हैं कि लो, ये ध्यान और अध्ययनके वशमें तो आ गए। इस भक्तिभरे कथनकी एक भक्तिभरी निगाहसे भी सुनो।

योगियोंका आवश्यक विकास--वस्तुगत दृष्टिसे तो योगीजन जैसा कि उन्होंने समझ रखा है वे इस ध्यान और अध्ययनके शुभ और नयके विकल्पोंमें भी रहना नहीं चाहते। वे तो परमविश्राम चाहते हैं। भले ही ध्यान और अध्ययन साधुवोंका कर्तव्य है, पर यह तो साधन है, साध्य नहीं। उसका उपयोग कर रहे हैं, पर वे इससे भी अपनी उस विशुद्ध दशा को पानेकी रुचि रख रहे हैं। ध्यानसे वे पाते क्या हैं? किस लिए वे ध्यान करते हैं? ध्यानका प्रयोजन है—अपने स्ववश होना। यही उनका आवश्यक काम है। आवश्यकके माने जरूरी नहीं है। यह अर्थ तो लोगों ने बना रखा है। अवश पुरुषके द्वारा किये जाने वाले कार्यका नाम आवश्यक है। शब्दोंमे अर्थ भरा है। जो इन्द्रिय, विषय कषायादिकके वश नहीं हैं उनको कहते हैं अवश और अवशके द्वारा किये जाने योग्य जो कार्य हैं उनका नाम है आवश्यक। ये दुनियाके लोग उसका बड़ा झूठा अर्थ लगाते हैं-खाना आवश्यक, सोना आवश्यक आदि, पर ये आवश्यक कार्य नहीं हैं। आवश्यक तो मोक्षमार्गके कार्य कहलाते हैं। क्योंकि वे सब काम अवश पुरुषोंके द्वारा किये जाते हैं, तो ये ध्यान और अध्ययन आदि कार्य हैं आवश्यक और दुनियाके ये सारे काम जो हैं वे आवश्यक नहीं कहलाते। जैसे लोग कहते हैं कि भाई धन कमाना आवश्यक है तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि आवश्यक कार्य तो वे ही कहलाते हैं जो अवश पुरुषों द्वारा किये जाते हैं। खूब समागम जोड़ना, खूब मोह करना, इनको भी दुनियाके लोग आवश्यक काम बताते हैं, पर ये आवश्यक काम नहीं हैं, आवश्यक काम तो योगीजन किया करते हैं।

ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वके अनुभवमें सर्वसमृद्धि लाभ--वे योगीजन ऐसा चिन्तन करते हैं कि मैं ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूं। अन्य बातें जो आत्मामें कही जाती हैं दर्शन, चारित्र, सुख शान्ति आदिक वे सब बातें इस ज्ञानमात्रके अनुभव पर, इस ज्ञानमात्रके अस्तित्व पर निर्भर हैं। अन्यथा मान डालो बहुतसे गुण आत्मामें हैं—आनन्द है, चारित्र है, श्रद्धान है, और जो चाहे कहते जाइये और उसमें से एक ज्ञानको खींच लीजिए, ज्ञानको न कहिये, ज्ञानको न मानिये तो वे सब ज्ञानमात्र आत्मा इतना कहने पर आ जाते हैं। अनुभवमें "ज्ञानमात्र मैं हूं" इस प्रकारकी वृत्ति बने तो स्वानुभूति हो जाती है और और रूपसे विचार करने पर स्वानुभूति नहीं हो पाती, पर ज्ञानमात्र हूं मैं-इस तरहका चिन्तन करने पर ज्ञानानुभूति होती है। मैं चारित्रमय हूं, लो, चारित्रको चारों तरफसे हेर डालिये। और कहते जाइये मैं चारित्रस्वरूप हूं। पर मिला क्या इसे?

इस ज्ञानको मिला क्या और जब यह ज्ञान अपने को इस तरहसे तके कि मैं ज्ञानमात्र हूं, जाननमात्र हूं तो जाननका तो कुछ स्वरूप आया ज्ञानमें। केवल प्रतिभास जानन और भी अपने आपका निर्णय बना लें, सामान्य बना लें और भी ज्यादा इस पर समझमें आयेगा। मैं प्रतिभासमात्र हूं, लो ऐसा सोचते-सोचते चारित्र भी आ धमका। उसमें जो स्थिरता हुई ज्ञानकी अनुभूति की, उससे चारित्र भी बन गया। मैं ज्ञानमात्र हूं, इस प्रकारका बारबार अनुभव चलाया। उस ज्ञानकी धाराके बीच जहां स्वरूप स्पर्श हुआ, ज्ञानानुभूति जगी, लो उसके साथ ही सम्यक्त्वका अभ्युदय हो गया। ये सबके सब गुण, शान्ति और आनन्द भी ये सभी एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वके अनुभव करनेपर प्रकट होते हैं, अन्यथा सोचते जावो, मैं आनन्दमय हूं, आनन्दरूप हूं, अब आनन्द देखो कहाँ धरा है ? और वह अपने ज्ञानमें किस प्रकार आ पाता है ?

अद्वैतवादी भी तो ब्रह्मको आनन्दस्वरूप मानते हैं, वह आनन्दमात्र है। ब्रह्म, आत्मा आनन्दमात्र है, इस तरहका निर्णय करनेपर आया क्या उपयोगमें। और जब अपने आपको ज्ञानमात्र हूं इस प्रकारका अनुभव किया गया, मैं ऐसा जाननमात्र, प्रतिभासमात्र सामान्य केवल ऐसा जानन उपयोगमें आये, मात्र जानन, और कुछ न आये, इष्ट अनिष्टका विकल्प, किसी परपदार्थका विकल्प, किसी अन्यका ख्याल, ये सब न आयें, मैं केवल ज्ञानमात्र हू इस तरहके अनुभवसे चलें तो ऐसा अनुभव होनेपर लो आनन्द भी यहाँ आ धमका, आनन्दमय भी अपने आपका अनुभव कर लिया तो ये सबके सब गुण एक ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वके अनुभवपर आते हैं। ध्यानमें उनकी मुख्यपद्धति यही रहती है कि वे अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करते हैं।

ज्ञानानुभूतिके लाभके अर्थ ध्यानाध्ययनका प्रयास— लो सारा तो उन्होंने अध्ययन किया— दर्शनशास्त्र, करणानुयोग आदिके बहुत ऊँचे-ऊँचे अध्ययन चले, बड़े विशिष्ट वे विद्वान हुये— ज्योतिष, व्याकरण वैद्यशास्त्र आदि सब प्रकारकी विद्यावोंमें निपुणता पायी। इतनी विशेष विद्यायें प्राप्त कर लेने के बाद अब वे साधुजन यहाँ जंगलमें क्या कर रहे हैं ? एक ज्ञानमात्रके अनुभवकी धुन लगाये हुए हैं। एक तो क्या उन सब विद्यावों का सचय, इतने ज्ञानोंका पढना, ये सब उनके व्यर्थ ही गए। अब तो उन सबका भी ख्याल छोड़कर ये केवल ज्ञानमात्र अनुभव करनेमें लग गए। इससे अच्छा तो यह था कि वे अपना सब ज्ञान हमको दे देते क्योंकि हम लोग तो वह सब ज्ञान चाहते हैं, और वे साधुजन अपनेको कोरा

अनुभव करना चाहते हैं। कोराका अर्थ है केवल। भाई! उन समस्त विद्यावोंका प्रताप है कि जिससे वे अपने को केवल अनुभव करनेमें समर्थ हो सके। इस जगतका क्या स्वरूप है, इस आत्माका क्या स्वरूप है, इसके साथ क्या उपाधि लगी है, उन कर्मोंकी क्या गति है, कैसा बन्ध है? कैसा उदय है, क्या सत्त्व है, क्या विपाक है, क्या क्या पदार्थोंका स्वरूप है? दर्शनशास्त्रमें भी जिस-जिस ढगसे जो वर्णन हैं उनसे भी सब निर्णय किया है, ऐसे बहुमुखी ज्ञानके द्वारा निर्णय करने वाले योगीजनोंको अपने आपको ज्ञानमात्र चिन्तन करने में बड़ी सफलता मिलती है। वे योगीजन अब किसीके चक्करमें नहीं पड़ते। सबको छोड़ छाड़कर जंगल आ गए। अब वे ध्यान और अध्ययनके वश हैं।

परम करुणामूर्ति योगियों द्वारा कर्मोंका विशुद्धीकरण—ज्ञानसम्पादन शास्त्रअध्ययन, निज तत्त्वका अध्ययन—बस ये दो ही उनके खास काम हैं ध्यान और अध्ययन। इनके वश हुये ये योगीश्वर वनमें कर क्या रहे हैं? कर्मोंकी विशुद्धिके लिए तपश्चरण करते हैं? कर्मोंकी विशुद्धिका अर्थ कर्मोंको दूर करना। उन कार्माणवर्गणाओं को शुद्ध करने के लिये तपश्चरण कर रहे हैं—ऐसा कहो तो भी युक्त है। क्योंकि खुद विकारी हुये और ये कर्म भी बिगड़ गए थे। ये कार्माणवर्गणायें अपनी अकर्मत्व जैसी शुद्ध स्थितिसे चिगकर कर्मरूप हो गयी थीं। कैसे उपास्य हैं ये योगी। अपना बिगाड़ भी दूर कर रहे हैं और कर्मोंका बिगाड़ भी दूर कर रहे हैं। कोई लोग कहते हैं कि ये योगीजन निर्दय हैं, ये कर्मोंको जला डालते हैं, कर्मोंका नाश कर डालते हैं। लो यहा तो बड़ी करुणा समझी जा रही है कि अपने स्वरूपके बिगाड़को भी दूर कर रहे हैं और कर्मोंके स्वरूपके बिगाड़को भी दूर कर रहे हैं। वे कर्मरूपी वर्गणायें अकर्मरूप हो रही हैं ना। यों कर्मोंकी विशुद्धिके लिए वे परमार्थ तपश्चरण किया करते हैं।

> दिनकरकिरणनिकरसंतप्तशिलानिचयेषु निःस्पृहा',
> मलपटलावलिप्ततनव शिथिलीकृतकर्मबन्धना'।
> व्यपगतमदनदर्परतिदोष कषायविरक्तमत्सरा',
> गिरिशिखरेषु चण्डकिरणाभिमुखस्थितयो दिगम्बरा.॥३॥

योगियोंके ग्रैष्मपरीषहसहनका कथन—केवल अपने आत्मस्वरूपकी साधनाकी ही जिनको धुन बन गयी है ऐसे पुरुष निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर नाना शारीरिक क्लेश सहकर भी अपने आत्मरसके अनुभवमें तृप्त रहा करते हैं। उन योगियोंके ग्रीष्मपरीषह का इस छन्दमें वर्णन है। वे योगी

विराजे हैं किसी प्रासुक एकान्त पर्वतके स्थान पर, किसी शिलापर विराजे हैं, जो शिला सूर्यकी किरणोंके समूहसे संतप्त हो गयी है। बैठे हैं योगी निस्पृह होकर, कहीं कुछ चाह नहीं है जिनके, अपने आपमें विश्राम पाने के लिए विराजे हैं। घर छोड़कर बाहर रहने में तो गृहस्थ भी कहते हैं कि सफर तो सफर ही है, उसमें आराम कहां रक्खा है और जिन्होंने अपने जीवनभरके लिए घर छोड़ दिया है, वे जंगलों, पर्वतोंमें सफर किया करते हैं तो उनकी बात तो विचारे कौन? लोग तो अपनी दृष्टिसे नाप करके देखेंगे तो यह कहेंगे कि हम तो दो चार दिनको घर छोड़कर जाते हैं तो तकलीफमें पड़ जाते हैं। ये योगी संन्यासी साधु तो सब कुछ छोड़कर वनमें रहते हैं तो इनको तो क्लेश बहुत हैं। ही देखो ना, घर नहीं, वृक्षकी छायासे भी जिन्हें प्रेम नहीं, ऐसे योगी बैठे हैं कहीं जंगलमें, पहाड़ पर किसी शिलाके ऊपर और ग्रीष्मकालकी बड़ी प्रचंड किरणें उस शिला को संतप्त कर रही हैं, जैसे बैसाख जेठकी गर्मीका अदाज बना लीजिए, जैसे घरके लोग झोंपड़ीमें रहकर भी प्राण गंवा देते हैं ऐसी तीव्र गर्मीमें शिलाके ऊपर बैठे हुए ये साधु निस्पृह आत्मानुभवके रससे तृप्त हो रहे हैं, यह है योगियोंकी योगसाधना। कहीं ऐसा नहीं है कि बहुत तेज गर्मी में तेज गर्मशिला पर बैठकर ध्यान करें तो योगसाधना बनेगी। हां, थोड़ा सहायक यह भी है और वह इतना तक सहायक है कि मौजके वातावरणमें ध्यानकी विशुद्धि नहीं बना करती है, जहां निष्पृहताका प्रयोग हो रहा हो वहां ध्यानमें उत्साह जगता है।

परीषहसहनमें योगियोंकी निःस्पृहताका बल—योगियोंके परीषहनकी बात यह है कि जिन्होंने झोंपड़ीका, मकान महलका त्याग कर दिया है तो उनको तो ऐसे ही साधन मिलेंगे? वे अब कहां जायें? घरसे तो मोह ही नहीं रहा, रुचि ही नहीं रही। वे ऐसे पर्वतों पर शिलापर विराजमान् हैं। पर हैं निस्पृह। कुछ चाह नहीं और भी स्थितियां विचार लो। १०–१५ दिनका उपवास किए हुए हैं और फिर २–४ दिन चर्याको भी गए हों फिर भी अन्तराय आ जाते हों, ऐसी कठिनाईके समयमें भी वे योगी पर्वतोंमें जंगलोंमें प्रसन्न रहा करते हैं। उनकी जो पुरुष भक्ति करते हैं वे भक्त पुरुष भी संसारसे तिर जाते हैं। धन्य है उनका योगानुराग। कैसा अध्यात्मयोग उनके बन रहा है कि वे उस स्थितिमें भी अप्रसन्न नहीं है, किन्तु आत्मा सदा उनके निकट है। इस निज आत्मतत्त्वकी प्रीति से, अनुभूतिसे इस ही में रमणसे वे उस स्थितिमें भी आनन्द पा रहे हैं। यह तो है एक बाह्य क्षेत्रका वर्णन और उनका शरीर किस तरहका है, जो

मलके पटलोंसे अवलिप्त है, ऐसा उनका शरीर बन रहा है। ऐसा मलपटल लगा है जिनके शरीरमें कि पीठ पर जरा सा हाथ फेर देने से बाती की बाती मल छूटने लगता है और ऐसे मललिप्त शरीर वाले, फिर ग्रीष्मकालमें कई दिनोंके उपवाससे और कई दिनोंका जिनके अन्तराय पड़ा वे ग्रीष्मकालमें शिलापर विराजे हों तो उनके परिषहोंका क्या ठिकाना ? किन्तु वे समताभावसे ऐसे विकट परीषहों को भी जीतकर निस्पृह रहकर आत्मसाधनामें लगे हैं।

योगियोंका स्वरूपदर्शनकी कलाका बल—बात तो यथार्थ यह है कि जब तक इस ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्वमें तीव्र रुचि नहीं जगती है तब तक ये कलायें नहीं प्राप्त हो सकतीं। जिन कलाओंको साधुजन उपयोगमें लेकर प्रसन्न रहा करते हैं वे कलायें ज्ञानीको कहांसे प्राप्त होंगी, कौनसा बल उनको मिला है ? शरीरसे निर्बल होकर भी, क्षुधा तृषासे युक्त होकर भी शरीर पर कितना ही मल चिपटा है क्योंकि जीवहिंसाके भयसे और शरीररागके दोषसे स्नानका परित्याग कर दिया है, तिस पर भी ऐसे योगी किस बूते पर जंगलमें प्रसन्न रहते हैं, और बुद्धिको स्वस्थ रखते हैं ? बड़े बड़े राजा महाराजा लोग जब कभी उस जंगलमें आ निकलते हैं और ऐसे साधुसन्त संन्यासी मुनिराज दृष्टिमें आते हैं तो वे चरणोंमें नतमस्तक हो जाते हैं, जिनके चरणोंमें बड़े बड़े बुद्धिमान् लोग भी नतमस्तक हो जायें, तो उनमें है तो कोई कला ऐसी, जिसके कारण वे पूज्य हैं। वह कला उन्होंने स्वरूपदर्शनकी प्राप्त की है। यह स्वरूपदर्शनकी कला जिनको प्राप्त हो जाती है, लोग तो प्रशंसा करते हैं यों कि उनके चरणोंमें बड़े-बड़े राजा लोग, नतमस्तक हो जाते हैं, पर वस्तुतः प्रशंसा है इस बातकी कि वे सारे विकल्पोंको दूर करके आत्मीय विशुद्ध आनन्द का अनुभवन कर रहे हैं। खुदकी महिमा खुदके बड़प्पनसे है, खुदके स्वरूपस्मरणसे है। खुद शान्ति और ज्ञानसे परिपूर्ण हो जायें, इससे खुद का महत्त्व है। ये योगीश्वर अपने ज्ञानभावके द्वारा अपने ही ज्ञानभावका अनुभव करते हुए परम तृप्त रहते हैं। कैसा उनका मन वश है, कैसी उनकी परिणतिवश है। अपने ही ज्ञानपरिणमनसे अपने ही ज्ञानस्वरूपकी ओर लानेमें कितने कुशल हैं ? जैसे कोई बाहरी कुशल पुरुष बाहरी साधनोंको जोड़जाड़कर कोई चीज बना दे, वैज्ञानिक लोग अनुकूल प्रतिकूल चीजों का मेलजोल करके कोई रसायन तैयार कर दे, कोई आविष्कार बना दे अथवा लौकिक साधनोंसे किसी भी कार्यको तुरन्त तैयार कर दे, इससे भी अधिक कुशलता इन योगी साधुवोंमें है कि जब चाहे और निरन्तर

यथाशीघ्र अपने ही उपयोग से अपने ही ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमें लेकर स्वाधीन करके, नियन्त्रित करके उनके सब कुछ सामने पड़ा हुआ है, हस्तगत है। जैसे हाथमें आयी हुई चीजका संग्रह विग्रह करके उसमें कोई बात बनाता है इसी तरह उपयोगमें आये हुए इस स्वरूपमें रमण करके, प्रवेश करके, उन गुणोंका अनुभवन करके एक परम सन्तोष, परम आनन्द प्राप्त करते हैं। यह है योगियोंकी एक प्रशंसनीय और पूज्य कला।

योगियोंका सहजज्ञान और वैराग्यकी कलाका बल— ये योगीश्वर सहज ज्ञानकी कलासे परम रमणीय हैं। इसके अतिरिक्त और योगियोंमें बात ही क्या है कि जिससे वे सबके पूज्य बने और उनकी ओर बड़े-बड़े बुद्धिमानों का भी आकर्षण हो? एक इस सहज बोधकी कलाका परित्याग कर दें, फिर योगियोंके पास रहा क्या? वे तो फिर शहरके अथवा ग्रामके रहने वाले गरीब लोगोंसे भी गए बीते हो गये। और यदि वे योगीश्वर अपनी उस सहज कलाका परित्याग कर दें और विकल्पजालोंमें ही अपनी उधेड़पन बना लें तो फिर उनमें गुरुता ही क्या रही? योगी पुरुषोंमें यही तो पूज्यता की एकमात्र बात है, कि जब चाहे झट निर्विकल्प होकर सबका उपयोग तोड़कर अपने आपके स्वमें अपने आपके उपयोगको एकरस बना देते हैं, जहाँ फिर किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं ठहरता। ज्ञानज्योतिमें अपनी ही बर्तती हुई ज्ञानधाराको मिला देते हैं और इस प्रकार अनुभवन करते हैं कि न उनके उपयोगमें उनका भिन्न स्वरूप रहा और न कुछ धर्मपालन के लिए श्रम रहा। परमविश्रामकी अवस्था इन योगी पुरुषोंके हुआ करती है। तो वे किसी शिलापर विराजे हैं। बड़ी तेज गर्मीसे जो संतप्त है ऐसी शिला पर स्थिर आसनसे विराजे हुये योगीश्वर अपने आपमें विशुद्ध ज्ञानसुधारस का पान कर रहे हैं, तृप्त हो रहे हैं। ऐसे योगीश्वर कठिन परीषहोंको सहन करके भी अन्तरङ्ग में शुद्ध आनन्दसे प्रमुदित रहा करते हैं। उन योगीश्वरोंको हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं।

शान्तिका उपाय रागका अभाव— जगतके सभी जीव शान्ति चाहते हैं। मनुष्य हों, पशु हों, देव हो, स्त्री हों, सबकी केवल एक ही चाह है— शान्ति मिले, अशान्ति दूर हो। और जितने प्रयत्न करते हैं वे सब इसीलिए करते हैं कि दुःख दूर हों। लेकिन उल्टा कोई प्रयत्न करे और शान्ति चाहे तो यह कैसे हो सकता है? पहिले तो यह जानो कि शान्ति कहते किसे हैं? शान्ति नाम है निराकुलताका। अब निराकुलता होती कैसे है? इसका उपाय जैनशासनने यह बताया है कि आत्माका स्वरूप सहज स्वयं आनन्दमय है, ज्ञानस्वरूप है। इस आत्माका अपने आपसे ही सारा

सम्बन्ध है, इसका किसी दूसरे जीवके साथ या वैभवके साथ रंच सम्बन्ध नहीं है तभी तो देखिये कि यह जीव एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीरमें जाता है और यों शरीर छोड़ छोड़ कर अगले शरीरमें जाता है, इसका उस भवमें जो कुछ समागम था वह कुछ साथ आया है क्या इस भवमें व इस भवका भी कोई समागम साथमें जायेगा क्या ? कुछ भी नहीं आता जाता। तो यह कितने दिनोंका ठाठ है, जरा विचार तो करो। इस भवको छोड़ अगले भवमें जाना होगा तो यहाँका कुछ भी तो साथ न जायेगा। यहाके ये समागम कुछ भी काम न देंगे। ये तो भव भवमें कर्मानुसार मिलते हैं और छूटते जाते हैं। इनके संग्रह विग्रहमें पड़कर कुछ भी सिद्धि न होगी। हमें ऐसा कोई उपाय करना है जिससे कि इस ससारके आवागमनका संकट ही सदाके लिए छूट जाय। समस्त सकटोंकी जड़ यह जन्म मरण है, इससे मुक्त होनेमें ही शान्ति है।

समागमोंकी अलाभकारिताके निर्णयकी प्रथम आवश्यकता—पहिले यह बताओ कि इस धन वैभवके समागमसे आत्माको लाभ क्या है ? भले ही इस मायामयी दुनियामें मोह बनाकर कुछ भी कल्पनाओंसे मौज मानें, लेकिन ये समागम वस्तुतः अशान्तिके ही कारण हैं। इससे यह निर्णय तो रखना ही जरूरी है कि इन समागमोंसे मेरा बड़प्पन क्या है ? इतनी बात यदि चित्तमें न हो तो वह धर्म पालन नहीं कर सकता। जो भी जीव यहा आया है नियमसे शरीर छोड़कर यहाँसे कूँच कर जायेगा, तो जब यहासे अगले भवमें जायेगा तो यहांके समागमका फिर क्या रहता है आगे ? रंचमात्र भी चीज यहासे यह जीव अगले भवमें नहीं ले जा पाता, सब कुछ यहीं का यहीं रह जाता है। इस जीवका यहा कुछ है ही नहीं तो साथ ले क्या जायेगा ? तो उस आत्माकी खबर लें जो आत्मा अनादिसे अनन्त काल तक अकेला रहने वाला है और इन समागमोंके प्रति ऐसी भावना रखें कि इनसे मेरे आत्माको कुछ भी लाभ नहीं है। इन मायामयी, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि लोगोंने अगर कुछ भला कह दिया तो इस मुझ आत्माका क्या सुधार हो गया ? उससे कुछ भी लाभ न मिलेगा। तो अपना सारा उत्तरदायित्व अपने आप पर है। इस कारण एक यही निर्णय रखें कि ये स्त्री पुत्रादिक परिजनोंके जो भी समागम हमें प्राप्त हुए हैं उनसे मेरे आत्माको लाभ कुछ नहीं है। एक यह निर्णय तो जरूर रखना होगा अन्यथा आत्माको शान्तिका मार्ग न मिल सकेगा।

आत्मस्वरूपके यथार्थ चिन्तनकी परम आवश्यकता—अब अपने आत्मा के स्वरूपका चिन्तन करने लगें कि मैं हू क्या ? मैं सबसे निराला एक

निकला। कोई भरी सभामें खड़ा होकर व्याख्यानमें ऐसा नहीं बोलता कि हमारे दिलमें तो यह धन वैभव बसा है, उसके कमानेकी ही मेरी धुनि बनी हुई है आदि। तो वस्तुत ऐसा समझिये, कि इस धन वैभव-आदिक परपदार्थोंको दिलमें बसानेसे अनर्थ ही है, जीवको लाभ नहीं है।

सद्गृहस्थजीवनके दो मौलिक विश्वास—कुछ लोग यह कहेंगे कि गृहस्थका जीवन ही ऐसा है, वहां धन बहुत कमाना ही चाहिये तब यहां की इज्जत बढ़ सकती है, नहीं तो पोजीशन बहुत बढ़िया नहीं हो सकती। तो इस सम्बन्धमें दो बातों पर ध्यान रखें। एक तो यह कि जब पुण्यका उदय होता है तो लक्ष्मी बिना चाहे भी आगे बरषती है। चक्रवर्ती को कौनसा परिश्रम करना पड़ा जो कि ६ खण्डकी विभूति प्राप्त हो गयी, ३२ हजार राजा उनके आधीन हो गए, सब वैभव उस क्षेत्रका चक्रीका हो जाता। तो पुण्यके उदयसे थोड़ेसे श्रमसे ही बहुत बड़ा लाभ प्राप्त हो जाता है और कोई पुरुष बहुत श्रम करके भी उसका लाभ नहीं ले सकते। तो ये सब धन वैभव पुण्यानुसार आते हैं, पहिली बात तो यह है। दूसरी बात यह है कि आप अपना ऐसा दिल बनायें कि जीवन तो सबका गुजर ही रहा है, सबका गुजारा चलता है। थोड़ासा धन हो तो भी गुजारा चलता है और अधिक धन हो तो भी गुजारा चलता है, लेकिन इस तरह से जीवन व्यतीत करनेसे कुछ लाभ न होगा मनुष्यजीवन पाकर अपने आत्माके स्वरूपको पहिचानें, अपने में अपने को रमायें, धर्मपालन करें, रत्नत्रयकी साधना करें तो इसमें लाभ है। इस कारण हम ऐसा साहस बनायें और निर्णय करें कि वैभव, सम्पदा, लक्ष्मी इसकी अटकी हो तो आये, न अटकी हो तो न आये। उस धनके कम होनेसे कहीं मेरा जीवन बेकार नहीं होता, किन्तु अपने स्वरूपका लाभ न लेने से, धर्म-पालन न करनेसे जीवन बेकार हुआ करता है। इससे जो भी स्थिति मिली हो उसमें ही सन्तुष्ट रहकर एक धर्मपालनके लिए, ज्ञानार्जनके लिए अपना ठोस कदम बढ़ाना चाहिये। ये योगीश्वर ऐसा ज्ञानप्रकाश पाये हुए हैं कि ये हर स्थितियोंमें प्रसन्न रहते हैं। इन्हें दिगम्बर कहते हैं। दिग् कहते हैं दिशाको और अम्बर कहते हैं वस्त्रको, अर्थात् जिनकी दिशायें ही वस्त्र हैं अर्थात् जिनके वस्त्र नहीं हैं, ऐसे परम निष्पृह योगीश्वर उस उस आत्मध्यानमें इतना रत रहते हैं कि गर्मीके विकट परीषह भी आ रहे हों मगर उनको दूर करनेका कुछ यत्न नहीं करते। वे तो अपने आत्मीय आनन्दरसका पान करके तृप्त रहा करते हैं।

सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमानपुण्यकायैः।
धृतिसंतोषच्छत्रकैस्तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥

सज्ज्ञानामृतपायी मुनीन्द्रोंका समतासे तीव्रतापसंहन— जब बहुत तेज गर्मी पड़ती है तो लोग उस गर्मीकी वेदनाको शान्त करनेके लिए ये तीन बातें किया करते हैं ना ? एक तो बहुत ठंडा जल पीना जिससे कि अमृत सा अनुभव करें, दूसरे— ठंडे पानीसे नहाना या अपने शरीरको सींचना जैसे कि बहुतसे लोग गर्मीके दिनोंमें अपने घरोंमें ठंडे पंखे लगा देते हैं। तो वहाँ क्या है ? वे जलबिन्दुकण ही तो सूक्ष्मरूप लेकर हवासे आते हैं और शरीरका स्पर्श करते हैं। तीसरे— शिरके ऊपर कोई अच्छी छाया रहना। चल रहे हों तो छाता छाया करना, घरमें विराजे हों तो घरोंकी छतकी छाया रहना—ये दो तीन उपाय लोग गर्मीकी वेदना शान्त करने के लिए किया करते हैं। तो ये मुनीन्द्र भी समस्त परिग्रहोंका त्याग करके आत्मसाधनाके लिए वनमें विराजे हैं। वे मुनीन्द्र भी ऐसे ही कोई अलौकिक विलक्षण तीन काम किया करते हैं। उन्होंने सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत का तो पान किया है। जैसे यहाँ लोग घंटे घंटेभर बाद ठंडा पानी पीते हैं वैसे ही मिनटों मुनीन्द्र मिनटों बाद सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत पीते हैं।

ज्ञानानुभूतिके महत्त्वके परिचयका प्रयोग— अभी आप बाहरके विकल्प छोड़कर अपने भीतर यह ध्यान करें कि मैं तो केवल प्रकाशमात्र हूं। जो ज्ञान है, जो जानना है, यह जो ज्ञानज्योति है, बस वही तो मेरा स्वरूप है, इतना ही तो मैं हू, जानता हू, इतना ही तो मैं कुछ करता हू। जानन के सिवाय और मैं किया क्या करता हू। हर स्थितिमें जहाँ कुछ लड़ रहे हैं वहा भी क्या कर रहे हैं ? केवल एक कल्पना कर रहे हैं, ऐसे ही हर जगह हम ज्ञान ही ज्ञान बनाया करते हैं। इस कारण जब मैं परपदार्थोंका कुछ करता ही नहीं, केवल विकल्प ही करता हू, ज्ञान ही ज्ञान किया करता हू तो बाह्यपदार्थविषयक ज्ञान न करके मैं अपने अन्तरमें यह निरखूँ कि मैं केवल ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञानज्योतिस्वरूप हू, इससे बाहर मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा जब आपका ध्यान जाय तो आप स्वय ऐसा अनुभव करेंगे कि यहा मेरे सारे सकट दूर हो गए। लोग अपने सकटोंको दूर करनेके लिए बहुतसे उपाय रचते हैं, बड़ा खर्च करते हैं, मगर सकटोंके दूर करनेका आन्तरिक उपाय ही है और वह बड़ा सुगम उपाय है जिसे गरीब अमीर सभी कर सकते हैं। ज्ञान चाहिए। जहा यह पहिचाना कि मैं तो केवल ज्ञानस्वरूपमात्र हू, इससे आगे मेरी दुनिया नहीं, मेरा घर नहीं। मैं तो एक इस आत्मामें ही रह रहा हूं। मेरे परिजन से सब आत्मा

के ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्ति आदिक गुण हैं, ये ही मेरे मित्र हैं। यह मैं खुद अच्छे मार्गसे चलूँ तो कल्याण होगा, इसलिए मेरा मैं ही गुरु हू, और यह मैं स्वरूपतः भगवान हूं। उसको निरखकर ही तो मैं कल्याण करता हू। तो मेरा देव यह मुझमें ही तो बसा हुआ है। साक्षात् कहीं अरहंत देव भी बैठे हों तो उनका दर्शन किस विधिसे हुआ करता है, सो तो बताओ? अपने आपमें कुछ चिन्तन करें, अथवा अरहत भगवानके स्वरूपका मनन करें तो इस चिन्तन मननसे खुद अपने आपमें ज्ञानप्रकाश के द्वारा आप अरहंतके दर्शन करते हैं तो वह ज्ञानप्रकाश वही तो अरहंत का रूप है। यह केवल विशुद्ध हो जाय, बस यही अरहंत अवस्था है। तो हम अपने आपमें ही विराजे हुए देवकी उपासना करते हैं, और ऐसा जो हम अपने आपको समझाते हैं यही मेरा शास्त्रका उपयोग है। तो मेरे परिजन, मेरा वैभव सब कुछ मेरे अपने आपके आत्मामें है, ऐसा निर्णय तो करें और किसी भी समय दो चार मिनट ही विकल्प छोड़कर अपने आपमें विश्रामसे बैठें तो ऐसा अनुभव जगेगा, ऐसा आनन्द जगेगा कि आपका सारा जीवन सफल होगा।

शान्तिके निर्णय, परिचय और अनुभवके लिये आत्मप्रयोग— भैया! ५०-६०-७० वर्ष तो विकल्पोंमें ही व्यतीत किये, विवाद, तृष्णा, झगड़ा, झंझट, इनमें ही बिताये, और आज उस आत्मा की ओर दृष्टि देकर निर्णय करें तो यह महसूस करेंगे कि मेरे आत्माको उन बाहरी झगड़ा, झंझटसे लाभ कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ। सो अब इस शेष रहे जीवनमें रोज अगर ५ मिनट भी इस बातके लिए समय दें कि मैं इस समय समस्त परवस्तुवोंको भूलकर, सबका विकल्प छोड़कर सहज विश्रामसे बैठूँ तो अपने आप ऐसा दिखेगा कि मेरा भला किसमें है, मेरी दुनिया क्या है, शान्ति कहाँ मिलती है? हम तो अपने आपका अब निर्णय करेंगे, बाहरी बातोंको तो बहुत देख लिया। परजीवोंसे, परिजनोंसे स्नेह करके, मोह ममत्व करके सब कुछ देख लिया, भोग लिया। आखिर हम रहे रीतेके ही रीते, अकेले के ही अकेले। अब तो समस्त परका विकल्प तोड़कर विश्राम से बैठकर अपने आपमें आ सकने का यत्न करेंगे। मैं क्या हू, और अपने आप निर्णय करें कि शान्ति मेरी कहा है और कैसे मिलती है? यह काम किया जा सका तो समझिये कि मेरा जीवन सफल है। यही मात्र एक काम न बन सका तो कितना ही कुछ कर डालें, कितने ही कुछ समागम हो जायें, कैसी भी स्थितयां हो जायें, जीवन बेकार है। बड़े सुयोगसे श्रेष्ठ भव पाया है और जनशासनका समागम पाया है, इसको हम कितने

हैं, इससे उनका पुण्यकाय सींचा जा रहा है।

धैर्य और संतोषके छत्रकी छायामें योगीन्द्रोंका समतासे तीव्रतापसहन—तीसरा कार्य वे क्या कर रहे हैं—अलौकिक छात्र लग रहा है उनके ऊपर जिससे संसारकी गर्मीका ताप शान्त हो रहा है। वह छत्र है धैर्य और सन्तोषका। धैर्य सन्तोष ये दो मनुष्यके बहुत बड़े गुण हैं। धैर्य नहीं है तो मनुष्यकी जिन्दगी आकुलतापूर्ण है। इन दो का शरण सबको लेना होगा। धैर्य तो इस बातका करना कि कैसी भी कठिन स्थितिया आयें, कठिन विपत्तिया आयें, उन विपत्तियोंमें भी मेरे आत्माका बल बना रहे, धैर्य बना रहे, यहा तो कुछ भी विपत्ति नहीं। इससे भी बड़े-बड़े सकट हुआ करते हैं। ये तो कुछ भी सकट नहीं। धन कम हो गया तो क्या सकट, इष्टका वियोग हो गया तो क्या संकट, परिवारका कोई गुजर गया तो क्या संकट, टाग टूट गयी तो क्या संकट? कुछसे भी कुछ हो जाय, अनुभव कर सकें कि यह तो कुछ भी सकट नहीं है। नरकोंमें तो बड़े सकट होते हैं। और सबसे बड़ा सकट तो जीवपर अज्ञानका है। चाहे वह कितना ही धनिक हो, राजा महाराजा ही क्यों न हो, यदि अज्ञान छाया है उसपर, तो वह तो सकटमें पड़ा है, निरन्तर आकुलित रहा करता है। यदि धैर्य और सतोष उत्पन्न हों तो उनसे इस मनुष्यजीवनमें शान्ति प्राप्त होती है। क्या करना बहुत अधिक वैभवका, जितना है वही बहुत है। जीवन चल रहा है और धर्मके लिए दृष्टि बढ़ रही है, ज्ञानमें उपयोग चल रहा है, अब क्या परवाह है, ऐसा जिसका सन्तोष है, ऐसा पुरुष ही ससारसे पार हो सकता है। तो इन मुनीन्द्रोंने धैर्य और सन्तोषका छत्र अपने ऊपर रखा है इस कारण जिसमें तीव्र भी संताप हो रहे हों ऐसी गर्मी भी आसानीसे समतासे सह ली जाती है। ऐसे योगियोंकी भक्तिका ससारसे पार होने के लिए अध्यात्मयोगके इच्छुक आन्तरिकभावसे कर रहे हैं।

> शिखिगलकज्जलालिमलिनैर्विबुधाधिप चापचित्रितै—
> र्भीमरवैर्विशिष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभिः।
> गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः।
> पुनरपि तरुतलेऽपि विषमासु निशासु विशङ्कमासते ॥५॥

अज्ञानके अंधेरेमें अन्दर बाहर सर्वत्र अंधेरा—जिनके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश हो गया है उनको बाहर भी प्रकाश है और जो भीतर अज्ञान अंधेरे में रहते हैं उनके बाहर भी अंधेरा है। जैसे अंधेरेमें स्पष्ट नहीं दीखता

यथार्थ नहीं दिखता, इसी प्रकार अज्ञानीको बाहरमें कोई भी चीज सही रूपसे नहीं दिखती है। किसी मनुष्यको देखकर परिजनको देखकर यह अज्ञानी मानता है कि यह जीव है और यह है मेरा। देखिये जो दिख रहा है आँखों न तो वह जीव है और न वह मेरा है। दोनों ही बातें गलत हैं। जो दिख रहा है वह तो रूपवान है, जो जो रूपी होते हैं। सो पुद्गल हैं, अजीव हैं। अजीवको कहते हैं कि यह जीव है। कोई मनमें यह सोचे कि हम शरीर को ही देखकर तो जीव नहीं कहते। शरीरमें जो रहता है जीव, उस पर भी तो निगाह है मेरी। उसको दृष्टिमें रखकर कह रहे हैं। अरे कौन अतस्तत्त्वको दृष्टिमे रखकर कहता है कि यह मेरा है? खालिस वह जीव जो ज्ञानघन है, जिसमें ज्ञान-ज्ञानका ही स्वरूप पाया जाता है, ऐसा वह परमात्मतत्त्व सबके अन्दर विराजमान है। पर उस पर न खुदकी दृष्टि है, न दूसरोंकी दृष्टि है। तब जो कुछ समझा वह अन्धेरेका ही तो ख्याल है। तब फिर ज्ञान जब तक नहीं है तब तक उसको सर्वत्र अन्धेरा ही अन्धेरा है। ऐसे लोग चाहे बड़े मौजके साधनोंमें रह रहे हों, बड़े महल हैं, बडे कमरे सजे हुए हैं, उनमें बड़े आरामके साधन हैं, कुर्सियां पलग आदिक बहुत आरामके साधन हैं लेकिन इन मौजोंमे रहनेका जो भाव है वह तो स्वयं अन्धेरा है।

परव्यसङ्गमे शान्तिका प्रभाव—परव्यासङ्गी जीवको शान्ति कहां है? सच्चे ज्ञानमे जो शान्ति है, सन्तोष है, धैर्य है वह अन्यत्र नहीं मिल सकता। जीवका यही तो एक कल्याणका उपाय है। खाना, सोना, आराम इनसे क्या गुजारा होता है। आत्माका इनसे क्या भला होता है? इनसे कुछ निर्णय भी तो नहीं कि जो सुखके साधन आज मिले हुए हैं वे छुटेंगे नहीं, आगे भी जायेंगे। अथवा निर्णय ही तो है कि ये अवश्य छूटेंगे, साथ नहीं जावेंगे। कुछ बड़े हुए फिर छोटे हो गए। बडे राजा महाराजा हैं, मरकर कीड़ा बन गए तो उस राज वैभवके भोगने से जीवको क्या लाभ हुआ और एक भवके बाद दूसरे भवमें ऐसा हल्कापन आ जाता है सो तो कथन है, मगर इस ही भवमें भी हल्कापन आ जाता है, अनेक दृष्टान्त हैं। किस पर गर्व हो? अनेक धनिक ऐसी स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं कि वे बड़ा दुःखका अनुभव करते हैं, अनेक विद्वान् ऐसी दुःख-मयी स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि इससे तो अच्छा था कि विद्या ही न पढ़ते। तो यह लौकिक ज्ञान, यह लौकिक धन, इससे जीव का गुजारा नहीं चल सकता। सच्चा प्रकाश हो, अपने आत्माके शुद्ध ज्ञानस्वरूपका परिचय हो तो इसे शान्ति है, कहाँ दुःख है? सारा दुःख

कल्पनाओंका बनाया है। ये भ्रमकी कल्पनायें दूर हो जायें तो हर स्थितिमे इसे आनन्द ही आनन्द है।

परमार्थज्ञानी विरक्त संतोंको परीषहोंके मध्य भी प्रसन्नता—जिन्होंने सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाया और वैराग्य जिनके बढ़ा, वे पुरुष निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर वनमे बसते है और जब बरसातके दिन आते हैं तो वे मुनीश्वर कहा रहते है और क्या करते हैं, इसका वर्णन इस छंदमें किया गया है। जब बरसात होती है तो सर्वत्र काली घटा छा जाती है। जैसा मयूरका कंठ होता है, कुछ नीला काला सा रंग रहता है अथवा जैसा रंग काजलका होता है उसकी भाति गहरा काला रंग हो गया अथवा जैसे भंवरा अत्यन्त काले रंगका होता है उसकी तरह वृष्टिका रूप बन गया। इतनी तेज वर्षा हो रही है कि जहा सर्वत्र काला ही काला नजर आता है। ऐसी वर्षाके समय ज्ञानस्वरूपकी ही धुनि रखने वाले पवित्र पूज्य योगीश्वर कहा हैं? वनमें हैं। कहा बैठते हैं? कहा खड़े होते है? खुले में नहीं, केवल एक वृक्षका आधार है उनका। वृक्षके नीचे बरसातमें खड़े होने से आराम तो नहीं मिलता बल्कि कभी-कभी खुले स्थानसे भी अधिक कष्ट पेड़के नीचे मिलता है। खुले स्थानमें जो बरसातकी बूँदें पड़ती हैं वे पतली धारमे पड़ती हैं पर वृक्षोंके नीचे तो जो बूँदे गिरती हैं वे बड़ी-बड़ी बूँदे होती है। बरसातका पानी इकट्ठा होकर बड़ी-बड़ी बूँदों के रूप में नीचे गिरता है। तो यद्यपि वृक्षके नीचे खुले स्थानकी अपेक्षा कष्ट अधिक सम्भव है पर वृक्षके पत्तों पर पड़ने से वह जल निःसदेह प्रासुक हो जाता है इस कारण ये योगीश्वर बरसातमें वृक्षके नीचे खडे रहते है। ऐसी कठिन वृष्टि हो रही है कि जहा इन्द्र धनुषके चित्रण मेघोंमें हो गए है। जब तेज वर्षा हो जाती है उसके बाद सूर्यकी ऊपरसे जो आभा पड़ती है उससे इन्द्रधनुष जैसा रंग और आकार बन जाता है। तो बरसातके दिनोंमें इन्द्रधनुषसे मेघ चित्रित हो गए हैं। जहा बहुत तेज गड़गड़ाहट की आवाज आ रही है, ऐसी बूँदोंकी वर्षा हो रही है मोटी धारासे कि जैसे मानों प्रचड शस्त्रघात हो रहा है। ऐसी वृष्टियोंसे जब गगन तलको देख लेते है वे तपोधन योगीश्वर महाराज, तो फिर वे वृक्षोंके नीचे ही भयकर रात्रिमें निःशक खडे रहते हैं।

परीषहोंमें भी प्रसन्नता प्रदान करने वाली निधि—यहा यह बात जानना है कि उन योगीश्वरोंने अपने आपके आत्मामें कौनसी चीज पाई है कि वे ऐसे वनमे, दुःखोंकी ऐसी स्थितियोंमें वे राजी रहते हैं प्रसन्न रहते है। वह निधि है आत्माके शुद्ध स्वच्छ ज्ञानका दर्शन, अपने परमात्म-

प्रभुका मिलन। जैसे संसारसे आसक्त पुरुष जिस किसी से भी राग करते तो उसके लिए बड़े-बड़े संकट उठा लेते हैं, बड़े सिनेमा थियेटर तो इसी आधार पर बने हुए हैं। उनमें प्रायः यही दिखाया जाता है कि देखो अमुक पुरुष चाहे उसका नाम मजनू है या फरियाद है उसको दिखाते हैं कि वह इस प्रकार स्नेहमें आ गया और जंगलोंमें, गलियोंमें, हाट बाजारोंमें पागल सा बना हुआ भ्रमण करता है और उस ही की धुन रमाये रहता है, बड़े कठिन कष्ट सह झेलता है। तो जब यहां भी देखा जाता कि असार चीजोंके स्नेहमें भी पुरुष बड़े कठिन कष्ट सह लेते हैं फिर तो जिन योगीश्वरोंने सारभूत तत्त्वके दर्शन पाये हैं, उस प्रभुतासे मिलाप किया है। उनका तीव्र विशुद्ध अनुराग जगा है तो उसकी प्रीतिमें उस भगवत् स्वरूपकी उपासनाकी धुनमें बरषात गर्मी जैसे परीषह सह ले तो उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। एक धुनकी विशेषता है। हम आप ऐसे योगीश्वरोंको परमेष्ठी मानकर प्रतिदिन भक्ति पूजा करते हैं। रोज देव शास्त्र, गुरुकी पूजा करते हैं। वे गुरु हैं कौन? ये ही योगी तो जिन योगियोंकी हम अर्चना करते हैं उन योगियोंने क्या काम किया जिससे वे पूज्य पवित्र बने? उस काम पर हम दृष्टि न दें और उस कामको हम उत्तम न मानें—उत्तम माननेका चिह्न यह है कि वैसा बननेकी हमारी उत्सुकता बने। यदि हम गुरुके स्वरूपको आदर्श न मान सकें, उपादेय न मान सकें तो हमने पूजा ही क्या की। पूजा तो करें वीतराग निर्ग्रन्थ गुरुओंकी और चित्तमें बसाये रहें राग भाव, स्त्री, पुत्र, धन वैभव इज्जत पोजीशन आदिकको, तो भला बतलावो यह वीतराग योगियोंकी पूजा हुई क्या?

योगियोंका शान्तिप्रद स्वाधीन आधार—भैया! कुछ हमें सोचना चाहिये अपने बारे में। सांसारिक मौजोंमें तो गुजारा न चलेगा। इन मौजोंके बीच भी यदि सम्यग्ज्ञान का प्रकाश है। हम अपने आपको सर्व परतत्त्वोंसे, परपदार्थोंसे निराला केवल ज्ञानज्योतिमात्र अनुभवते हैं, तो गृहस्थीमें रह कर भी हम शान्तिका मार्ग पा सकते हैं। और यह ज्ञानप्रकाश न मिला तो बड़े अंधेरेमें जीवन समझिये। ये योगी पुरुष ऐसी विषम रात्रिमें भी निःशंक होकर वनमें बने रहते हैं। तो उनको कोई उत्तम आधार ही तो मिला है। यहां तो तेज वर्षामें कमरेसे बाहर जो एक खुला हुआ दालान है वहां भी खड़े होनेकी हिम्मत नहीं करते। यदि बिजली तड़क रही हो, मेघ गरज रहे हों तो बाहरसे झट भीतर आकर किवाड़ बन्द करके उस कमरे के अन्दर ठहरते हैं। भला वे योगीश्वर जंगलोंमें रह रहे हैं, वृक्ष

तले निवास कर रहे हैं, यदि वे दुःख मानें तो वन छोड़कर गावोंमें बस जाते, मदिरमें बस जाते। उन्हें कौन रोकता ? भक्तजन तो उनका आदर ही करते, किन्तु उनको जिस बातकी धुन लगी है उसमें वे बाधा समझते हैं जनसमागममें रहनेपर और समागम अधिक होनेपर, अत वे वनमें ही ही प्रसन्न रहा करते हैं, जब उन्हें कोई पवित्र निधि मिली है तब ना।

जलधाराशरताडिता न चलन्ति चरित्रत. नृसिंहा.।
संसारदुःखभीरव परीषहारातिघातिन प्रवीरा ॥६॥

बाणवत् जलधारासे ताडित होकर भी योगियोंकी चारित्रसे अविचलिता—ये योगीश्वर जलधाराकी बाणवत् वर्षासे ताडित होकर भी चारित्रसे रच-मात्र चलित नहीं होते। ये नरसिंह हैं अर्थात् मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। सिंहका अर्थ शेर न समझना। सिंहका अर्थ है श्रेष्ठ। जैसे कहते हैं ना कि सिंहा-सनपर श्री जी को विराजमान करो। तो सिंहासनका यह अर्थ नहीं है कि सिंह जैसे पैर बनाये, फिर उसका आसन बनावे। सिंहका अर्थ संस्कृतमे श्रेष्ठ भी है। सिंह-आसन मायने श्रेष्ठ आसन। जैसा चाहे डिजाइन बनावे, जो सुन्दर हो, शोभायमान हो, बैठनेमे अच्छा स्थान हो, उस सब का नाम सिंहासन है। नहीं तो आप वैसे ही कुछ कल्पनायें करके सोचिये कि गुरु विराजें या भगवान विराजें ? तो ऐसा आसन चाहिये कि जिसमे सिंहका जैसा पजा लगा दिया गया हो। यह प्रथा चल गयी तो क्या, जो है सो ठीक है, मगर यथार्थ बात तो समझिये। कोई चित्र भी बना हो जानवर या अन्य किसी जीवका तो उसपर योगीजन नहीं बैठ सकते। जहाँ ब्रह्मचर्यके भेद बताये गए हैं—१८ हजार शीलके भेद कहे गए हैं उनमें चित्रसे सम्बिधित भी भेद हैं कुशीलके। जैसे स्त्री या देवागना या तिर्य-ञ्चिनी को निरखकर कोई अपने भाव विकृत करे तो वह कुशील है ना, इसी तरह फोटो देखकर भी कोई विकृत भाव करे तो वह कुशील है ना। तो इन चित्रोंके आधारसे भी पाप लगता है। तो जो चित्र बने हुए हों उन पर तो योगीजन बैठ भी नहीं सकते। तो सिंहका अर्थ श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ आसन, श्रेष्ठ वृत्ति, सिंह वृत्ति अर्थात् जो कायर मनुष्योंसे न बन सके ऐसे निर्मोह पुरुषोंकी वृत्ति। उसका नाम है सिंह वृत्ति। ये नरसिंह योगी-श्वर जलकी धाराओंके बाणसे ताड़ित भी हो रहे हैं, पर अपने उद्देश्यसे रचमात्र भी चलित नहीं होते। क्या उद्देश्य बनाया था ? मैं अपने आपमें दृष्टि रखकर रमूँगा, आनन्द पाऊँगा।

चारित्रसे अविचलितता होनेका कारण ससारदुःखभीरुता—क्यों नहीं चरित्रसे चलायमान होते वे योगीश्वर ? कि वे इन ससारके दु खोंसे भय-

भीत हैं। जैसे कहीं बाहर आपत्तियोंका डर हो किसीको तो वह घरके अन्दर ही रहता है, बाहर नहीं निकलना चाहता। अथवा जैसे बड़ी तेज सावनकी वर्षा हो रही हो, जहाँ बिजली भी तड़कती है, मेघ भी गरजते हैं, बड़ी कठिन वर्षा चल रही है, ऐसी कठिन वर्षाके बीच उसे कोई अच्छा घर ठहरने के लिए मिल जाय तो उस घरमें ठहर जाता है और जब तक वह भयंकर वर्षा समाप्त नहीं हो जाती तब तक वह उस मकान से बाहर निकलने की इच्छा नहीं करता है, क्योंकि बाहर दुःख ही दुःख है, बड़ा उपसर्ग और कष्ट ही कष्ट है, ऐसे ही उन योगियोंने यह निरखा कि बाहर तो कष्ट ही कष्ट है, अर्थात् इस उपयोगको यदि बाहरी पदार्थों में लगा दिया जाय तो जन्म मरण क्लेश आकुलता ये सारी विपत्तियाँ आती हैं। उन दुःखोंसे भयभीत होकर ये योगीन्द्र अपने आत्मामें विराज रहे हैं, इसी कारण अब वे अपने आत्मासे बाहर निकलना चाहते। चाहे मेघ बरस रहे हों चाहे तीव्र गर्मी पड़ रही हो और चाहे कोई शत्रु अथवा तिर्यञ्च उनका भक्षण भी क्यों न कर रहे हों, किन्तु ये योगी अपने आत्मा से बाहर नहीं निकलना चाहते। आत्मामें रहनेका अर्थ क्या है ? जीवका स्वरूप ज्ञान तो है ही। यह ज्ञान इन दुनियाभरके पदार्थोंको जानता है, यह तो कहलाया बाहर निकलना। और यह ज्ञान अपने ही ज्ञानके स्वरूप को जाननेमें लग जाय, मेरा यह ज्ञायकस्वरूप है जाननमात्र, प्रतिभास-मात्र, जहाँ केवल प्रतिभास ज्योति ही बनी हुई है ऐसा ज्ञान प्रकाश यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मैं हू, उस ज्ञानको ही ज्ञानमें बसायें। ज्ञानमें और कुछ चीज न लायें बस ज्ञानप्रकाश, प्रकाश ही प्रकाश ज्ञानमें रहे, इसे कहते हैं आत्मामें रहना। यों वे योगी आत्मामें रहा करते हैं, इस कारण वे बड़े वर्षाके उपद्रव सहकर भी अपने चरित्रसे चलित नहीं होते।

साधुवोंकी आराध्यताका कारण—देखिये—साधुवोंका दर्जा एक पर-मेष्ठीमें माना गया है। वे जन्मसे जीवनसे तथा प्राणोंसे सदा उपेक्षा रखते हैं। विधिपूर्वक यदि प्राण टिक सकते हैं तो टिकें, नहीं टिक सकते हैं तो मत टिकें, किन्तु उन साधुवोंका आत्मध्यान इतना प्रबल होता है कि वे चारित्रसे किसी भी कठिन उपसर्गमें चलायमान नहीं हो सकते। इसी लिए साधुका चरित्र बहुत निर्दोष और निष्कलंक होता है। होना ही चाहिये। जब हमने अपनी पूज्यतामें पंचपरमेष्ठीका विषय बनाया, आधार बनाया तो यों समझिये कि वे पाचों ही परमेष्ठी किसी दृष्टिसे एक ही लाइनमें एक ही जातिमें हैं। वह लाइन, वह जाति है वीतरागताकी। किसी ने वीतरागताका लक्ष्य बनाया है और उसमें चल रहे हैं, तो कोई वीतराग

बन चुके हैं, तो कोई वीतराग बननेके बाद शरीरसे भी रहित हो गए हैं, पर वीतरागता ही एक उपासनीय चीज है।

रागसे क्लेश होनेका ही निर्णय—हम, आप सबको यही निर्णय रखना चाहिये कि रागसे ही क्लेश है। क्लेशसे बचना है तो राग दूर करना होगा। कितने ही साधन मिले हों रागके, उनमें आसक्त न रहना होगा, और बड़े पुरुषोंका बड़प्पन भी इसीमें है, शोभा भी इसीमें है कि प्रत्येक साधन पाकर भी उन साधनोंमें रागी न रहें उनसे विरक्त ही रहें। जैसे जलमें उत्पन्न होकर भी कमल जलसे अलग रहता है। जलमें ही उत्पन्न हुआ, जलसे ही उसका जीवन चलता है, जलके ही बीच रहता है, फिर भी जलसे वह कमल अछूता रहता है। और वह कमल प्रफुल्लित भी तभी तक रहता है जब तक कि उस जलसे बिलकुल पृथक् रहता है। कदाचित् वह कमल जलमें आकर मिल जाय तो वह सड़ जायेगा, बरबाद हो जायेगा। ठीक इसी तरह हम आप सब जीव गृहस्थीसे पैदा हुए, गृहस्थीसे ही पोषण मिलता है, बात सही है और गृहस्थी में रह रहे हैं यह भी बात है, तिस पर भी यदि गृहस्थीमें रम जायें, गृहस्थीमें ही सम्पर्क रखे तो जीवन सड़ जायेगा, बरबाद हो जायेगा। गृहस्थीके कार्य करके भी, गृहस्थीमें रहकर भी गृहस्थीसे निराला ज्ञान बनाये रहेंगे तो जीवन उन्नत होगा, वहाँ कुछ लाभ मिलेगा। तो प्रत्येक परिस्थितियोंमें यह ध्यान रखना है।

अन्तर्दृष्टि होने पर ही बाह्यकी असारताका परिज्ञान—जब इस मायामयी दुनियामें दृष्टि देते हैं तो दिमाग एकदम बदल जाता है—ओह! यहाँ रहकर नाम न कमाया तो क्या किया, यहाँ रहकर इज्जत न बढ़ाई तो क्या किया? देशके बीच यदि अच्छे पदके लिए लोगों की अंगुली मुझ पर न उठी तो मेरा क्या जीवन है आदि। लेकिन जब परमार्थ पथ पर अपना चित्त ले जायें और एक समीचीन दृष्टिसे निरखें तो वे सब बातें असार मालूम होती हैं और यह निर्णय होता है कि मैंने यदि अपने स्वरूपकी सभाल न की तो फिर इस नरभवका क्या अर्थ है? यदि मैं अपने आपमें अपने को रमाकर अकेलेमें ही बैठकर प्रसन्न न बना सका तो मैंने कुछ कमाया ही नहीं। जीवनकी सफलता तो ज्ञानानुभवसे ही है। प्रत्येक पुरुष अपने ज्ञानमें कुछ न कुछ अनुभव करता रहता है। क्या बनना है, क्या करना है, मैं क्या हू? इस बातका कुछ न कुछ जरूर अनुभव करता है, लौकिक अनुभव करने से तो आत्माको शान्ति नहीं मिलती। अनुभव कीजिये इस प्रकार कि मैं हू, इस देहसे भी निराला हू। अन्यसे निराला तो हू ही। मैं हूं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र। जो रागद्वेषके

भाव उठते हैं वे भी मैं नहीं हूं। मैं उनका हुक्म क्यों मानूँ ? इस मुझ ज्ञानमात्रका जो भाव है उसका जो हुक्म होगा उसे मानेंगे। रागद्वेषका जो हुक्म होगा अथवा रागद्वेषकी प्रेरणासे जो हमारे विचार चलेंगे, हम उनका हुक्म न मानेंगे। हम उन विचारोंके वशीभूत न होंगे। हम तो अपने ज्ञानभावके वशीभूत रहेंगे। जब अपने अन्तरंग पर दृष्टि डालते हैं तो यह सारी दुनिया असार अहित दिखती है। इसमें पड़ने से कोई लाभ नहीं नजर आता।

आत्मज्ञानके लगावमें सर्वमुखी लाभ--अब यह देखिये कि इस मायामयी दुनियाकी ओर ही पड़ जाने में न तो दुनियासे कुछ मिलेगा और न अपने आत्मासे कुछ मिलेगा और आत्मज्ञान, सम्यग्ज्ञानमें अपना चित्त बनाये रखने से पुण्यवश दुनियामें भी इज्जत होगी और आत्मकल्याणका मार्ग भी मिलेगा। है क्या यहाँ ? धन दौलत किसीके हाथ पर नहीं कमाते जिसने जो कुछ जैसा पूर्वभवमें पुण्य कमाया था उसके अनुसार उसे यह मिल रहा है। यह सोचना भूल है कि मेरी बुद्धि, मेरे हाथ पैर ये धन कमाते हैं। अरे जब पुण्यका उदय है तो आपके बिना ही सोचे जहां चाहे लक्ष्मी बरसती है और यदि उदय अनुकूल नहीं है तो अनेक उपाय करने पर भी धन नहीं मिलता। तो कमाईका साधन पुण्य है। पुण्यका साधन धर्मपालन है और धर्मपालन तो यथार्थ ज्ञानाराधना है, पर उसके साथ जो शुभ राग लगा है उससे जो पुण्य बंधता है उसका फल है इस धन वैभवका आना। तो इस धनमें ही अधिकाधिक दृष्टि न रखे, पैसा होना होगा सो होगा। पर मैं आत्माका हित करूँ, ज्ञान करूँ, सहजज्ञानस्वरूप को जानूँ, इसमें ही सन्तुष्ट रहूं, ऐसा यत्न करें तो इसमें ही सर्वसिद्धि है।

योगियोंकी प्रवीरता--यहां तो मोही जीवोंको ऐसा लगता है कि ये परीषह, उपसर्ग, विपदायें मेरी वैरी हैं, इनसे मेरा घात होता है, इन दुःखोंसे मेरी बरबादी है। लेकिन ये योगीश्वर परीषहोंके, उपसर्गोंके, विपदाओंके वैरी हैं, अर्थात् परीषहोंको नाश करने वाले हैं, जिनके आगे ये परीषह सब निष्फल हो जाते हैं। इसी कारण इन योगियोंको प्रवीर कहा जाता है। ये प्रकृष्ट वीर हैं। किसी भी जगह किसी भी समय योगियों को कोई शंका नहीं रहती। जिन्होंने अपने ज्ञानस्वरूपमें ही रुचि लगायी है वे किसी भी समय हों, किसीभी स्थानमें हों, जहां उन्होंने अन्तर्दृष्टि की, अपने आपके स्वरूपमें निरखा कि उनके सारे संकट समाप्त हो जाते हैं, कोई संकट ही नहीं रहता। तो लोग विपत्तियोंसे घबड़ाते हैं और ये विपत्तियां योगियोंसे घबड़ाती हैं। ये विपत्तियोंपर, परीषहोंपर विजय

करने वाले प्रकृष्ट वीर हैं। ऐसे योगियोंकी भक्ति की जा रही है। योगियों के इस अंतःसाहसका ध्यान करनेसे धैर्य बढ़ता है, संतोष होता है, सन्मार्ग का दर्शन होता है।

अविरतबहलतुहिनकणवारिभिरंघ्रिपपत्रपातनै-
रनवरतमुक्तसीत्काररवैः परुषैरथानिलैः।
शोषितगात्रयष्टयः इह श्रमणा धृतिकम्बलावृताः,
शिशिरनिशां तुषारविषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः॥७॥

योगियोंका शीतपरीषहविजय—इस योगभक्तिमें अब तक मुख्यतया गर्मी और बरसात— इन दो प्रकारके परीषहविजयोंका वर्णन किया गया। अब इस छंदमें शीतपरीषहविजयका वर्णन कर रहे हैं। ऐसी शीतऋतु है, इतनी विकट ठंड है कि जहाँ बर्फ भी पड़ने लगी, पेड़की पत्तियोंसे गिरने वाली बहुत मोटी बरफकी बरषाकी कणके जलोंसे जिनका शरीर धुल रहा है ऐसी कठोर बर्फकी बिन्दुवें जिनके शरीरपर टपक रही हैं, जहां देखो वहा निरन्तर सीत्कारके शब्द ही छूट रहे हैं, लोग सी-सी कर रहे हैं, और वातावरणमें भी कुछ सी-सी की धुन समाई हुई है, ऐसी कठिन बर्फकी बरषातमें जहां वृक्षके नीचे योगीश्वर विराजे हैं अथवा एकदम 'चौहट्टा'पर खुली जगहमें योगीश्वर विराज रहे हैं। जहा उस बर्फकी वर्षाके साथ-साथ वायु भी चल रही है। शीतवायुके कारण जिनकी शरीररूपी लाठी शुष्क हो गयी है, जैसे लाठी सूखी नजर आती है ऐसे ही जिनका शरीर सूखा नजर आ रहा है ऐसे ये श्रमण ऐसी कठिन ठंडमें ठंडपरीषहको सहन कर डालते हैं।

योगियोंके धैर्यका महान् आलम्बन—अब जरा विचारिये ऐसी क्या चीज योगियोंको प्राप्त हुई है? उन्होंने ऐसा क्या ओढ़ रखा है जिससे इतनी कठिन ठंड भी उन्हें बाधा नहीं पहुचा रही है, जो अन्तरङ्गसे रच-मात्र भी चलित नहीं हो रहे हैं। तो उन योगियोंने धैर्यरूपी कम्बल ओढ़ रखा है। ये योगी जानते हैं कि सारभूत आत्माका काम तो अपने सहज स्वभावकी दृष्टि करना और इस निज भगवान आत्माके निकट अपने उपयोगको बसाये रहना है। यह जन्म मरण तो एक बड़ा भारी झंझट है। ये शरीरादिक समागम ये तो दुःखके मूल हैं इनमें क्या राजी होना? एक अपने अन्तःज्ञायकस्वरूपसे राजी हैं, वे अपने ज्ञानको ज्ञानज्योतिमें मिलानेका निरन्तर यत्न कर रहे हैं। खुदका है ज्ञानस्वभाव, मेरा क्या स्व-रूप है, इस चीजको बड़े अमन्दभावसे विचारकर इस ज्ञानोपयोगको उस ज्ञानस्वरूपमें मिलाने का यत्न किया करते हैं, और उस कालमें जब कि

ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप समा जाता है तो उनको जो अद्भुत अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है उस आनन्दके सामने ठंड गर्मी आदिक बाधावोंको क्या बाधा गिने ? जैसे कोई लोभी पुरुष लोभमें आकर बाहरी कष्टोंको तो कुछ नहीं गिनता, अर्थ लाभ होना चाहिये, चाहे ठंड हो, चाहे बरसात, चाहे कोई किसी भी प्रकारके वचन कहे, समस्त कष्टोंको लोभी पुरुष सह लेता है, क्योंकि उसे तो द्रव्यका लोभ लगा है, लेकिन योगियोंको अपने अन्तस्तत्त्वसे प्रेम लगा है। ज्ञानमय ज्ञानानुभूति होनेसे जहाँ केवल अमूर्त ज्ञानस्वरूप ही उपयोगमें रहता है। खुद ही ज्ञान ऐसा सामान्य बन जाता है कि ज्ञानप्रकाश ही रहता है, कोई विकल्प नहीं, किसी परपदार्थका ख्याल नहीं, इस स्थितिका लोभ लगा है योगियों को, उसे लोभ नहीं कहना, किन्तु विशुद्ध अनुराग कहना चाहिये। तो इस आन्तरिक ज्ञानस्वभावके विशुद्ध अनुरागके कारण इन योगियोंको ये बाह्यपरीषह बाह्यक्लेश ये कुछ भी मूल्य नहीं रखते हैं। इसे सह लेते हैं। इन्होंने धैर्यका कम्बल ओढ़ रखा है, धीरता है, गम्भीरता है।

बाहिरी आराममें आन्तरिक आरामका अभाव—भैया ! क्या बाहरी आराम तकना। आराम तो अपने आपके आपमें है। बाहरके आरामोंसे आराम नहीं कहलाता। बड़े-बड़े धनिक लोग बड़े कोमल गद्दोंमें बैठे रहते हैं, पड़े रहते हैं, वहीं खाना पीना बराबर हाजिर होता रहता है, सेवकजन उनको हर प्रकारकी सेवा करनेके लिए हाजिर रहा करते हैं। कितना आराम है उन्हें, लेकिन कोई मानसिक चिन्ता हो गयी हो तो ऐसे कोमल गद्दोंमें पड़े रहनेपर भी वे हाहाकारके करवट बदलते रहते हैं। तो बाहरी आरामोंसे आराम समझा जाय क्या ? भीतरी आत्मा यदि आराममें है, अपनेको आराममें किया गया है, अपने भगवान स्वरूपपर उसका ध्यान विशेष है तो आराम वहां है। ये योगीश्वर शीतकालमें जहां कि बर्फ पड़ रही है और बहुत ठंडी झंझावायु भी बड़े वेगसे बह रही है, ऐसे समयमें चौहट्टे पर स्थित हुये, जंगल वन नदी आदिकके स्थानोंपर स्थित हुए ऐसे शीतकालकी रात्रिको जहां कि बड़ा तुषार पड़ रहा है बड़े आनन्दमें व्यतीत कर देते हैं। इन योगिराजोंके शारीरिक संहनन भी अच्छा होता था जिससे ऐसे विकट समयमें शारीरिक बाधा उनके नहीं होती थी, अथवा शारीरिक बाधायें मानने की हैं। बाधा तो असली यह है कि जहां उन्हें भी प्राण जाते हैं। सो उनका संहनन भी मजबूत और प्राण जाते हों तो उसकी परवाह नहीं। ये योगी तो अपने आत्मारामके आरामको आराम मानते हैं।

भगवान आत्माके निकट रहनेसे योगियोंका संतोष—ये योगी अपने ज्ञानस्वरूप भगवानके निकट रहनेमें सन्तुष्ट रहते हैं। जैसे यहां छोटे बच्चे अपने माता पिताके पास ही बढ़े रहा करते हैं संतोष मानते हैं और वे अपनेको नि:शंक, निरापद समझते हैं ऐसे ही ये योगीश्वर अपने ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माके निकट रहनेमें सन्तोष मानते हैं और अपनेको निरापद नि:शंक समझते हैं। जो बातें इन योगीश्वरों ने प्राप्तकी हैं वे सब बातें हम आपमें भी उपस्थित हैं। वे भी चेतन थे, हम आप भी चेतन हैं, वे भी एक ज्ञानस्वरूप थे, हम आप भी ज्ञानस्वरूप हैं, एक ज्ञानदृष्टि सही करनेकी आवश्यकता है। जो सन्तोष ज्ञानी योगी प्राप्त करते हैं उस सन्तोषकी आभा हम आप भी पा सकते हैं। इतनी गहराई से अपने आपके अन्दर चिन्तन करनेकी आवश्यकता है। जरा तकिये तो अपने आपमें, इस शरीरमें बसा है चैतन्यप्रकाश। अपने आपके अन्दर जो सोचा करता है और मैं मैं की आवाज लगाया करता है। मैं हू, मैं अमुक करता हू, मैं ऐसा करूँगा, मुझे यह करना है। जिसमें मैं मैं की आवाज आती है, वह प्रत्ययवेद्य है एसा यह भगवान आत्मा इस पर दृष्टि तो कीजिये यह अमूर्त है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है। इस आत्माको कोई दूसरा नहीं पहिचान रहा, कोई नहीं जान रहा। हम ही अपनेको जान पाते हैं, और कब जान पाते हैं जब हम अपनेको ज्ञानमात्र स्वरूपमें निरखते हैं। केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू, ऐसी ही बार-बार भावना बनती है तो इसके अभ्यासमें जब यह ज्ञान ज्ञानमें स्थित हो जाता है उस समय हम अपनेको पहिचान पाते हैं कि मैं तो यह हूं। ऐसी पहिचान कोई दूसरा मेरी नहीं कर सकता। कोई दूसरा करेगा पहिचान तो वह अपने ही ज्ञानस्वरूपकी करेगा, तब फिर मेरा किसी दूसरे जीवसे किसी भी विधिसे कुछ सम्बंध नहीं है। मैं अपना ही स्वयं जिम्मेदार हू, ऐसी प्रतीति जिन ज्ञानियोंके हो जाती है, उनको बाहरमें आनन्द नहीं आता, उन्हें तो अपने ही भीतर रमने में आनन्द मिलता है। वे तो स्वयमें स्वयं सतुष्ट रहते हैं।

इति योगत्रयधारिण: सकलतप:शालिन: प्रवृद्धपुण्यकाया:।
परमानन्दसुखैषिण: समाधिमग्र्यं दिशतु नो भदन्ता:॥८॥

योगियोंका योग—ये भगवान योगीश्वर तीन योगोंके धारी हैं—मन, वचन और कायको जिन्होंने वश किया है और इसी कारण वर्षा शीत, गर्मी तीनों समय योग धारण करते हैं, समस्त बरसातके परीषहोंको सह लेते हैं, ग्रीष्म योगमें आताप सह लेते हैं, शीतकालमें शीतपरीषह सह लेते

हैं ऐसे तीनकालमें योगोंको धारण करने वाले ये योगीश्वर हम सबको प्रमुख समाधि प्रदान करें, समाधिका उपदेश करें, हममें भी समतापरिणाम जगे। जैनशासनमें गुरुवोंकी चर्या, पर्वोंकी प्रक्रियायें, पूजाकी क्रियायें, दर्शन, ध्यान आदिककी क्रियायें सब कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, जहां ढोंगका नाम नहीं, ठस उद्देश्य भरा हुआ है। ऐसे वातावरणमें हम आपने जन्म लिया है। तो जैसे किसी बड़े पुरुषसे समाज कहती है ना कि भाई तुम हमारी समाजके बड़े पुरुष हो, तुमपर बड़ी जिम्मेदारी है, ऐसे ही समझिये कि इस लोकमें सबसे महान सुयोग पाया है हम आपने, तो हमपर खुदकी बड़ी जिम्मेदारी है। देखिये गुरुवोंकी चर्यायें निरखने से मनमें दुखोंको समतासे सहने का उत्साह जगता है। जब हम ऐसी कठिन परीषहोंके बीच आत्मज्ञानमें रत, खटपटोंसे रहित अत्यन्त विरक्त योगियोंके गुणोंका ध्यान करते हैं तो हममें भी उत्साह जगता है, कष्टसहिष्णु बननेका। छोटी-छोटी बातोंमें अधीर हो जाना यह अज्ञानियोंका काम है। ज्ञानी पुरुष जिन्होंने एक सम्यग्ज्ञानके प्रकाशको ही वैभव माना है वे संसारकी छोटी-छोटी परिस्थितियोंमें, छोटे मोटे वातावरणोंमें रंच भी नहीं घबड़ाते हैं, धैर्य रखते हैं। ये योगीश्वर जब ऐसे बड़े कठिन परीषह सह लेते हैं तो हमें यदि कोई जरासा कष्ट आया है तो उसमें क्या घबड़ाना?

सात्विक रहन सहनमें धैर्य, और भक्तिका अवसर—भैया! अपना जीवन सात्विक रहना ही उचित है। चाहे कितने ही आरामके साधन मिले हों, चाहे बड़ा वैभव प्राप्त हो फिर भी अपने जीवनको सात्विक ही बनाना चाहिये। पैसोंका व्यय इस शरीरके आरामके लिए नहीं करना चाहिये। किन्तु जीवन तो रहे सात्त्विक, रहन सहन भोजनपान तो रहे सात्विक और यदि लक्ष्मी बढ़ती है तो धार्मिक कार्योंमें, परोपकारमें, दान देकर सन्तुष्ट रहना चाहिये, पर अपने आपका आराम बढ़ानेमें अधिक व्यय करके सन्तोष मानने की प्रकृति अच्छी नहीं है। अपने शरीरको यदि बड़े आरामतलबीमें रखा और कदाचित् कोई ऐसे कष्टके दिन देखने पड़ें कि भोजन पानी भी नसीब नहीं होता तो फिर उन दिनोंमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। इस कारण जीवनको बड़े सात्त्विक रहनसहनमें रखना चाहिये। इसी प्रकार धन खर्चकी बात है। अपने शरीरके आराममें बहुत धन व्यय कर दिया, वह धन नष्ट हो गया, आरामके दिन भी खत्म हो गए, लाभ कुछ न मिला। यदि धार्मिक कार्योंके लिए खर्च किया गया होता तो उसका फल अब भी सामने होता। जो लोग धार्मिक कार्योंमें धन व्यय करके मरणको प्राप्त हो चुके हैं उनकी कीर्तिका जीता जागता उदाहरण आज भी

हम आपके सामने उपस्थित होता है। ऐसे पुण्य कार्योंसे उन करने वालों को भी सन्तोष मिला और हम आपको भी उनको उदारताका उदाहरण सुन कर सन्तोष मिलता है। तो निष्कर्ष यह निकला कि जीवन सात्विक वृत्तिसे ही रहना चाहिये। इसमें प्रभुभक्तिका अवसर मिलता है। सात्विक जीवनसे रहनेमें व्रत संयमके लिए उत्साह जगता है और व्रत संयम ज्ञान वैराग्यसे ही जीवका हित है। तो ऐसे योगियोंके गुणोंका ध्यान करने से हम आपको धैर्यकी शिक्षा मिलती है। पर्वोंकी प्रक्रियायें देखलो–दशलाक्षण पर्वके दिन, अष्टाह्निकाके दिन अथवा दीपावलीका पर्व आदि पर्व दिनोंमें भक्त पुरुषोंका कितना पवित्र हृदय रहता है। धर्ममें, उपवासोंमें, प्रभुभक्ति में चित्त रहे ऐसा प्रोग्राम इन पर्वोंमें रहता है। जैनशासनके अनुसार चर्या करनेमें भी कितनी पवित्रता बर्तती है। दिनमें ही भोजन बनाना, दिनमें ही खाना, यह बात जहाँ रहती है वहा धर्मका जीता-जागता वातावरण रहता है। यदि ऐसे एक दुर्लभ समागमको पाया है तो हम आपकी बड़ी जिम्मेदारी है। धर्मपालन करके, ज्ञानार्जन करके अपना जीवन सफल करें और दूसरोंको मार्ग बतायें।

योगियोंकी तपस्विता—ये योगीश्वर समस्त तपोंसे युक्त हैं, जो ऐसे य गको धारण कर सकते हैं, परीषहों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं उनके लिए सभी तप आसान हैं। अनशन उपवास करना, भूखसे कम खाना, अटपट आखड़ियां ले लेना कि ऐसा अगर दिखा तो आज आहार लूँगा, परीक्षा करना अपने आपके धैर्यकी, रसपरित्याग करना, एकान्त स्थानमें रहना, बैठना, सोना और अनेक प्रकारके काय क्लेश करना, ककरीली जमीन पर सो रहे हैं एक करवटसे और प्रसन्न हैं। सर्दी गर्मीके परीषह सहन कर रहे हैं फिर भी सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे वे प्रसन्नचित्त रहा करते हैं। तो उन योगियोंको ये बाह्य तप धारण करना आसान है और अन्तरङ्ग तपके तो वे रुचिया हैं ही। कोई दोष लगने पर प्रायश्चित्त करना, दूसरे साधुजनोंका विनय करना, अपने आपमें शाश्वत रहने वाले ज्ञान-स्वरूपका विनय करना, अपने आपकी ओर नम्र होना अर्थात् अपने ज्ञान-स्वरूपमें समा जाना। बाहरी झंझट विकल्पोंसे दूर रहना यही अपनी सेवा है और इसी ढगसे दूसरोंकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, अपने आपका अध्ययन करना और शरीरसे भी ममत्व छोड़ना, ध्यानरत रहना, ये समस्त तप उन्हें आसान हैं। जिन्होंने अपने पुण्यकायको अर्थात ज्ञान को, चेतनको उन्नतिशील बनाया है ऐसे योगीश्वर हम आप सबको प्रमुख समाधिभाव प्रदान करें।

योगभक्तिमें समताकी प्रार्थना – भैया ! योगियोंकी पूजा अर्चना करके और आशा ही क्या करनी चाहिये ? जो उनके पास है, जिसमें वे रम रहे हैं उसकी ही तो आशा रखनी चाहिए। उनकी सेवा सुश्रुषा करके हममें भी समताका परिणाम बने। इस लोकमें शुद्ध ज्ञान जगना, समतापरिणाम रहना, धैर्य रहना ये बातें यदि अपने आप आत्मामें आ सकें तब तो भला है, इनके विरुद्ध अगर सांसारिक मौज रचना, विषय कषायोंमें लगे रहना, ये ही अगर किए गए तो जीवन बेकार है। पीछे पछताना पड़ता है। लेकिन जैसे कहावत है—अब पछिताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत। सारा जीवन तो मोह मोहमें ही गुजार दिया, अब कोई वश न रहा शरीर भी अपने आप उठ बैठ सकता नहीं, बच्चोंके आधीन हो गए हैं ऐसी स्थितिमें जरा-जरा सी घटनाओंमें क्रोध उत्पन्न होता है, भीतर अभिमान जगता है। अरे मैंने तो इन बच्चोंको ऐसे ऐसे कष्टोंसे पाला पोषा, इन पर इतना-इतना खर्च किया, इनसे मैं बड़ी आशा रखता था इतनी कठिन सेवा की, फिर भी ये मुझे पूछते ही नहीं हैं। अनेक प्रकारके जहां संक्लेश, संकल्प विकल्प होने लगते हैं अब वहां क्या किया जाय ?

ज्ञानयोग बिना लाभका अभाव—दौलतरामजीने छहढालामें कहा है ना— (बालापनमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणी रत रह्यो। अर्द्धमृतकसम न बूढपनो। कैसे रूप लखे आपनो॥) यह कथा सबकी नहीं है कि जितने बूढे हों वे सब आत्मस्वरूपके दर्शनसे वंचित रहते हों। अन्यथा ये योगीमुनि आखिर जीवनमें रहेंगे तो बूढ़े तो होंगे ही। फिर क्या उनका जीवनभर तपश्चरण करना बेकार है ? क्या तपश्चरण करना ? आखिर बूढ़े होंगे, आत्मस्वरूपके लखने से रहित हो जायेंगे। तो क्या फायदा ? ऐसी बात नहीं है। यह उस ही जीवकी कहानी है जिस जीवने बचपनमें ज्ञान नहीं पाया, और उस ही जीवने जवानीमें स्त्रीलीन होकर अपना जीवन उबाया। वही जीव जब बूढ़ा होता है तब वह आत्मस्वरूपको नहीं लख सकता है। लेकिन जिन्होंने बचपनमें ज्ञान कमाया, जवानीमें संयम और तपका आदर किया, अपने आत्माकी सावधानी रखी वे पुरुष बूढ़े हो जायें तो भी आत्मस्वरूपको लखते हैं। इन योगीश्वरोंने अपने तप और योगके धारणसे ज्ञानशरीरको बढ़ाया है, सांसारिक सुख, विषय सुख, विनाशीक सुखोंकी वे रंचमात्र भी इच्छा नहीं करते, आत्मा का स्वरूप आनन्दमय है सो उस ही आत्माके आश्रयसे जो आनन्द प्रकट हुआ है उस ही आनन्दकी वे चाह करते हैं।

योगिदर्शनसे समताका उपदेश--ऐसे योगीश्वर जिनके ध्यानके प्रतापसे

भक्तजन समतापरिणाम धारण कर लेते हैं। वे योगीश्वर जंगलमें जहाँ विराजे रहते हैं वहां सिंह हिरण आदिक परस्पर जाति विरोधी जानवर इस प्रकार साथमें बैठते हैं कि जैसे एक परिवारके ही सब जीव हों। उन पर किसने असर डाला है ? उनको किसने इस प्रकारसे चलाया ? अरे वे जीव भी सज्ञी पञ्चेन्द्रिय हैं, उनमें भी मन है, विवेक है, वे जब परम आनन्दरसमें लीन योगियोंकी शान्तमुद्राको निरखते हैं जिनके मुखसे सहज आनन्दके कारण मधुर मुस्कान अपने आप प्रकट हो रही है ऐसी उस आनन्दभरी मूर्तिको जब वे जीव निरखते हैं तो उनके चित्तपर स्वय प्रभाव पड़ता है और वे बैर विरोध आदिक दुष्कर्मोंको त्यागकर निर्वैर होकर ठहरते हैं। तो जिनकी मुद्राको निरखकर पशु भी बैर छोड़ देते हैं, समता-परिणाममें यथायोग्य आ जाते हैं वे योगीश्वर हमें भी प्रमुखतया समाधि भावको प्रदान करें। इष्टमें हर्ष न जगे, अनिष्टमें द्वेष न जगे, हम अपनी धीरतामें बने रहें ऐसा बल ऐसा ज्ञान मेरे में प्रकट हो। इस प्रकार योग-भक्तिमें योगियोंके गुणोंका वर्णन करके उन योगियोंके ध्यानसे चाहा है यह कि मेरेको भी यह समाधियोग प्राप्त हो।

प्राकृत योगिभक्तिः

थोस्सामि गुणधारण अणयाराण गुणेहिं तच्चेहि।
अंजलिमउलियहत्थो अभिवदंतो सविहवेण ॥१॥

आत्माका प्रयोजन ज्ञान और आनन्द—इस लोकमें स्तवन करने योग्य कौन होता है ? स्तवन करने वाला चूँकि ज्ञानानन्दस्वरूप यह आत्मा है और उसका प्रयोजन प्रत्येक कार्यमें ज्ञान और आनन्दका लाभ है सो ज्ञान आनन्द जिनके प्रकट होता है ऐसे योगी स्तवन करने योग्य होते हैं। प्रत्येक जीव ज्ञान और आनन्दकी चाह करते हैं। वस्तुतः इन दो चाहोंके अतिरिक्त अन्य कुछ भी चाह जीवकी नहीं होती है और जो चाहोंका प्रसार बन गया है वे सब चाहें इन दो चाहोंमें गर्भित हैं। इन दो चाहोंका या तो ज्ञानकी चाहसे सम्बन्ध है अथवा आनन्द की चाहसे सम्बन्ध है। कोई मनुष्य अगर धनी बनने की इच्छा रखता है तो वह धनी बनने के लिए धनी नहीं बनना चाहता, किन्तु आनन्द चाहने के लिए धनी बनना चाहता है। उसने आनन्द मान रखा है, इस ही बातमें भ्रमसे कि मैं विशेष वैभव वाला होऊँगा तो ये दुनियाके लोग मुझे अच्छा मानेंगे। ऐसी भ्रम वासना करके और पर्यायबुद्धि करके धनी बननेकी चाह उत्पन्न की है। वह चाह भी धनी बनने के लिए नहीं है किन्तु आनन्द पाने के लिए है।

रागद्वेषका कोई काम नहीं है, केवल एक आत्माके ज्ञानकी विशुद्धिका ही ध्यान बन गया है, ऐसा जो पुरुष है वह किसके लिए आदर्श न होगा? मूर्ख ही ऐसे होंगे जो ऐसे गुणधारी योगियोंका स्तवन न करें और हृदयसे उनकी प्रशंसा न करें। तो यह योगी पुरुषोंकी भक्ति चल रही है। इस छंदमें कह रहे हैं कि जो अनेक गुणोंके धारी हैं ऐसे योगीश्वरोंकी मैं स्तुति करता हू, जो क्षमाकी मूर्ति हैं, कोई कुछ किया करते हैं, इस ओर जिनके कोई राग रोष नहीं। श्रेणिकने एक योगीपर उपसर्ग किया, मरा साँप डाला और तीन दिन बाद चेलनाको खबर दी जाने पर चेलना सहित श्रेणिक आया तब चेलनाका उपसर्ग दूर किया। उपसर्ग दूर होनेके बाद जब साधु निहारते हैं तो दोनोंको कहते हैं—'तुम दोनोंको धर्म लाभ हो।' भला ऐसी क्षमाकी मूर्ति ऐसी समताकी मूर्ति, किसके द्वारा स्तवन किये जाने योग्य नहीं है?

योगियोंकी आन्तरिक मृदुता—जिनमें मानका नाम नहीं। मान किस पर करें? शरीरको उन्होंने अपना समझा ही नहीं तो मान किसका करें, जो कुछ कलायें पायी हैं उनको ये योगीश्वर न कुछ जैसी समझते हैं। वे तो ऐसा मानते हैं कि यह ज्ञान कुछ भी नहीं है। आत्माका ज्ञान तो लोकालोकका जाननहार है, अनन्तज्ञान है, यह ज्ञान क्या चीज है? जाति कुल प्रतिष्ठा इन सबको वे योगीजन असार जानते हैं। ये तो आत्माकी कोई चीज ही नहीं हैं। किस पर मान हो और चूंकि वे अपनेको एक अवस्थाकी दृष्टिसे हीन दशामें समझ रहे हैं। जब तक संसार है, जब तक शरीरका बन्धन लगा है तब तक तो हीन अवस्था है। आत्माका ऐसा बंधा रहनेका काम न था। तो जो अपने को इस तरह अवस्थाकी दृष्टिसे हीन निरख रहे हैं और जो कला प्राप्त की है, तपश्चरण पाया है उन सबको ये न कुछ समझ रहे हैं। मेरा आत्मा तो है अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तशक्ति अनन्त आनन्दमे भरपूर है। किस पर मद किया जाय और मद किसके लिए दिखाना, यहां कोई हमारा प्रभु तो है नहीं। कोई मेरा पालनहार तो है नहीं, सभी कर्मोंके प्रेरे अपने अपने कर्मानुसार रुलते फिरते इकट्ठे हो गए हैं, इनमें किसको क्या दिखाना, इन सब बातों विचार करके जिन योगियोंके मद रंच नहीं रहा है ऐसे नम्रताकी मूर्ति योगीश्वर किसके स्तवनके योग्य न होंगे?

योगियोंकी निश्छलता और निर्लोभताकी उपासना—जिनके मायाचार रंच नहीं है। छल कपट किस बात पर करना? संसारमें कुछ अवस्था अच्छी है नहीं। धन, घर, लोकमें इज्जत इनकी उन योगियोंका कुछ चाह

ही नहीं रही। जब कुछ चाह ही नहीं रही तो वे योगीजन छल कपट किस बातपर करें ? छल कपट इन्हीं परतत्त्वोंके लाभके लिए ही तो लोग किया करते हैं। जिन्होंने सीधा साफ स्पष्ट ज्ञायकस्वभावी निज आनन्दघन अन्तःप्रभुका दर्शन किया है, अब उससे बढ़कर लाभ क्या है ? वे मायासे रहित हैं। ऐसे सरल, निश्छल, निर्भय योगीश्वर किस बुद्धिमानके स्तवनके योग्य नहीं हैं ? ये योगीश्वर लोभकषायसे बिल्कुल दूर हैं, इन्हें अपनेलिए कुछ भी न चाहिये। केवल दातारके यहाँ जब कोई क्षुधा वेदनासे तीव्र पीड़ा होती है तो जीवन रखने के लिए आहार कर आते हैं और उसके बजाय कितने लोगोंको ये योगीश्वर दान किया करते हैं। जिनके दर्शनसे ही जीव तिर जायें, जिनके उपदेशसे जीवतिर जायें। कितने लोगोंका उपकार होता है ? वे योगीश्वर लोभकषायसे रहित हैं। तो जो केवल एक ज्ञानस्वरूपकी आराधनामें ही लगे हैं, जो किसी भी परतत्त्वसे अपना हित नहीं समझते, ऐसे स्पष्ट ज्ञाता निर्लेप वीततृष्ण योगीश्वर किसके स्तवनके योग्य नहीं है ?

सत्यताकी मूर्ति—योगीश्वर सत्यकी मूर्ति है। जो सच है सो यह है। उनका रूप निर्ग्रन्थ है, शल्योंसे रहित है वह मुद्रा समस्त भव्य जीवोंको अभय प्रदान करती है। जिन योगीश्वरोंको निरखकर कोई भी भय नहीं खाता है। जिनके हाथमें केवल दयाके साधनभूत थोडे से मयूरपंख हैं। बहुत पंख रखने का रिवाज न जाने कबसे चला। थोडे से ही पंख रखना जीवदयाके लिए काफी है। सो जिनके पास थोड़ेसे मयूरपंख हैं, जो अति कोमल होनेसे रखे गए हैं, जो आसानीसे मिल जाते हैं, अपने आप ये मोरपंख छोड़ देते है, जिसमें किसी तरहका आरम्भ नहीं, दोष नहीं जो, अति कोमल हों, सो भी १०-२० पंख करते हैं और शुद्धिके लिए कोई कमण्डल जिस किसी भी रगका हो, ये दो उन योगियोंके उपकरण हैं। ऐसे दयामूर्ति योगी पुरुषोंको देखकर भला किसे भय उत्पन्न होगा ? बल्कि भयभीत पुरुष भी ऐसे योगियोंको देखकर निर्भय हो जाते हैं।

संयम तप त्याग आकिञ्चन्य व ब्रह्मचर्यका योग—योगीश्वर शुद्धताकी मूर्ति हैं और इसी कारण जिनमें संयम विशेष प्रकट है, प्राणियोंकी रक्षामें सावधान है, अपने इन्द्रिय और मनके विषयोंको जीतने वाले हैं, ऐसे विजयी योगीश्वर भला किसके द्वारा वंदनीय नहीं हैं ? जो इच्छाओंसे रहित हैं इसीकारण बडे-बड़े दुर्धर तपोंमें भी जो रंच भी खेद नहीं मानते हैं, जिन्होंने सर्वस्व त्याग किया है, जो रागादिक विभावोंसे भी उपेक्षा रखते है अन्तरङ्गके परिग्रहोंसे भी जिनकी निवृत्ति हो गयी है, केवल

ज्ञानस्वरूप अपने अन्तस्तत्त्वकी उपासनामें रत रहा करते हैं, जिन्होंने जाना कि मानव जीवन केवल एक अन्तस्तत्त्व भगवान आत्माकी उपासना से ही सफल है ऐसे योगीश्वर भला किसके द्वारा वन्दनीय नहीं हैं? जो योगीश्वर सदा आकिञ्चन्यभावना भाते रहते हैं—मेरा दुनियामें कुछ नहीं, मेरा तो यह शरीर भी नहीं, यहाँ तक कि ये मुझमें ही उठने वाले रागद्वेष विकल्पादिक भाव भी मेरे नहीं हैं। एक तो निज ज्ञायकस्वरूप है उसके सिवाय अन्य कुछ भी तत्त्व अपना नहीं मानते। ऐसे आकिञ्चन्यकी मूर्ति हैं और इस ही बल पर जो अपने ब्रह्ममें, अपने आत्मस्वरूपमें लीन रहा करते हैं ऐसे परम ब्रह्मचर्यकी मूर्ति हैं, यों ये आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्यकी स्पष्ट मुद्रा रखने वाले योगीश्वर क्या बुद्धिमानोंके द्वारा स्तवनके योग्य नहीं हैं? ऐसे अनेक गुणोंके धारी योगीश्वरोंकी मैं स्तुति करता हूं।

योगियोंकी वास्तविक अनगारता—ये पुरुष अनगार हैं। अगारका अर्थ है घर। घरसे वे रहित हैं। घरका इन्होंने परित्याग कर दिया है। घरका त्याग करके घररहित कोई कहलाये यह तो नियम नहीं बनता, किन्तु अन्तरङ्ग घर जिन्होंने त्याग दिया, अर्थात विकल्पोंमें जो घर बना रखा था उस विकल्पका भी जिन्होंने परित्याग कर दिया वे पुरुष कहलाते हैं अनगार। मोक्षका मार्ग सरल भी बहुत है और कठिन भी बहुत है। जिनको ज्ञानयोगका अभ्यास नहीं है वे कहते हैं कि योगी बनना आसान नहीं है। इसमें बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं, लेकिन जिन्हें तत्त्वज्ञान है, जिनको तत्त्वज्ञानकी अधिक रुचि प्रकट हो गयी है उनको तो आनन्द बरसता है, कष्ट कहाँ है वहाँ? जो सच्चे मायनेमें अनगार हो गये हैं ऐसे अनगार योगीश्वरोंकी मैं स्तुति करता हूं।

योगिभक्तिमें भक्तकी विशदता और नम्रता—भक्त कह रहा है, योगी हो कह रहा है योगियोंकी भक्तिमें अथवा जो भी भक्ति करता हो वह कह रहा है योगियोंकी ही भक्तिमें। यह मैं अञ्जुलीको मुकलित करके योगीश्वरोंका स्तवन करता हूं। वस्तुतः इतनी तीव्र भक्ति उस पुरुषके ही बन सकती है जिसने अपना हृदय निर्मल बनाया हो, जो अपने मोक्षकी उन्नति चाहता हो। संसारमें जिसके कोई कामना न रही हो, ऐसे ही पुरुष योगियोंकी वास्तविक भक्ति कर सकते हैं। जिनके धनकी चाह है और उस चाहमें योगियोंकी भक्ति करने जाते हैं तो न तो वहाँ भक्ति बनती है, न मुद्रा बनती है, न शान्ति टपकती है। भक्तिमें अपने आपको स्मरण कर लिया जाता है—वह कहलाती है सभक्ति। तो योगीश्वरोंको अपने आपका समर्पण कर देवे कोई, यह बात धनकी चाह रखने वालोंसे नहीं बन

सकती। पुत्र मित्र आदिक अन्य चार्दोमें नहीं बन सकती है। जिनके संसार, शरीर भोगामें वैराग्य जगा है ऐसे पुरुष ही योगियोंकी विशुद्ध भक्ति कर सकते हैं। तो भक्तिमें अंजुली जोड़कर मस्तकको निकट ले जाकर गद्‌गद हृदयसे गद्‌गद वाणीसे अपने आपको सर्वस्वका समर्पण करते हुए भक्त कह रहा है कि ऐसे गुणधारी अनागार योगियोंका मैं स्तवन करता हूं।

भक्ति सर्ववैभवोंसे आत्मसमर्पण—योगिभक्ति करने वाला यह है कैसा भक्त! जो अपने समस्त वैभवों के द्वारा जिनका अभिनन्दन कर रहा हो, भक्तके पास जो कुछ भी वैभव है उस समस्त वैभवको न्योछावर करके वह वदन कर रहा है। तनका वैभव, समस्त शरीरको अपना कुछ अन्य विषय की दुनियाके लिए न जानकर एक भक्तिमें ही अपने आपके शरीरको न्यछावर कर रहा है, स्मरण कर रहा है, भिड़ करके एक भक्तिके साथ योगिचरणोंमें गिर रहा है। जिनका मन भी न्योछावर है। मन किसी, जगह अन्यत्र नहीं टिक रहा, किसीसे प्रेम नहीं है, किसीका विकल्प नहीं है वे अन्य सब कुछ हेय समझते हैं ऐसा जिनका विश्वास हो गया है, ऐसी श्रद्धापूर्वक ऐसे श्रद्धालु योगी अपने इस मन वैभवके द्वारा वदन करते हैं। तीसरा वैभव है जीवके पास वचन। सो वचनवैभवके द्वारा भी यह वन्दन चल रहा है। जिनके गुणोंके स्तवनके वचन चल रहे हैं ऐसे तन, मन, धन, वचन जिनके पास जो वैभव है, योगियोंके पास तन, मन, वचनका जो भी वैभव है, उन समस्त वैभवोंके द्वारा अभिवन्दन करते हैं। यह मैं भी ऐसे गुणधारी अनगारी योगियों की स्तुति करता हूं।

सम्म चेव य भावे मिच्छाभावे तहेव बोधव्वा।
चइऊण मिच्छभावं सम्मम्मि उवट्ठिदे वदे ॥२॥

मिथ्यान्धकारका रूप—भाव दो प्रकारके होते हैं एक सम्यक्त्व भाव, दूसरा मिथ्यात्वभाव। जीवोंको अपने आनन्दका धाम, अपना वास्तविक शरण अपना सर्वस्व जो एक सहज ज्ञायकस्वरूप है, शुद्ध आनन्दमूर्ति है वह भगवान आत्मा नहीं नजरमें रहता है तो अन्तःप्रभुका उन्हें दर्शन नहीं होता। जो पुरुष अहंकार, ममकार, कर्तृत्व, भोक्तृत्वबुद्धि—इन चार अंधेरोंमें पड़े हुए हैं उन्हें अपने आपके ही निकट विराजमान अथवा स्वयं ही यह अन्तःप्रभु है, इसके दर्शन नहीं हो पाते। जैसे जब कभी घोर अंधियारा हो, बहुत कठिन अंधकारसे पूर्ण रात्रि हो उस रात्रिमें अपने ही हाथ अपने को नहीं दिखते। यदि हाथमें खुजाहट हो गयी तो खुजाने के लिए अंधेकी भाँति हाथको टटोलकर पाते हैं, अपने ही शरीरके अङ्ग अपने

को नहीं दिखते हैं। ऐसा घोर अंधकार। तो अज्ञान अंधकार उससे भी अधिक घोर अंधकार है। यह खुद ही क्या है, सो अपने आपको स्वयं नहीं जान पाता है। विकल्पों में यह कितना दूर हो चुका है? खुद है प्रभु किन्तु खुदकी प्रभुताका पता नहीं है और कहां कहा शरण ढूँढ़ रहा है? स्त्री, पुत्र, मित्र, परिजन ये ही मेरे सर्वस्व हैं जिनके कारण दुःख भोग रहे हैं और सम्पर्कसे अपना जीवन बरबाद कर रहे हैं। जो कहीं भी हितरूप नहीं हैं उनकी ओर अतितीव्र मोह बुद्धि है, आदेय बुद्धि है। अजी उनके लिए ही मेरा सब शरीर है, इन परिजनों के लिए ही मेरे सब तन, मन, धन, वचन आदिक हैं, ऐसी जिनकी बुद्धि है उन्हें अपने आपमें बसे हुए अन्तःप्रभुके दर्शन नहीं होते। ऐसे घोर अंधकारका नाम है मिथ्याभाव।

परिकरसमागमकी व्यर्थता—अच्छा, देखो भैया! आप इन परिजनों का क्या करेंगे? ये कहां तक मदद देंगे? ये क्या अब भी कुछ शान्तिके मददगार हो रहे हैं? इस वैभवका क्या करेंगे? ये कुछ मदद न देंगे, कुछ भी ये शान्तिमें मदद नहीं दे रहे हैं। ये कोई भी वैभव आगे साथमें ले जाये जा सकते हैं क्या? कौन सा कार्य ऐसा है फिर बतावो कि जिससे आप कुछ लाभ पायेंगे? इस मायामयी असार दुनियामें अपना नाम फैलाकर आप क्या करेंगे? जिन लोगों के लिए आप अपने जीवन को बरबाद कर रहे हैं, वे कुछ आपके मददगार होंगे क्या? उनके विकल्प रखकर तो इस समय भी शान्ति नहीं पायी जा रही है। किसका सहारा लेना है? ये जितनी भी परकी ओर दृष्टियां जाती हैं, विकल्प बनते हैं, ये सब घोर अन्धकार हैं। इतना घोर अन्धकार कि यह खुद ही खुदको नहीं जान पा रहा है कि मैं क्या हूं? इससे बढ़कर और दयनीय दशा क्या होगी? लोग तो कुछ अच्छे धन वैभव स्त्री पुत्रादिक पाकर मदमें आकर सही ढगसे चलते भी नहीं हैं। मदसे छाती फुलाकर चलते हैं। अपने आगे किसीको कुछ समझते ही नहीं हैं। पर उन्हें यह पता नहीं कि दौलतके दो लातें हैं। दौलत कहते ही उसे हैं जिसके दो लातें हों। तो जब यह दौलत आती है तो मानो छाती में लात मारती है, जिससे यह मानव छाती फुलाकर चलने लगता है। और जब यह दौलत जाती है तो मानो पीठमें लात मारकर जाती है जिससे सर झुक जाता है। शरमके मारे वह मानव नीची निगाह किए रहता है। फिर इस जीवनमें उसे इस दुनियामें अच्छा नहीं लगता। उसके पीछे इतनी दौड़धूप करने से क्या लाभ? जो खुद मलिन हैं, कर्मप्रेरित हैं ऐसे परिजन, मित्रजनों के लिए

इतनी दौड़धूपसे क्या लाभ ?

मिथ्याभावके चार रूप—अहो खुदका आत्मा नजर न आनेसे उस अन्तःस्वरूपकी दृष्टि बिना यह जीव संकटोंसे छूट नहीं सकता है। यह तनमें अहं बुद्धि रखता है। जो अहं नहीं है, जो मैं नहीं हैं उसमें बुद्धि रखना है कि यह मैं हूं—इसका नाम है अहंकार। ये सब अहंकार हैं। व ह्यवस्तुओंमें ममकार बुद्धि जगे, इसका नाम ममकार है। बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमें करनेकी बुद्धि आये, मैं इसे करता हू—यह है कर्तृत्व बुद्धि। और इन बाह्यविषयोंमें, इन बाह्यपदार्थोंमें भोगनेकी बुद्धि जगे इसका नाम है भोक्तृत्व। इन चार प्रकारके खोटे आशयोंसे रहने वाले प्राणी घोर अंधकारमें दुःखी हो रहे हैं। यही है मिथ्याभाव। और जिनके यह विपरीत आशय नहीं रहता है वह है सम्यक्त्वभाव।

सम्यक्भाव—ये परपदार्थ, ये रागादिक परतत्त्व, यह शरीर, ये मेरे कुछ नहीं हैं। मैं रागादिकरूप नहीं हूं, कषायरूप नहीं हू, इच्छारूप नहीं हू, मैं स्वतंत्र हू, जो मेरा स्वरूप है वह मेरे आधीन है। मेरी परिणति, मेरा चतुष्टय, मेरा स्वरूप, मेरा सर्वस्व सब मेरे ही आधीन है। मैं निश्चल हू। जो मेरा स्वरूप है चैतन्यमात्र, उससे मैं कभी चलायमान नहीं होता हू। जिस स्वरूपसे मैं रचा गया हू उस स्वरूप रूप ही हू, जिसमें रंचमात्र भी कामना नहीं है, विकार नहीं है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो यह केवल ज्ञानप्रकाशमात्र है। यह निष्काम है, इसमें किसी प्रकार की कामना नहीं है। ऐसा केवल जाननदेखनहार मैं भगवान आत्मा हू। इस प्रकारका निर्णय जहाँ रहता है, ऐसे ही निजतत्त्वका दर्शन होता है उसे कहते हैं सम्यक्त्वभाव। तो ये योगीश्वर मिथ्याभावको त्यागकर सम्यक्त्वभावमें आ चुके हैं, ऐसे सम्यक्त्वरूप सत्यमूर्ति योगीश्वरकी मैं वन्दना करता हू।

दोदोसविप्पमुक्के तिदंडविरदे तिसल्लपरिसुद्धे।
तिण्णियगारवरहिये तिचरणसुद्धे णमसामि ॥३॥

योगियोंकी द्विदोषविमुक्तता—जो दो दोषों रहित हैं ऐसे योगीश्वरों को मन, वचन, काय समाल करके नमस्कार करता हू। दोष दो हैं—राग और द्वेष। रागमें यह जीव अपने स्वरूपसे हटकर बाहरीपदार्थोंके विकल्पों में लग जाता है। यह आत्माके लिए दोषकी बात है। यह अपराध है। अपराध कहते हैं उसे जहाँ राध अवगत हो गया हो। जहाँ राध अर्थात् शुद्ध जानना समाप्त हो गया है उसे कहते हैं अपराध। तो जहाँ जीव राग करता है वहाँ आत्मसिद्धि नहीं है, इस कारण राग दोष कहलाता है। इसी प्रकार द्वेष भी दोष कहलाता है। द्वेष होता है तब, जब किसी

बाह्य पदार्थको अपना अनिष्ट समझ लिया जाय। तब उसके विनाशके लिए, उसके दूर करनेके लिए मनमें चिन्तन चलता है और जब वह दूर नहीं होता तो उसके प्रति दुर्भावना चलती है। तो इस द्वेषभावमें भी यह जीव अपनी सिद्धिसे अलग हो गया। इस कारण इसका भी नाम दोष है। ऐसे जो दो दोषोंसे रहित हैं उन योगीश्वरोंकी यहाँ भक्ति की जा रही है।

योगियोंकी त्रिदण्डवर्जितता—ये योगीश्वर तीन दण्डोंसे रहित हैं। मन, वचन, काय, इन तीन योगोंकी प्रवृत्तिका नाम दण्ड है। आत्माको दण्ड मिल रहा है इन मन, वचन, काय की चेष्टाओंसे। मन प्रवृत्ति करता है, विषय कषायोंको धारण कर लेता है। न जाने किन-किन वस्तुओंमें अपना मन लगाता है, विकल्प करता है, हैरानी भोगता है। तो मनका यह व्यापार आत्माके लिए दण्ड है, आत्मा पर आपत्ति है। इसी प्रकार वचन योग है। वचनोंकी अधिक प्रवृत्ति रखना, अधिक बोलना—ये सब किस लिए हो रहे हैं? जो अधिक बोलते हैं, बिना प्रयोजन बोलते हैं, उसका सीधा अर्थ यही है कि वे अपने में गम्भीर नहीं हैं, अपने आपकी विशुद्ध दृष्टि रखते नहीं हैं तब अधिक बोलते हैं। तो अधिक बोलना भी आत्मा के लिए दण्ड है। तीसरा दण्ड है कायदण्ड। शरीरकी चेष्टा करना, शरीर क्या मैं हू? शरीर तो भिन्न पदार्थ है, अशुचि पदार्थ है। यह शरीर हाड़ मांसका पुतला है। लेकिन इस कायकी प्रवृत्ति सुहाना और राग कर करके कायकी नाना चेष्टायें करना, यह तो आत्मा पर आपत्ति है। इन दण्डोंका त्याग करना होगा तब आत्मा सुरक्षित रह सकता है। तो इन योगीश्वरों ने मन, वचन, काय इन तीन दण्डोंका परिहार कर दिया, उससे ये विरक्त हैं। इन योगीश्वरोंको सभक्ति प्रणाम हो।

योगियोंकी मायाशल्यरहितता—ये योगीश्वर तीन शल्योंसे रहित हैं। शल्य उसे कहते हैं जो मनमें चुभे। जैसे काँटा पैरमें लगे तो वह शल्यका काम करता है। तो जो काँटेकी भाँति चुभता रहे उसे शल्य कहते हैं। एक दुःख ऐसा होता है कि एक बार हो गया चलो निपट गए, मगर शल्य वाला दुःख तो निरन्तर रह रह कर आता रहता है। ऐसे शल्य हैं तीन माया, मिथ्या और निदान। छल कपट करना एक बहुत बड़ी शल्य है। छलीपुरुष, कपट रखने वाला पुरुष चैनमें नहीं रहता। वह किसी प्रकार की कल्पनायें बनाता है, मैं अमुकको यों कहूगा, और उसके खिलाफ अमुक को यों कहूगा। एक दूसरेके खिलाफ परस्परमें कुछसे कुछ कह देना, ऐसी प्रवृत्ति रखने वाले लोग बड़ी हैरानीमें रहते हैं। उन्होंने अपने मनको हैरानी

में डाल दिया है। निरन्तर चिंतित रहते हैं और ऐसी दुर्भावना बनाये रहते हैं कि ये दोनों कहीं आपसमें मिल न जायें, नहीं तो हमारी पोलपट्टी खुलेगी, जो जो हमने इनकी चुगली की है ये सब जो गल्तियां है वे सब खुल जायेंगी। मायाचारी पुरुष निरन्तर शल्यमें बने रहते हैं। लोग व्यर्थ की शल्य बना लेते हैं। मायाचारसे मिलता क्या है? कदाचित मायाचार करने से कुछ द्रव्यका लाभ हो गया तो वह लाभ क्या लाभ है? उन्हें यह विश्वास नहीं कि जो लाभ होना है वह तो होता है मगर खोटे भाव करके हमने तो अपनी दुर्गति करली, पापबंध कर लिया और लाभमें कमी ही कर लिया। शुद्ध भावोंसे रहते तो जितना लाभ होने को था वह पूरा लाभ होता, मायाचारसे सिद्धि कुछ नहीं है। लेकिन जिनका चित्त मलिन है वे मायाचार करके अपनी स्वार्थसिद्धि समझते हैं। योगीश्वरोंमें मायाशल्य रचमात्र नहीं है। किस लिये माया करना? आत्मसाधनाके लिए समस्त परिग्रहोंका त्याग करके एक आत्माका सहारा लिया है। आत्माकी उपासना करके अपने आपमें प्रसन्न रहनेका, निर्मल होनेका संकल्प किया है। वहा मायाचारका क्या काम? कोई बाह्य परिग्रह तो रखा नहीं है। फिर किसी भी जीवके प्रति, किसी भी साथीके प्रति छल कपट करनेका वहा अवसर कहा? यदि कोई साधु छल कपट कर रहा है तो वह बाह्य-वस्तुपर तो कर नहीं सकता, क्योंकि वस्तुवोंको अगर निकट रखेगे तो लोग प्रत्यक्ष जान जायेंगे। बाह्यपरिग्रहोंपर तो मायाचार करनेका वहाँ अवसर नहीं है। हाँ अपनी नामवरी फैलानेकी इच्छा हो जाय, उसके लिए मायाचार किया जा सकता है। सो जिस पुरुषके कोई कलुषित इच्छा हो जाय वह साधु कैसा? वास्तविक मायनेमें जो साधु है उस साधु पुरुषको मायाचारका अवसर नहीं मिलता। योगीश्वर मायाशल्यसे रहित हैं।

योगियोंकी मिथ्याशल्यरहितता—दूसरी शल्य है मिथ्याभाव। किसी ग्रन्थके किसी वाक्यका किसी परिस्थितिसे कुछ थोडासा विपरीत अर्थ कर जाना, ऐसी कुछ सीमाके अन्दर जो जो कुछ मिथ्याभाव, मिथ्यावचन व्यवहार कर लिए जाते हैं वे सब इसके लिए शल्य बन जाते हैं। जो योगी निस्पृह हैं, किसी प्रकारका चित्तमें स्वार्थ नहीं रखते हैं, जिन्होंने तत्त्वज्ञान विशदरूपसे प्राप्त कर लिया है ऐसे योगियोंको कोई मिथ्यावचन करने का प्रयोजन ही नहीं रहता। शास्त्रोंका कुछसे कुछ अर्थ लगाना, कुछ मिथ्या रूपमे ढालना, यह तो स्वार्थी और तृष्णावी लोभी पुरुषोंसे ही बन सकता है। योगी तो निर्लोभताकी साक्षात् मूर्ति हैं, उनमे मिथ्याभाव कहाँसे आ सकता है। और? जो मोटे मिथ्याभाव हैं ये तो उनमें सम्भव ही नहीं हैं।

वे निज ज्ञायकस्वरूपको ही 'यह मैं हूं' ऐसा अनुभव किया करते हैं। उनके मिथ्यादर्शन कहाँ ? तो योगीश्वर मिथ्याशल्यसे भी रहित होते हैं।

योगियोंकी निदानशल्यरहितता—तीसरी शल्य है निदान। बाह्यपदार्थों की आशा रखना, परभावके लिए आशा करे उसे भी निदान कहते हैं, और इस जीवनके लिए भी आशा रखे उसे भी निदान कहते हैं। मुझे ऐसे आरामोंकी प्राप्ति हो, ऐसा सम्मान प्राप्त हो, परभवमें मैं देव इन्द्रादिक पद पाऊँ, यों अनेक प्रकारकी आशायें करनेको निदान कहते हैं। योगीश्वरोंके न तो परभव सम्बधी निदान है और न इहलोक सम्बधी निदान है, उन्होंने तो समस्त आशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है, वे लोकमें कुछ भी नहीं चाहते और चाहते हैं तो यही चाहते हैं कि मेरे चाह बिल्कुल ही पैदा न हो। और मैं अपने निष्काम ज्ञानस्वरूपमें निरन्तर लीन रहा करूँ। ऐसे पुरुषोंमें निदानका दोष कहाँ सम्भव है ? तो योगीश्वर तीन शल्योंसे रहित हैं।

योगियोंकी रसगारवरहितता—ये योगीश्वर तीन गारवोंसे भी रहित हैं। गारव कहते हैं अभिमानको। गारव तीन तरहके हैं— रसगारव, ऋद्धिगारव, सातगारव। किसी योगीकी ख्याति है, लोग बहुत चाहते हैं इसी कारण विशेष आदर करते हैं आहार भी बहुत सरस बनाते हैं और वे योगी ऐसे सरस भोजनको करके चित्तमें ऐसा अहंकार रखें कि मेरी ऐसी अच्छी पोजीशन है। देख लो कितनी भक्तिसे कितने सरस व्यञ्जन बनाकर आहार देते हैं। साथ ही अन्य योगियोंपर भी थोड़ी दृष्टि करते हैं, उनकी अपेक्षा हमारी बड़ी महत्ता है, इस प्रकारका कोई सूक्ष्मभाव आये तो उसे रसगारव कहते हैं। यह तो बहुत खोटा भाव है, पर इस सम्बधमें कोई सूक्ष्मभाव भी बने तो योगीका योग नहीं रहता है। ये योगी रसगारवदोषसे रहित हैं।

योगियोंकी ऋद्धिगारवरहितता—दूसरा गारव है ऋद्धिगारव। तपश्चरणके प्रतापसे किसी प्रकारकी ऋद्धि प्रकट हो जाय। ऋद्धि अनेक प्रकारकी हैं—आकाशमें विहार करना, अपने शरीरकी कुछ विक्रिया बना लेना, छोटा बड़ा अपना रूप कर लेना, बहुत बहुत प्रकारसे ज्ञान विकसित होना आदिक अनेक प्रकारकी ऋद्धियां होती हैं। ये पुरुष ऋद्धिगारवसे रहित हैं, इन्हें ऋद्धियोंपर गर्व नहीं रहता, बड़े कठोर तपश्चरणके प्रतापसे ऐसी भी ऋद्धियाँ होती हैं जो लोकमें चमत्कार फैला देती हैं। जैसे—शरीरका मल औषधि बन जाय, शरीरसे स्पर्श करती हुई वायु जिस रोगीको छू ले वह रोगी निरोग हो जाय। जिस रसोईघरमें आहार करलें उस

रसोईमें कितना ही जनसमुदाय भोजन कर ले तो आहार समाप्त न हो, ऐसी अनेक ऋद्धियां प्रकट हो जाती हैं, लेकिन योगियोंको उन ऋद्धियोंपर गर्व नहीं रहता। वे ऋद्धिगारवदोषसे रहित होते हैं।

योगियोंकी सातगारवरहितता—तीसरा गारव है सातगारव। भक्तजनों से बड़ी साता मिलती हो, बड़े अच्छे ढंग से आसन मिलता है, बड़े आदर से जिन्हें रखा जाता है, भक्त लोगोंकी आँखोंपर जो बिछे रहते हैं, ऐसी बड़ी सातामें रहने वाले मुनि जिनकी अनेक शिष्य लोग बड़ी सेवा करते हैं। भक्तजनोंकी सेवा भी जिन्हें बहुत प्रकार प्राप्त होती है, ऐसी साता प्राप्त करके, सेवा प्राप्त करके इन ऋषीश्वरोंको गर्व नहीं होता है कि देखो मेरी कितनी महत्ता है। लोग मुझे कितना महान समझते हैं, अपनी महिमापर गर्व नहीं होता है, वे सातगारवके दोषसे रहित हैं। ऐसे इन तीन गारवोंसे रहित योगीश्वरोंको मन, वचन, कायकी शुद्धिसे नमस्कार करता हूं।

योगियोंको मनःशुद्धिपूर्वक प्रणमन—मनकी शुद्धि तो यह है कि किसी प्रकारकी इच्छा करके उन योगियोंकी सेवा वन्दना न हो। केवल इस चाह से योगियोंकी निकटता बतायी जाय कि मैं भी मन, वचन, कायकी प्रवृत्तियोंसे, कषायोंकी प्रवृत्तियोंसे दूर होकर सहज स्वाधीन आत्मीय आनन्द-रसका पान करूँ। जैसे कि ये योगीश्वर निरन्तर आत्मरससे तृप्त रहा करते हैं, ऐसी भावना होती है तो बस मनको शुद्धमन कहा जाता है। लोकमें बड़ाई पानेके लिए उन साधुवोंमें अपनी महिमा जताने के लिए अथवा अपनी इज्जत पानेके लिए, लोग बड़ाई करें कि कैसे ये गुरुभक्त हैं, ऐसा भाव यदि मनमें है और सेवा भी कर रहे तो वह सेवा उनकी व्यर्थ जाती है, अर्थात् स्वयं ने तो पुण्यलाभ नहीं लिया उनका मन अशुद्ध कहलाता है।

योगियोंको वचनशुद्धिपूर्वक प्रणमन—वचनशुद्धि क्या ? वास्तवमें तो जिनका मन पवित्र होता है उनसे ही शुद्ध वचन बोले जा सकते हैं। एक कविने कहा— "मन नहीपके आचरन दृग दिवान कहि देत" मनरूपी राजाके जो जो आचरण हैं, मनमें मलिनता, शुद्धि आदिक जो जो भी भाव आते हैं उन सब भावोंको ये नेत्ररूपी मन्त्री कह देते हैं। जैसे राजा किस प्रकृतिका है ? यह बात मन्त्रियोंके चाल-चलनसे विदित हो जाती है। इसी प्रकार ये नेत्र, ये मनके आचरण बता देते हैं और उन नेत्रोंसे अधिक बखान याने ये वचन हैं। ये वचन पुरुषके हृदयकी बात बता देते हैं। उसमें कितनी कपाय है, कितनी उदारता है, कितनी मूढ़ता है, ये बातें

ये वचन कह देते हैं। तो जिनका मन पवित्र है उनके वचन भी पवित्र निकलते हैं। ऐसे वचन पवित्र निकलते कि जिन वचनोंको सुनकर सुनने वाले प्रबोधको प्राप्त हों। और अपने क्लेशोंको भूलकर शान्तिमें प्रवृत्ति करें। ऐसे वचनोंको शुद्ध वचन कहते हैं। बहुत ही शुद्धभाव भरे वचनों से योगीश्वरोंको नमस्कार करता हूं।

योगियोंको कायशुद्धिपूर्वक प्रणमन—तीसरी है कायशुद्धि। शरीरको बड़े विनयसे प्रवर्तना और बड़ी सावधानीसे इस शरीरचेष्टासे गुरुजनों की सेवा करना यह कायशुद्धि कहलाता है। यथातथा पापोंमें लगने वालों की कायशुद्धि नहीं कहलाती है। कायकी शुद्धि निष्पापतासे कही जाती है। निर्विचिकित्सा अंगमें साधुवोंके शरीरको रत्नत्रयसे पवित्र कहा गया है। श्रावक और भक्तजन गुनिजन, मुनियोंकी सेवा करते हुए ग्लानिका भाव नहीं रखना है, यह उनके अनुरागकी सूचना है। जैसे मां अपने बच्चेकी सेवा हर परिस्थितिमें करती है। दस्त हो रहे हों, नाक बह रही हो, कैसे भी रोगकी स्थिति हो पर बच्चेका प्रेम मा के हृदयसे इतना अधिक है कि बच्चेसे घृणा नहीं करती। इसी प्रकार धर्मी पुरुषोंका साधर्मी पुरुषोंसे इतना अनुराग होता है, साधर्मीके दर्शन ज्ञान, चारित्र गुणको निरखकर उनकी उदारता और विशुद्धि को निरखकर बड़े प्रसन्न होते हैं और बिना संकोच व बिना घृणाके उनकी सेवा करते हैं तो काय की शुद्धि निष्पाप होनेसे होती है। कहते भी हैं—ब्रह्मचारी सदा शुचि। जो पुरुष ब्रह्मचारी है वह तो सदा पवित्र है। कायको यदि एक स्नानसे पवित्र कर लिया तो उससे इस आत्मामें कौनसा लाभ हो गया? यद्यपि शरीरको पवित्र करके, प्रभुभजन प्रभुपूजन करनेमें एक अतिशय आता है, यही प्रभुविनय है और अपनेको कुछ निर्भार और कुछ विशुद्ध अविकारी बनाया है, उससे लाभ होता है लेकिन भीतरी बातको कोई सोचे नहीं और केवल शरीरकी शुद्धि करके मान ले कि मैं पवित्र हो गया हूं, ठीक हूं तो ऐसा पुरुष शान्ति तो क्या पायगा बल्कि इसी शुद्धि छुवाछूतके परिणाममें जरा जरासे प्रसंगमें क्रोध करने लगता है। तो कायकी मुख्य शुद्धि तो निष्पाप रहनेसे है और व्यवहारसे कायकी शुद्धि है, जैसी व्यावहारिक शुद्धि है उस प्रकार। तो भक्त कहता है कि मैं मन, वचन, काय को शुद्ध करके ऐसे योगीश्वर को नमस्कार करता हूं।

चउविहकसायदहणे चउगइससारगमणभयभीए।
पञ्चासवपडिविरदे पंचिंदियणिज्जिदे वंदे ॥४॥

योगमें चतुर्विधकषायदहन—यह पूर्वाचार्योंसे चली आयी हुई योगभक्ति

है। बहुत पुराने पूजन, पुराने स्तवन पहिले ऐसे ही थे और इसीके आधार पर भक्तजन अपनी आत्मशुद्धि करते थे। उस योगभक्तिमें यहाँ कह रहे हैं कि ये योगीपुरुष चार प्रकारकी कषायोंको दहन करते हैं, नष्ट करते हैं। कषायें चार हैं— क्रोध, मान, माया, लोभ। जितने भी विकल्प हैं, जितनी भी प्रवृत्तियां हैं वे सब इन चारोंमें शामिल हैं। कोई क्रोधरूप वृत्ति है, कोई मानरूप, कोई मायारूप और कोई लोभरूप। सारी बातें देखलो। जहां यह कहते हैं कि आत्मके अहित विषय और कषाय हैं तो ये विषय कषायसे अलग कोई चीज नहीं हैं। दो का नाम लेना तो जरूरी है कि विषय कषायका त्याग करना चाहिये। किन्तु विषय बिलकुल अलग चीज होती हो कषायसे, ऐसा नहीं है। लोभ नामक जो चौथी कषाय है उस ही कषायको विषय कहते हैं। विषयमें लोभ ही तो होता है। पञ्चेन्द्रियके विषयोंके जो उपभोग हो रहे हैं वे लोभ कषायमें शामिल हैं। लेकिन यह परिणाम इतना खतरनाक है चूँकि अनुराग भरा है ना तो यह एक विषफलके समान घातक है। जैसे चखते समय विषफल मीठा लगता है लेकिन उसका परिणाम प्राणघातक है, इसी प्रकार इन विषयोंका उपभोग है। ये विषय उपभोगमें तो बड़े मधुर लगते हैं लेकिन इनका परिणाम खोटा है। तो ये विषय लोभमें ही शामिल हैं। तो जिन साधुजनोंने इन चार प्रकारकी कषायोंपर विजय किया है ऐसे योगियोंकी मैं वंदना करता हूं।

योगियोंकी चतुर्गतिगमनागमनभयभीतता—इन योगियोंने चारगतिके ससारके गमनागमनसे भय माना है। ये अज्ञानी जीव बड़े सुभट हैं क्यों कि ये ससारके गमनागमनसे भय नहीं खाते, पर ये योगीजन इस ससारके परिभ्रमणसे डरते हैं। उनके चित्तमें यह भावना है कि यह संसारका आवागमन, जन्म मरण धारण करते रहना यह सारहीन है और आत्मा की बरबादी के ही कारण हैं। तो यों चतुर्गति परिभ्रमण रचमात्र भी इन योगियों को रुचता नहीं है। वे अपने स्वभावको निरखते हैं और स्वभावके दर्शन अनुभवके समयमें वहा एक परमात्मस्वरूप ही अनुभूत होता है। वहा भव नहीं, देह नहीं, जन्ममरण नहीं—ऐसा उपयोग यदि निरन्तर बना रहे तो सर्वकर्मोंका क्षय करनेका कारण बनता है। योगीश्वर चारगतिके संसार गमनागमनसे भयभीत हैं।

योगियोंकी पञ्चास्रवविरतता—ये योगी ५ प्रकारके आस्रवोंसे विरक्त हैं— हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। इन ५ पापोंसे अत्यन्त दूर हैं। इनकी मुद्रा भी ऐसी है कि ५ पापोंका परिहार इनके सहज चलता रहता

है। हिंसाका कोई साधन नहीं, झूठ बोलनेका उनके पास कोई कारण नहीं कोई परिग्रह हो, धन जायदाद हो, उसकी व्यवस्था हो, तो उसमें झूठ भी बोला जाय। चोरी करनेका कोई साधन नहीं। कुछ चीज चुरा भी लें तो कहा छिपाकर रखें। पिछी, कमण्डल ये ही मात्र जिनके उपकरण है और जिनका शरीर मल पटलोंसे लिप्त है, जिनके केशलोच करने से जिनकी मुद्रा अलौकिक बन गयी है ऐसे शरीरको निरखकर वैसे भी कोई अपने चित्तमें बुरी वासना नहीं रख सकता है, परिग्रहके वे त्यागी हैं ही और ज्ञानयोगसे वैराग्य उनका इतना बढ़ा चढ़ा है कि वे इन ५ पापोंसे अत्यन्त विरक्त रहा करते हैं। ये योगीश्वर निष्पाप हैं और इसी कारण बड़े बड़े महापुरुषोंके द्वारा, देवेन्द्रोंके द्वारा वदनीय होते हैं।

योगियोंका पञ्चेन्द्रियविजय—इन योगियोंने पञ्चेन्द्रियोंको जीत लिया है। इन्द्रियके विषय उन्हें अब वशीभूत नहीं कर सकते हैं। अपने ज्ञान उपासनाके प्रतापसे ऐसे अद्भुत आनन्दरसका पान किया है कि अब उन्हें इन्द्रियविषय रस भी नहीं सुहाते हैं। ये विषय एक मनकी कल्पनासे ही सुहावने और असुहावने लग जाते हैं। उनका असली स्वरूप निरखा जाय तो सुहानेकी बात नहीं रहती है। यह शरीर ऊपरसे निरखने पर थोड़ा पवित्र सा नजर आता है, कुछ साफ सुथरा सा लगता है लेकिन जब उसके स्वरूपपर विचार करते हैं तो सारा शरीर महा अपवित्र नजर आता है। तो ऐसे इस अपवित्र शरीरसे वे योगीजन राग क्या करें, जिन्होंने अपने पवित्र ज्ञानस्वरूप आत्माका दर्शन किया है। यों ही खट्टे मीठे रसोंका वे क्या आनन्द मानें, सुगध, दुर्गन्धका भी वे क्या निर्णय रखें, रगरूपका भी वे क्या अवलोकन करें, राग रागनी सुननेका भाव अब वे कैसे बनायें? वे योगीश्वर पञ्चेन्द्रियविजयी होते हैं। ऐसे इन समस्त गुणधारी योगीश्वरोंका मैं मन, वचन, काय सभाल करके वदन करता हू।

> छज्जीवदयावण्णे छडणायदणविवज्जिदे समिदभावे।
> सत्तभयविप्पमुक्के सत्ताणभयंकरे वदे ॥५॥

योगियोंकी षट्कायजीवदयाप्रधानता—योगी, साधु ६ प्रकारके जीवों की दया करनेमें तत्पर रहते हैं। जीव ६ कायमें विभक्त हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस। इनमें पहिले ५ तो एकेन्द्रिय हैं और त्रस जीवमें दो इन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ये चार तरह के जीव हैं। ये साधु महाराज षटकायके जीवोंकी दया पालते हैं। योगियोंने षट्कायकी हिंसाका पूर्ण रूपसे त्याग किया है, इससे वे अब

सर्व प्रकारके आडम्बरोंको भी छोड़ देते हैं। वे न घर बनाते हैं, न पृथ्वी खोदते हैं, न जल भरते हैं, न जल गरम करते हैं, न आग जलाते हैं, न पखा चलाते हैं, न साग भाजी आदिक विदारण करते हैं। त्रस जीवोंकी हिंसाका तो गृहस्थके भी त्याग रहता है, पर गृहस्थके केवल सकल्पी हिंसा का त्याग रहता है याने गृहस्थ त्रस जीवोंकी सकल्पसे हिंसा नहीं करता, लेकिन रोजगार करने में सावधानी रखते हुए भी जो हिंसा होती है उसको गृहस्थ कहांसे टाले ? या रसोई, चक्की, चूल्हे आदिकमें जो साव-धानी रखने पर भी हिंसा होती है उसका त्यागी गृहस्थ नहीं है या कोई बैरी या पशु आदिक जानवर जान लेने आया हो तो उस समय यह गृहस्थ उससे मुकाबला भी करता है और उसमें दूसरेकी हिंसा भी हो जाती है। इस विरोधी हिंसाका भी त्यागी गृहस्थ नहीं हो सकता, किन्तु साधु महाराज सब प्रकार की हिंसासे विरक्त हैं। न वे रोजगार करते हैं, न आरम्भ चक्की, चूल्हा आदिक करते हैं और कोई हिंसक जीव या बैरी प्राण-लेने के लिए आये तो उसका मुकाबला न करके समस्त जीवोंपर दया धारण करते हैं। इन योगियोंकी स्वात्मदृष्टि इतनी गहरी है कि अपने ही जीवके समान समस्त जीवोंको मानते हैं और दुःखके सम्बन्धमें भी मानते हैं कि जिस प्रकार थोड़ासा भी कांटा चुभने पर पीड़ा हमें होती है इसी प्रकार सब जीवोंमें होती है और स्वरूपदृष्टिसे भी समान मानते हैं। जैसा शुद्ध चैतन्यस्वरूप मेरा है ऐसा ही शुद्ध चैतन्यस्वरूप इन समस्त जीवोंका है। तो दोनों ही दृष्टियोंसे वे जीवोंकी दया पालते हैं। चूँकि जिस प्रकार हमें दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको दुःख होता है। तो दुःख न देना चाहिये। यह तो एक साधारण दृष्टि है। इसमें सूक्ष्म दृष्टि यह भी है कि मेरे ही समान ये सब चैतन्यस्वरूप भगवान हैं। ये जीव अपनी छोटी-छोटी दशाओंसे निकलकर यहां कुछ अच्छी अवस्थामें आये हैं। यदि मेरे कारण इन्हें पीड़ा होगी, सक्लेश परिणाम होगा तो यह जीव संक्लेश मरण करेगा, इससे यह नीचीगतिमें जन्म लेगा और विकाससे अधिक दूर हो जावेगा, यह भी उनकी आन्तरिक करुणा समझें तो ऐसी दोनों दृष्टियोंसे योगीश्वर समस्त जीवों पर दयाभाव धारण करते हैं।

योगियोंकी षडनायतनविवर्जितता—ये योगी ६ अनायतनसे दूर रहते हैं। आयतन कहते हैं स्थानको। ६ धर्मके स्थान हैं। जिनमें धर्म पाया जाय उन्हें आयतन कहते हैं। देव, शास्त्र, गुरु ये धर्मके आयतन हैं और इनके मानने वाले भक्त ये धर्मके आयतन हैं क्योंकि देव स्वयं धर्मस्वरूप हैं। आत्माका धर्म जो चैतन्य है, ज्ञानदर्शन है वह पूर्ण प्रकट हो गया है।

देव धर्ममूर्ति हैं। शास्त्रोंमें भी इस ही धर्मका वर्णन है। तो शास्त्र भी धर्मके स्थान हैं। गुरु महाराज धर्मका प्रयोग कर रहे हैं। वे धर्ममें बढ़ रहे हैं और सफल हो रहे हैं। वे भी धर्मके स्थान हैं, और इसके मानने वाले जो भक्तजन हैं वे भी धर्मके स्थान हैं। इसके विपरीत कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु ये धर्मके आयतन नहीं हैं, ये अधर्मके साधन हैं जिनमें रागद्वेष भरा है, अज्ञान भरा है फिर भी अपनेको देवरूपमें प्रसिद्ध करवाते हैं या उनमें देवरूपमें कल्पनाकी जाय तो उस ही का नाम कुदेव है। जिन शास्त्रोंमें विषयकषायकी बातें भरी हैं, भगवानका चरित्र भी ग्रन्थोंमें लिखते हैं तो राग भरे चरित्र लिखते हैं। भगवानने इतनी स्त्रियोंमें रमण किया। उनके साथ इतनी सखिया रहती थीं। आदिक विषयकषायोंसे भरा हुआ वर्णन होता है तो वे शास्त्र कुशास्त्र हैं। जिनमें रागकी प्रेरणा मिले, वीतराग आत्मस्वभावकी बात न की जाय तो वे सब कुशास्त्र हैं, और इसी तरहके यदि देवशास्त्रका आधार मानकर जो सन्यास धारण करते हैं वे कुगुरु हैं। गुरु तो नहीं हैं, आरम्भ परिग्रह उनके लगा हैं, पर अपने को लोकमें गुरुपनेकी बात कहलवा रहे हैं तो वे कुगुरु हैं। जो आत्मस्वभावका परिचय नहीं रखते, नाना प्रकारके विडम्बित तपश्चरण करते, लोगोंमें अपनी महत्ता बतानेके लिए भस्म रमाना, शस्त्र रखना आदिक अनेक प्रकारके कुभेष धारण करते हैं वे सब कुगुरु हैं, और ऐसे कुदेवभक्त, कुशास्त्रभक्त और कुगुरुभक्त भी अनायतन हैं। इन ६ प्रकारके अनायतनोंसे ये योगिराज दूर रहा करते हैं।

संयत योगियोकी इहलोकभयरहितता—इन सब योगियोंके भाव संयत हैं, वे अपने मनका नियन्त्रण रखते हैं, उनके विषयकषायोंमें प्रवृत्ति नहीं जाती है। उन्हें ऐसे अपने भीतर बसे हुए परमात्मतत्त्वका दर्शन होता है कि मन वहीं बँध गया है। अब मन उनका किसी भी बाह्यविषयमें रमण नहीं करता, ऐसा जिनका भाव संयत हो गया है वे योगी सच्चे योगी हैं। योगियोंके ७ प्रकारका भय नहीं रहता। जब अपने स्वरूपकी सम्भाल नहीं है तब शकायें हुआ करती हैं। पहिला भय है कि इस लोकमें मेरा कैसे गुजारा चलेगा, आगे भी यह धन रहेगा या न रहेगा, फिर मेरी जिन्दगी किस तरह होगी? इस लोक सम्बंधी नाना शकायें करके भय बनाना यह इहलोकभय है। जिस ज्ञानी पुरुष ने अपने आत्मा को समस्त जगत से निराला तका है और यह निरखा है कि यह मैं अकेला अनादिसे था, अनन्तकाल तक रहूगा, इस मेरेका कोई दूसरा साथी नहीं है, मैं हू ही इतना। जिसने अपना स्वरूप अन्दरमें लखा है उसको ये भय कहाँ सताते? निन्दा

करते हैं करें। लोकमें मेरा नाम नहीं है न रहे, जो भी समागम मिले हैं वे सब वियुक्त होते हैं हो जायें, कुछ भी नहीं रहता है न रहे, मैं अकेला ही सर्वत्र रहूगा। तो फिर मैं इस लोकका क्या भय करूँ कि क्या होगा, कैसे होगा ? जो पदार्थ सत् है उसका किसी न किसी ढगमें गुजारा होता ही है। यहीं मनुष्योंमे जो अति हीन हैं जो भीख मांगने वाले लोग हैं उनका भी तो गुजारा चल ही रहा है। तो जो भी है सबका अपनी सत्ताके कारण गुजारा है। गुजारेकी चिन्ता सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको नहीं होती, योगियोंको तो होगी ही क्या ? जो योगी वनमें रहते हैं, आहारचर्याको किसी दिन समयपर आते हैं, अतराय हो जाता है, आहार नहीं होता है, अनेक तरह की बातें उत्पन्न होती हैं लेकिन उन्हें रच भी भय नहीं है। आहार मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक। हर स्थितियोंमें वे प्रसन्न रहते हैं। वे अपने आपके अन्तःस्वरूपको निरखते हैं। तो योगियोंको इहलोक-भय नहीं रहता है।

योगियोंकी परलोकभयविवर्जितता—दूसरा है परलोकभय। मैं मार कर न जाने किस गतिमें जाऊँगा, न जाने मेरा क्या हाल होगा ? इस प्रकारकी चिन्ता करना लोकभय है। यद्यपि ऐसा भय करना थोड़ा यों ठीक समझा जा सकता है कि परलोकका भय बना रहेगा तो खोटी प्रवृत्तियोंसे बचेगा, न्यायनीतिसे तो रहेगा, लेकिन परलोक का भय यदि अज्ञानतामें रहता है तब तो बड़ी विह्वलता रहती है, वह सच्चे मायनेमें धर्म नहीं धारण कर सकेगा। परलोक क्या है ? मेरा जो यह चैतन्य है यह तो आगे भी रहेगा। तो परलोक क्या रहा ? यही मैं परलोक कहलाता हू, यही मैं इहलोक कहलाता हू और इस दृष्टिसे देखो तो आत्माका जो सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप है वही तो आत्माकी उत्कृष्ट दुनिया है। मेरी दुनिया क्या ? मेरा जो परिणाम हो सो मेरी दुनिया है। जिसको अपनी दुनिया में ही विषाद मचा हुआ है उसे वाहर भी विषादका वातावरण दिखता है, और जो अपनी दुनियामें खुशी बसाये हुए है उसको वाहरमे भी खुशीका वातावरण नजर आता है। तो अपनी दुनिया बाहर कहाँ ? खुदका आत्मा यह ही खुदकी दुनिया है। हम सभी प्रसगोंमे केवल अपना ही कुछ करते हैं बाहर कहीं कुछ नहीं करते। भले ही ऐसा लगता है जीवको कि मैं इतने कारोबार वाला हू, इतनी इतनी व्यवस्थायें बनाता हू लेकिन वस्तुतः मै कितना ? यह मैं अमूर्त, रूप रस, गध स्पर्श रहित एक चैतन्यपदार्थ हू। उसे कोई पकड़ नहीं सकता, उसे कोई नजरमे ले नहीं सकता, ऐसा जो यह मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। वह जो परिणमता है किस रूपसे

परिणमता है ? जाननरूपसे, विकल्परूपसे, रागद्वेषके बन्धनरूपसे, भावरूपसे परिणमता है। कहीं बाहरी पुद्गलपदार्थोंकी भाँति क्रियारूपसे नहीं परिणमता। तो यह मैं आत्मा केवल विकल्प ही कर रहा हू, मैं व्यवस्था नहीं कर रहा हू, मैं रोजगार नहीं सम्हाल रहा हू, मैं केवल अपने विकल्प किया करता हू। मेरा सम्बध तो मेरे आत्मा तक ही है। तो परलोक भी क्या चीज है ? मैं सही हू तो मेरा लोक सही है, मेरा परलोक सही है, मैं सही नहीं हू तो परलोक तो क्या यह लोक भी सही नहीं है। कदाचित् हमारे मायाचारके कारण हमारा बुरापन लोग न जान सकें लेकिन मेरा जैसा परिणाम होगा वैसा फल अवश्य सामने आयगा। परलोकका भय ज्ञानी जीवको नहीं होता। वह अपने ही चैतन्यको सुधार रहा है तो परलोकको सुधार रहा है और वह इहलोकको भी सुधार रहा है।

योगियोंकी वेदनाभयविप्रमुक्तता— तीसरा होता है वेदनाभय। शरीरमें किसी प्रकारका रोग हो तो यह भय करना कि हाय अब क्या होगा, कहीं इससे अन्य रोग न पैदा हो जाय, इसकी वेदना कैसे सही जायगी आदिक विचार करके लोग वेदनाका भय किया करते हैं, पर ज्ञानी पुरुषमें बड़ा धैर्य है, उसके यथार्थ समझ है। मैं शरीरसे भी निराली केवल ज्ञानमात्र सद्भूत वस्तु हू। यद्यपि इस शरीरका वर्तमानमें सम्बध जुड़ा हुआ है लेकिन मैं आत्मा तो इस शरीरसे बिलकुल निराला हू— इस प्रकारका सही ज्ञान होने के कारण ज्ञानी पुरुष वेदनाका भय नहीं करते हैं। लेकिन वेदना का अर्थ क्या है सो तो सुनो। वेदनाका अर्थ है जानना। कोई कहे कि मुझे तो बड़ी वेदना हो रही है तो उसका अर्थ यह है कि मुझे बड़ी जानकारी हो रही है। लेकिन रूढ़िमें लोग पीड़ाकी जानकारीको वेदना बोलते हैं, पीड़ामें कुछ अनुभूति विस्तार करते हैं इस कारण पीड़ाका नाम वेदना पड़ गया है। तो मैं वेदता हू, जानता हू, इतनी ही तो वेदना है। तो उसका क्या भय ? वह तो मेरा स्वरूप है। ज्ञानी पुरुष वेदनाका भय नहीं करता।

योगियोंकी अगुप्तिभयवर्जितता एव अरक्षाभयविमुक्तता—चौथा भय है अगुप्तिभय। मेरे पास कोई ऐसा साधन नहीं है कि मेरी रक्षा हो सके। अच्छा घर नहीं, मजबूत किवाड़ नहीं, हमारा परस्परका वातावरण इतना सुदृढ नहीं कि मेरी रक्षा हो सके, कैसे मेरी रक्षा हो सकेगी ? इस प्रकार का भय करना अगुप्तिभय है। ऐसा भय तो अज्ञानीजन किया करते हैं। ज्ञानी पुरुष तो जानते हैं कि मेरा स्वरूप अभेद्य है, मेरे स्वरूपमें किसी दूसरी बातका प्रवेश ही नहीं हो सकता है। मैं ज्ञानान्दमूर्ति हू। इसमें परतत्त्वका क्या प्रवेश है ? यह तो कभी मरता ही नहीं है। इसी कारणसे

ज्ञानी पुरुष अरक्षाका भय नहीं करता। मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। अरे कौन किसकी रक्षा करता है ? मेरी रक्षा मैं स्वयं करता हूं, कोई जीव यदि पापी है, उसके पापका उदय चल रहा है तो उसकी रक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता। यदि किसी बच्चे के पापका उदय चल रहा है तो उसकी माँ कितना ही प्रयत्न करे पर उस बच्चेकी रक्षा नहीं कर सकती। हम आपकी भी जो रक्षा हो रही है वह हम आपके ही अच्छे आचरणके कारण हो रही है, कोई दूसरा हम आपकी रक्षा नहीं कर रहा है। तो व्यवहारमें भी वास्तवमें हमने ही अपनी रक्षा की। तो ये ज्ञानी पुरुष योगीजन अरक्षाका भय नहीं करते।

योगियोंकी मरणभयविप्रमुक्तता—छठा भय है मरणभय। कहीं मेरा मरण न हो जाय। ज्ञानी पुरुष तो सोचता है कि मेरा तो कभी मरण ही नहीं होता। मरण तो इन प्राणोंके वियोग का नाम है। तो मेरे प्राण हैं, वास्तवमें ये ज्ञान और दर्शन। मेरा निजस्वरूप वही वास्तवमें मेरा प्राण है। जैसे अग्निका प्राण है वास्तवमें गर्मी। गर्मी न रहे तो अग्नि भी नहीं रह सकती है। तो मेरा प्राण क्या है ? चैतन्य। तो यह चैतन्य एक अविनाशी तत्त्व है। जिस पदार्थका जो स्वरूप है वह स्वरूप उस पदार्थ से कभी अलग नहीं हो सकता। वह तो पदार्थमें ही रहेगा। तो मेरा चैतन्यप्राण कभी नष्ट हो ही नहीं सकता, फिर मरणका भय क्या ? लेकिन जो मरणके समय भय मानते हैं वे वास्तवमें मोहवश मानते हैं। जब यह ख्यालमें आता कि अरे ये मकान, महल परिजन आदि सब छूटे जा रहे हैं तब मरणके समयमें क्लेश होता है। उस समय सारे जीवनभर माने गए मौजके बदलेमें बड़ा सक्लेश होता है और मरण करके वह जीव खोटी गति प्राप्त करता है, उस खोटी गतिमें पहुचकर वहांके दुःख भोगता है। तब मरणके समयमें सक्लेश न हो इसका अभीसे उपाय बना लेना चाहिये अगर अपने आपपर करुणा है तो क्या उपाय बनाना चाहिये ? मरण समयमें क्लेश होता है ममता का। बाह्य पदार्थोंमें जो ममताकी बुद्धि बसी है उसको छोड़ना होगा। मेरा कुछ नहीं है, मैं सबसे निराला हू, ये समस्त बाह्यपदार्थ अपने अपने स्वरूपमें रहते हैं, इनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है, इस ज्ञानकी भावना जब रोज बनेगी तो उससे ममत्व मिटेगा और मरणसमयमें, अपने आपकी सुधि आयेगी। ज्ञानप्रकाशकी ओर दृष्टि रहेगी, तो ऐसा मरण शुभमरण है, समाधिमरण है। इसके प्रतापसे आगे भी अच्छा सम्बन्ध मिलेगा। तो ज्ञानी जीव मरणका भय नहीं करते। यह प्राणोंका मरण, शरीरका मरण ये तो अनन्तभवोंमें सब फल भोगे हैं,

यों किसी भी चीजमें ममता न रहे तो फिर वहां मरणका भय नहीं रहता।

योगियोंकी आकस्मिक भयविप्रमुक्तता एवं सत्त्वाभयंकररूपता—७वां भय है आकस्मिक भय। जब चाहे व्यर्थ ही आकस्मिक भयकी कल्पना बना ली जाती है। जैसे कहीं यह छत न मेरे ऊपर गिर जाय, अथवा कहीं बैंकमें रूपया न मारा जाय, ऐसे आकस्मिक भय बना लेना सो आकस्मिकभय है। यह भय भी इन जीवों को बहुत सता रहा है। तो इन ७ प्रकारके भयोंसे रहित ये योगीश्वर हैं और ये योगी सर्वजीवों को अभय प्रदान करने वाले हैं। देखिये—योगियोंकी कितनी सुन्दर मुद्रा है कि केवल शरीरमात्र ही परिग्रह है। जो अज्ञानीजन हैं वे तो उन योगियोंके नग्नरूप को देखकर उन योगियोंकी निन्दा करते हैं, पर ज्ञानीजन तो उन्हें निर्विकार अत्यन्त सरल चित्त वाले समझते हैं। जैसे कि लोग अपने घरके दो चार वर्षके बच्चोंको निर्विकार सरलचित्त अनुभव करते हैं इसी प्रकार उन योगियोंकी उस निर्विकार मुद्राको निरखकर ज्ञानीपुरुष उन योगियों की भक्ति किया करते हैं। देखिये—उन योगियोंके पास जब कोई शस्त्र ही नहीं है तो लोगों को उनसे भय किस बातका हो? उनके पास तो मात्र पिछी और कमण्डल ये दो उपकरण रहते हैं। उनकी उस मुद्राको निरख कर किसी भी पुरुषको भय उत्पन्न नहीं होता। अन्य किस्मके साधुवोंको देखकर तो बड़ा भय उत्पन्न हो जाता है– उनके शरीरमें भस्म लगी है हाथमें त्रिशूल लिए है, चिमटा लिए हैं या मृगछाला लिए है अथवा लाठी डंडा लिए हैं उनसे तो सभी लोग भय खा जाते हैं, पर निर्ग्रन्थ योगिजनों से किसी को भय नहीं होता। वे योगी समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले होते हैं। ऐसे इन योगियों को मैं मन, वचन, काय समाल करके वन्दन करता हू।

णट्ठट्ठमयट्ठाणे पण कम्मट्ठणट्ठससारे।
परमट्ठणिट्ठियट्ठे अट्ठगुणड्ढीसरे वदे ॥६॥

योगियोंकी ज्ञानमदरहितता एव पूजामदरहितता—इसमें भक्ति भी की जा रही है और इस विधिसे स्तवन चल रहा है कि इन योगियोंमें ये तीन तीन चीजें नहीं हैं, ये चार चार बातें नहीं हैं, ये ५-५ बातें नहीं हैं, ये ६-६ बातें नहीं हैं, ये ७-७ बाते नहीं हैं, इस तरहसे कुछ एक चतुराईके साथ वर्णन चल रहा है। इस छदमें ८ सख्यासे सम्बन्ध रखकर वर्णन किया जा रहा है। इन योगियोंने ८ प्रकारके मद स्थानों को नष्ट कर दिया मद ८ प्रकारके होते हैं—ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद, बलमद,

ऋद्धिमद, तपोमद और रूपमद। जिसके कुछ ज्ञान बढ़ा है वह अपने ज्ञानका घमंड करता है। मैं इन सबमें ज्ञानी हूं, मुझे कई विद्यायें सिद्ध हुई हैं, मेरे समान ज्ञानवान् कोई नहीं है, आदिक अभिमान करना यह है ज्ञानमद। योगी पुरुषोंमें ज्ञानमद नहीं रहता। योगीजन बहुत बड़े ज्ञानके अधिकारी होते हैं लेकिन वे जानते हैं कि मेरे आत्माका ज्ञानस्वभाव इतना है कि सारे लोकालोकको जान जाये, इतने पर भी उनमें इतनी शक्ति और है कि ऐसे ऐसे लोक अनगिनते भी होते तो उन सबको भी यह ज्ञान जान जाता है। इतनी महान् शक्ति रखने वाला यह मेरा ज्ञान-स्वरूप है। यह जो ज्ञान प्रकट हुआ है, यह तो न कुछ जैसा ज्ञान है। जो पुरुष अपने ज्ञान और कलामें न कुछ जैसा विश्वास रखते होंगे उनको घमंड कहांसे हो सकता है? जो ज्ञान है उसे समझते हैं कि मेरे पास क्या ज्ञान है? वह तो न कुछ जैसा है। तो योगीश्वरोंके ज्ञानमद नहीं रहता है। उन योगीश्वरोंकी पूजा भी बहुत बड़ी होती है। बड़े-बड़े इन्द्र नरेन्द्रों द्वारा वे पूज्य हैं। पर इतनी बड़ी पूजा निरखकर उन योगियोंको मद नहीं होता, वे जानते हैं कि इनकी इस पूजासे मेरा क्या सम्बन्ध? मैं तो ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। इस अन्त प्रभुको यदि मैं शुद्ध रख सका तो मैंने अपनी पूजा कर ली और उस पूजासे हमें लाभ भी प्राप्त होगा। इन लोगोंके द्वारा की गई पूजासे प्रशंसासे मेरेको क्या लाभ? तो वे योगी-श्वर पूजाका मद नहीं करते, क्योंकि उनके पर्यायबुद्धि अब नहीं रही। पूजाका मद तो उनके होता है जिनकी पर्यायबुद्धि है, जिनकी दृष्टि इस शरीरपर है। वे योगीश्वर इस शरीरसे भिन्न अपने ज्ञानानन्दस्वरूपको निरखते हैं इससे उन्हें पूजाका भी मद नहीं होता।

सिद्धों और योगियोंकी शरणरूपता—बाह्यमें शरण है कुछ तो दो का शरण है—एक प्रभुका और एक योगियोंका। भगवान और योगी। भगवान तो एक चरम विकासकी अवस्थाका नाम है। जहाँ रागद्वेष आदिक विकार नहीं रहे, और आत्माका स्वभाव विशुद्ध पूर्ण विकसित हो गया है, ऐसे आत्माको भगवान कहते हैं। उनका हम शरण क्यों गहते हैं कि चूँकि हम आप सभी जीव ऐसे ही स्वरूप वाले हैं, उनका ध्यान करनेसे हमें अपने स्वरूप की सुध होती है, और ज्यों ही अपने इस ज्ञानदर्शन स्वरूप की सुध हुई त्यों ही अनेक विकल्पोपसर्ग शान्त हो जाते हैं। जब तक अपने आपके स्वरूपकी सुध नहीं रहती तब तक यह उपयोग लगेगा। सो बाहर ही बाहर यह उपयोग लगा रहता है जिससे संसारमे इस जीवका परि-भ्रमण चलता रहता है। तो अपने आत्मस्वरूपकी सुध रहने से अपने

आत्माका विशिष्ट लाभ प्राप्त होता है। शरणभूत बाहरमें कोई चीज नहीं है। कुछ भी यहाँ शरण नहीं है। शरण है एक तो प्रभुका और दूसरा शरण है योगिराजोंका। जिन्होंने प्रयोगात्मक अध्यात्मयोगकी साधना की है बाह्य या आभ्यन्तर समस्त परिग्रहोंका त्यागकर अपने आपमें शाश्वत विराजमान चैतन्यस्वरूपकी उपासना जिन्होंने की है, उसके लिए ही जिनको निरन्तर भावना चल रही है, जो संसारमें किसी भी विषयादिक की चाह नहीं रखते हैं व पवित्र आत्मा योगी हैं। उनकी उपासना करना, उनकी शरण गहना भी एक ठीक शरण है।

योगियोंकी विशुद्ध दृष्टि– परमार्थ और व्यवहार अथवा शुद्ध और विशुद्ध दोनों शरणोंमें वस्तुत' योगीजन उस मोक्षमार्गकी शरण लेते हैं जिस मार्गसे चलकर हम आप संकटोंसे दूर हो सकते हैं, पर मोहवश संसारी प्राणी उसको दृष्टि नहीं कर रहे हैं। अपने स्वरूपसे चिगकर किसी भी बाह्यपदार्थमें दृष्टि लगाना, उसका चिन्तन करना, मनन करना, उसे ही उपादेय मानना, उससे भलाई समझना, ऐसी जो समझ है यह समझ ही बड़ी विपत्ति लगी हुई है, क्योंकि समागम तो कुछ समयका है, अन्तमें वियोग तो होना ही पड़ेगा। कोई समागम किसीके साथ सदा रहता नहीं। तो इन परपदार्थोंका विकल्प कर करके जो अपनेमें आकुलता मचाई है इसका फल भोगने कोई दूसरा न आयगा। जिनका आश्रय करके, जिनको नजरमें रखकर हमने विकल्प मचाये वे तो साथ देने वाले नहीं हैं। वे सब उतने ही जुदे हैं जितने संसारके अन्य अनन्तानन्त जीव जुदे हैं। ये खास लोग हैं, ये मेरे प्रेमपात्र हैं, अथवा इनके लिए ही मुझे सब कुछ करना है, अपना तन, मन, धन, वचन सब कुछ इन्हींको अर्पित करना है आदिक। पर ऐसी समझ नहीं बन पाती कि ये मेरे घरके लोग भी मेरेसे उतने ही भिन्न हैं जितने कि अन्य समस्त जीव भिन्न हैं, रंच भी अन्तर नहीं है; ऐसा जिन्होंने स्वरूप समझा था अतएव उनका उत्कृष्ट वैराग्य बढ़ा था, सर्व कुछ त्यागकर योग धारण किया था, उनका ही नाम योगी है। और वे योगी किसी भी चीजका मद नहीं करते। उनके क्रोध भी नहीं रहता। किसपर वे क्रोध करें, क्यों क्रोध करें? क्रोधका कोई कारण ही नहीं है। वस्तुत. कोई जीव किसीका विरोधी नहीं है, सभी जीव अपने-अपने कषायके अनुसार अपनी-अपनी चेष्टा करते हैं। हमारा कोई विरोधी नहीं, ऐसी योगियोंकी दृष्टि रहती है, इस कारण वे समस्त विश्वके मित्र कहलाते हैं। तब फिर क्रोधका क्या प्रसंग वहाँ? मदका प्रसंग यों नहीं है कि उनकी दो दृष्टियाँ हैं—पाये हुए समागमोंको वे तुच्छ मानते हैं। जो

ज्ञान पाया है उसे भी वे न कुछ जैसा समझते हैं। पाये हुए जाति कुलको भी वे तुच्छ समझते हैं। उनमें वे योगीजन मद नहीं करते।

योगियोकी पूजामदरहितता—पूजा प्रतिष्ठाका म भी वे योगीजन नहीं करते। मेरा तो कोई नाम ही नहीं, वस्तुतः मैं जो सत् हूं वह निर्नाम है, ऐसे ही सद्भूत सभी पदार्थ हैं जैसे हम आप सब हैं। स्वरूपदृष्टिसे निरखने पर ही आत्मा जाना जाता है। आत्माकी जो वर्तमान दशा है, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, पशु, पक्षी आदिक, इनको निरखकर आत्मा का स्वरूप नहीं समझ पा रहे हैं कि वस्तुतः आत्मा क्या है? इसी प्रकार जो पर-परिणतियां चल रही हैं उन्हें भी देख करके हम परमार्थ आत्मतत्त्व को नहीं समझ सकते हैं कि हम परमार्थ आत्मा क्या हैं? और की तो बात दूर रहो, आत्माका जो वर्तमानमें आकार बन गया है, नाना शरीरों रूपमें तो इन शरीरोंको ही देखकर आत्माके स्वरूपको नहीं निरख पाते। जिसका अनुभव करने पर ज्ञानानुभूति होती है। देखते रहें कि मैं आत्मा तो इतना लम्बा चौड़ा हूं। यद्यपि यह प्रदेशित्व गुणको छोड़कर कहां अन्यत्र रहेगा लेकिन इस दृष्टिसे निरखने पर भी वह अनुभूति नहीं जगती जहाँ आनन्द ही आनन्द बसा हुआ है। रचमात्र भी जहा आकुलता नहीं हो सकती। कोई विकल्प बाधा नहीं। यह बात तो एक ज्ञानमात्र अपने को अनुभव करने पर होती है। तो इन योगियोंको पायी हुई पूजा प्रतिष्ठामें भी मद नहीं है।

भैया! क्या है? यहां पर्यायका नाम लेकर किसी ने कुछ कह दिया—यह बहुत ठीक है, इसका बड़ा प्रभाव है, कुछ नाम लेकर भी प्रशंसा कर दिया तो उससे क्या लाभ है? उनकी चेष्टावोंसे मेरी आत्मा को भी क्या लाभ होता है? जितना मैं अपने को ज्ञानमात्र अनुभव कर करके एकरस कर लूँगा, अपने उपयोगको ऐसा बलवान् बना लूँगा कि जब चाहे अनायास ही शीघ्र अपने को ज्ञानरूप अनुभव कर सकते हैं। ऐसी बात पायी जा सकी उसीका नाम योग है और यही योग इस जीवको शरण है। जगतमें अनेक कार्य हैं, अनेक व्यापार हैं। नेतागिरी, नाम फैलाने आदिक के जो काम हैं वे सब अनर्थभूत काम हैं, इनसे आत्माको कुछ भी लाभ नहीं है। आत्माका लाभ आत्मदृष्टिसे है। यद्यपि लोकमें रहकर, गृहस्थीमें रहकर ये सब कुछ करने पड़ रहे हैं लेकिन व्यापारके समय व्यापार किया जाता है, घूमनेके समय घूमा जाता है। किन्तु अपने आपके अनुभवके लिए भी कुछ समय चाहिये। यह मन हर जगह दौड़ दौड़कर खूब थक जाता है, इस थके हुए मनको आराम भी तो देना

चाहिये। अब आप विचार करें कि मनको आराम देनेका ढंग क्या है? पुत्र मित्रमें राग करने लगें, इससे मनको आराम मिलेगा क्या? अरे इनके पीछे विकल्प करके तो मन थक जाता है। तो थके हुए मनको विश्राम देनेका उपाय केवल यह है कि ऐसा ज्ञान प्रकाश पायें कि परके विकल्पों को छोड़कर विश्रामसे बैठ सकें, अपने आपका अनुभव जगे।

आत्मकरुणा करनेके कर्तव्यका अनुरोध—एक राजा पर किसी शत्रुने चढ़ाई कर दी, तो राजा सेना लेकर शत्रुका सामना करने चल पड़ा। राज्यमें रानी रह गयी। दूसरी ओरसे एक शत्रुने और भी आक्रमण कर दिया। तो रानी ने सेनापतिसे कहा कि जावो, सेना लेकर इस शत्रुका मुकाबला करो। तो वह सेनापति हाथीमे बैठकर उस शत्रुका मुकाबला करने चल पड़ा। वह सेनापति जैन था। सो संध्याके समय वह हाथी पर बैठा हुआ ही सामायिक पाठ करने लगा। उस सामायिकमें वह कहने लगा—ऐ पशु पक्षी, मनुष्य कीड़ा मकौड़े, पेड़, पौधे आदि प्राणियों! मेरे द्वारा तुम्हें जो कुछ भी कष्ट पहुचा हो तो क्षमा करना। यही तो सामायिक पाठमें बोला जाता है। तो इस बातकी चुगली किसी ने रानीसे कर दी कि तुमने तो ऐसा सेनापति शत्रुका मुकाबला करने के लिए भेजा कि वह तो रास्तेमें छोटे मोटे कीड़ा मकौड़ा, पेड, पौधा आदिकसे भी क्षमा माग रहा था, यह क्या शत्रुका मुकाबला करेगा, पर हुआ क्या कि वह सेनापति एक दो दिन बाद ही उस शत्रु पर विजय प्राप्त करके आ गया। उसके आने पर रानी ने कहा—ऐ सेनापति, हमने तो सुना था कि तुम रास्तेमें छोटे मोटे कीड़ा मकौड़ा, पेड़, पौधे आदिकसे भी क्षमा मांग रहे थे, पर तुम तो इतने बड़े शत्रुको जीतकर आये, यह कैसे? तो सेनापति बोला—ऐ रानी जी मैं आपका २३॥ घंटेका नौकर हू, खाते, पीते, सोते, उठते, बठते, सभी स्थितियोंमें आपकी आज्ञामें हाजिर रहता हू, पर रात दिनके २४ घंटेमें आधा घटे तक मैं अपनी नौकरी करता हू। अपने आत्महितकी बात सोचता हू। सो जिस समय मैं कीड़ामकौड़ा, पेड़, पौधे आदिकसे क्षमा मांग रहा था उस समय मैं अपने आपकी नौकरी कर रहा था, अपने आत्महितका काम कर रहा था और जब युद्धका समय आया तो डटकर शत्रुसे मुकाबला किया। तो इस कथानकसे हम आप भी यह शिक्षण लें कि इन रात दिनके २४ घंटोंमें बाहरी झंझटोंमें ही हम आप फसे रहा करते हैं। कुटुम्बके, समाजके देशके, अनेक प्रकारके कामकाज मे लगे रहा करते हैं पर इन सब कामोंके करते हुएमें यही सोचना चाहिये कि कमसे कम एक आध घटा अपने आपकी नौकरी करें। इन कामोंमें

न मिलेगा।

योगियोंके बलमदका अभाव--योग कहते हैं जोड़नेको। जैसे हिसाब में कहते कि इसका योग कर दो, मायने इसे जोड़ दो, इसी प्रकार आत्मा के स्वरूपमें अपने उपयोगको जोड़ दो, स्वरूप तो था ही, उसमें उपयोग और जुड़ गया, इसे कहते हैं योग। इस योगको जो धारण करते हैं ऐसे पुरुषोंके ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद आदिक नहीं रहते। इसी प्रकार बलमद भी नहीं है। बड़े वीर क्षत्रिय बहादुर अपनी गृहस्थावस्थामें थे जिन्होंने बड़ी वीरताओंका परिचय दिया, ऐसे पुरुष जब निर्ग्रन्थ योगी हो जाते हैं तो कोई शत्रु अथवा बलवान उनपर प्रहार कर दे तो वे उस- पर क्षमा धारण करते हैं, न अपने बलके ओर ध्यान भी देते, आत्मस्वरूप में रत रहनेकी धारणा रखते हैं, उनके बलमद नहीं है। जैसे पांडव आदिक अनेक योगीश्वर हुए, अपने बलके द्वारा कौरव सेनाको परास्त कर दिया। साम्राज्य पाकर वे उसमें टिक न सके, वैराग्यकी प्रेरणा हुई, विरक्त हुए, उनपर कौरववंशसे सम्बधित लोकोंने उपसर्ग किया। तात लोहेके कड़े आदिक आभूषण पहिनाये। उनमें क्या इतना बल न था कि उन लोकों को भगा देते? पर उन्होंने अपने बलकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। अपने में ऐसी सावधानी रखी कि मेरे आत्मामें इस प्रकारके विकल्प न जगने चाहिएँ। जिन विकल्पोंने ही संसार बढ़ाया उन विकल्पोंकी भावना नहीं है। निर्विकल्पसमाधिमें और दृढ़ता स्थित हो गयी, तो ऐसे योगियोंके बलमद कहाँ?

योगियोंके ऋद्धि तप रूपके मदका अभाव और गुणसमृद्धत्व—योगियोंके ऋद्धिमद भी नहीं। उन योगियोंको यह भी पता नहीं रहता कि मुझे कौन सी ऋद्धि प्राप्त हुई? तपश्चरणके अतिशयमें ऋद्धि उत्पन्न हो जाती है। तो उन ऋद्धियोंका भी मद उन योगियोंको नहीं होता। वे जानते हैं कि हमारी अलौकिक ऋद्धि तो अनन्तज्ञान, अनन्तआनन्दका अनुभव है। यह सूक्ष्म ऋद्धि भी क्या चीज है? तपका भी मद उन योगियोंका नहीं रहता। कई मासके उपवास करें, सर्दी गर्मीमें वनमें निवास करें, कठिनसे कठिन उपसर्ग भी आयें, उन्हें सहन करें ऐसे तपश्चरण करके भी वे योगीजन अपने तपश्चरणका मद नहीं करते। इसी प्रकार उनके शरीरका भी मद नहीं है, रूपका भी मद नहीं है। यों ८ प्रकारके मदसे वे योगीश्वर रहित हैं और वे अष्टगुणोंके ईश्वर हैं। जो तपोवृद्धिके प्रभावसे विशेष प्रकारकी ऋद्धियाँ उत्पन्न होती हैं उनके ईश्वर हैं या अपने गुणोंमें बढ़ रहे हैं, वे गुणोंके ईश्वर हैं। यह सब योगके प्रतापसे हुआ है ना तो वे योगकी तरफ

ध्यान रखते है, सो ये विकास स्वयं चले जाते हैं।

योगियोंकी कर्मक्षपणोद्यतता व परमार्थकुशलता—योगीश्वर अष्टकर्मों का नाश करनेके लिए उद्यमी हुए हैं। द्रव्यकर्म के नष्ट करनेका अर्थ यह है कि जिन जीवोंको द्रव्यकर्मका बन्ध होता है और जिन भावोंसे द्रव्यकर्म बलवान बनते हैं उन भावोंको न करना, उनके प्रतिपक्षी ज्ञानभावोंकी ओर आना, यह उनकी आन्तरिक वृत्ति है। तब वे अष्ट प्रकारके कर्म उनके नष्ट हो जाने वाले हैं। ये योगी परमार्थमें कुशल हैं। कलायें जैसे पुरुषमें होती हैं जैसे कोई किसी लिखने, पढ़ने, आदिक कलाका अच्छा जानकार है तो उसे सुधार लेना, सम्हाल लेना वह उसकी सहजकलासे साध्य है। ऐसे ही उन योगीजनोंमे ऐसी सहजकला है कि जिसके बलपर अपने आत्मस्वरूपमें अपने उपयोगको जब चाहे तब रमा लेते हैं। वे अपनी इस कला में इतना अधिक निपुण हो गए है तभी तो क्षण-क्षणमें थोड़े थोड़े समय प्रमत्तसे अप्रमत्त होते हैं। प्रमत्तसे अप्रमत्त हुए, अप्रमत्त से प्रमत्त हुए इस प्रकार छठे ७वें गुणस्थानमें परिवर्तन करते रहते हैं तो वहाँ बारबार अपनी सभाल ही तो करते हैं। यह उनमें सहजकला ही तो है कि झट अपने इस दौड़ते हुए मनको मोड़कर अपने आत्माका अनुभव करने लगते हैं। तो वे योगीश्वर परमार्थमें निपुण हैं। ऐसे योगीश्वरोंका मैं मन, वचन, कायसे वन्दन करता हूं।

णवबंभचेरगुत्ते णवणयसब्भावजाणगे वंदे।
दहविहधम्मट्ठाई दससंजमसंजदे वंदे ॥७॥

योगियोंकी नवविधब्रह्मचर्यसुरक्षितता एव नवनयसद्भावज्ञायकता—ये योगी ९ प्रकारसे ब्रह्मचर्यमें गुप्त हैं अर्थात सुरक्षित है। गुप्तका अर्थ है सुरक्षित। जैसे लोग कहते ना कि इस चीजको इस बक्सके अन्दर गुप्त कर दो, तो उसका अर्थ है कि उस चीजको सुरक्षित कर दो। जब उपदेश में निकले कि अपने आत्माको अपनेमें गुप्त करो। तो मोटेरूपसे उसका अर्थ करते है लोग कि आत्मामें अपनेको छिपा लो। और छिपानेका अर्थ क्या है? सुरक्षित कर लेना। तो सुरक्षितके अर्थमें "छिपा लेना" यह अर्थ चल गया है। ये योगीजन ब्रह्मचर्यसे सुरक्षित हैं। और ये नव नयके सद्भावको जानने वाले हैं। आगमसिद्ध ७ नय और अध्यात्मदृष्टिसे निश्चयनय और व्यवहारनय—इनके यथार्थस्वरूपको वे जानने वाले हैं। जो नयमें कुशल नहीं होते वे साधनामें और वस्तुके जाननेमें सभीमें धोखा खाते है। नयका एकान्त होनेपर ज्ञान ही मलिन नहीं हुआ किन्तु साधना भी मलिन हो गयी। जैसे कोई अपने रा का सर्व ओरसे परिचय रखने

वाला है वह पुरुष निर्भय होकर घरमें पड़ौसमें रहता है, इसी प्रकार समस्त नयोंके विषयोंसे परिचित रहने वाले पुरुष निर्भय रहकर अपने उद्देश्य पूरक आशयमें लक्ष्यमें अपनेको लगा लेते हैं। तो ये योगीश्वर समस्त नयोंके यथार्थस्वरूपके जाननहार हैं। ऐसे इन योगियोंको मैं मन, वचन, कायसे वन्दन करता हूं। जब योगियोंके योगस्वरूपका ध्यान होता है तो भक्तोंका स्वयं ही तन, मन, वचन उनकी ओर आकर्षित होता है। इसी आकर्षणका नाम है यथार्थवन्दन।

योगियोंकी दशधर्मावस्थितता—योगीश्वर १० प्रकारके धर्मोंमें रित रहते हैं, क्षमाकी मूर्ति हैं। कोई क्या करेगा, वह अपनी चेष्टा करेगा। जो विरोध करता है उसपर तो करुणा जगती है कि इसने ऐसा विरोधभाव करके अपने आपको कितना बरबाद कर लिया, उनके प्रति करुणा जगी। क्रोध तो दूर रहे, ऐसी क्षमाकी मूर्ति हैं। मान उनके निकट नहीं, नम्र होनेसे ही तो वे अपने इस ज्ञानसागरमें आकर मिलते हैं। कोई नदी निम्न ही जाय तभी तो समुद्रमें मिलती है। तो नदीकी भाँति उनके निम्नतावृत्ति है। वे नम्र होकर अपने स्वरूपमें मिल जाते हैं। योगीश्वर आर्जवकी मूर्ति हैं, सरल हैं। छल कपट करनेका कोई प्रयोजन रहा नहीं, किसी वस्तुकी चाह उनके है नहीं, यश कीर्तिकी भी उनके चाह नहीं है। एक ही उनकी धुनि है कि मेरा यह संसारका रोग कैसे दूर हो? जन्म मरणकी परम्परा कैसे मिटे? इस असार संसारमें कुछ भी उनके वाञ्छा नहीं। स्वप्नकी दुनियामें जैसे नाना विकल्प करता है सोने वाला इसी तरह मोहकी नींद में इस दृश्यमान दुनियाको कुछ सच्चासा समझकर उससे कुछ आशा रखते हैं, हित चाहते हैं, पर किसी पदार्थसे मेरा हित कहाँ? जब सर्व विकल्प तोडकर अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करें, तब ही वे अपना हित पा सकते हैं। तो ये योगीश्वर सरलताकी मूर्ति हैं। कपट करनेका न साधन है और न उनकी वृत्ति ही है। ये योगी पवित्र हैं, तृष्णासे पूर्णतया रहित हैं, कोई प्रकारकी तृष्णा नहीं अतएव सत्य जिनके प्रकट है, संतोषी हुए हैं, संयमका पालन करते हैं और विभावोंका परिहार करनेकी चेष्टा किया ही करते हैं। एक ज्ञानभाव है। ज्ञानभावना द्वारा समस्त विभावों का परित्याग करते हैं और बाह्यमें बाह्य ग्रन्थोंका त्याग किया ही है, ऐसे ये योगी अपनेको अकिञ्चन अनुभव करते हैं। कुछ भी नहीं है जिसका उसे अकिञ्चन कहते हैं। मेरा इस लोकमें कहीं कुछ है ही नहीं। जो कुछ है वे ५ इन्द्रियके विषय ही तो पड़े हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श ही तो पड़े हुए हैं, इनमें चित्त रमानेसे गुजारा क्या चलेगा? थोड़े समयको माना

भोग लिया तो उस से क्या पड़ेगा ? जीभपर कोई सरस वस्तु रखी तो उसके सुखपर कितने विकल्प करने पड़ते हैं। तो उन योगियोंके किसी भी विषय में प्रवृत्ति नहीं होती। कहीं सार है ही नहीं। किस पुरुषको हम प्रसन्न करने की चेष्टा करें ? हम क्या आशा करें कि कोई मेरा सुधार करेगा ? कोई जीव किसीको प्रसन्न करनेमें क्या समर्थ है ? और फिर लोकमें कौन किसका शरण हो सकता है ? और हो भी व्यवहारसे अपनी कल्पनामें तो कब तक रहेगा ? कब तक संयोग है ? आखिर वियोग होगा। अन्यके त्यागनेकी तो बात क्या ? इस देहको तजकर भी तो कुछ निकट शीघ्रमें जाना ही तो है। और मृत्यु के निकट आते ही तो जा रहे हैं। क्या है इस लोकमें ? किसमें कल्पनायें बढाना और अपने उपयोगको मलिन करना। ये योगीजन अपनेको अकिञ्चन अनुभव करते हैं और आकिञ्चन्य भावनाके प्रसादसे अपने स्वरूपमें रमण किया करते हैं। यों वे १० प्रकारके धर्मोंके पालन करने वाले हैं। पालनेका भी विकल्प क्या ? स्वयं वे धर्मरूप हो रहे हैं, अतएव वे धर्ममें अवस्थित हैं।

एयारसंगसुदसायरपारगे बारसंगसुदणिउणे।
बारसविहतवणिरदे तेरसकिरिया दरे वंदे ॥८॥

एकादशाङ्गज्ञाता, द्वादशाङ्गनिष्णात, त्रयोदशक्रियापालक योगियोंकी उपासना—यहाँ संख्या क्रमसे विशेषण लेकर वर्णन कर रहे हैं। जब १० संख्याके बाद ये ११ अंगके श्रुतसागरके पार पहुंचे हैं अर्थात् ११ अङ्गश्रुत के ज्ञाता हैं, ऐसा कहकर उनकी वन्दना कर रहे हैं। १२ वें में कहा कि द्वादशांग श्रुतमें जो निष्णात हैं उनकी वन्दना कर रहे हैं। जो निज तत्त्व के स्वरूपका बोध है वह तो सबके एक समान है किन्तु अन्य जो ज्ञानका फैलाव है वह अपने क्षयोपशमके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारका है। अनेक योगी एक दो ही अंगके ज्ञाता होते हैं। कोई नहीं भी ज्ञाता होते हैं फिर भी वे श्रुतके और श्रुतके मर्मके ज्ञाता होते हैं। ये द्वादशांगश्रुतमें पूर्ण निपुण हैं उनकी हम वन्दना करते हैं। वे योगी १२ प्रकारके तपश्चरणमें रत हैं—६ प्रकारके बाह्य तप उपवास, ऊनोदर व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, एकान्त स्थानमें निवास, कायक्लेश आदिक नाना प्रकारके तपश्चरण ये बाह्य तपश्चरण हैं, और अन्तरङ्ग तपश्चरण हैं—प्रायश्चित्त ग्रहण, गुरुजनोंकी उपासना विनय आदिक करना, उनकी सेवा शुश्रूषा करना, स्वाध्याय करना, ममत्व त्यागना ध्यानमें बढना आदिक। वे अपने सब प्रकारके तपश्चरणोंमें शुद्धताको बनाये हुए हैं, ऐसे ये योगीश्वर हैं

योगेश्वर १३ प्रकारकी क्रियावोंका आदर रखते हैं। क्रियावोंका अर्थ है यहाँ चारित्र। १३ प्रकारके चारित्र नहीं है किन्तु वे अंग हैं। जैसे सम्यग्दर्शनके ८ अङ्ग बताये गए। तो ८ अङ्गोंका जो समुदाय है वह पूरा अङ्गी है। जैसे— सम्यग्दर्शनके ८ अंग कहे हैं इसी प्रकार ये १३ सम्यक्चारित्र अंग हैं। ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति। महाव्रतोंमें पापोंका सर्वथा त्याग है। समितिमें सावधानीपूर्वक अपनी सारी प्रवृत्ति है। और गुप्तिमें मन, वचन, कायकी सर्वचेष्टावोंकी निवृत्ति है। ऐसे १० प्रकारके चारित्र का जिनके आदर है वे योगीजन उन चारित्रोंकी बड़ी संभाल रखते हैं, उन चारित्रोंका बड़ा आदर करते है तो आदर करते हैं—इतना कहनेसे ही यह सिद्ध हुआ कि १२ अगोंके चरित्रके वे पालनहार हैं। ऐसे चरित्रमूर्ति योगीश्वरोंकी मैं वन्दना करता हू।

भूदेसु दयावण्णे चउदस चउदससुगथपरिसुद्धे।
चउदसपुव्वपगब्भे चउदसमलवज्जिदे ॥६॥

योगियोंकी चतुर्दशजीवदयापरता व चतुर्दशपरिग्रहवर्जितता—ये योगी १४ प्रकारके प्राणियोंकी दयासे सहित हैं। १४ जीव समास—जीव समासमें सभी ससारी जीव आ गए। समस्त संसारी जीवोंके प्रति उनके क्षमाभाव हैं। जो जीव व्यवहारमें नहीं आ रहे, जो पकड़में भी नहीं आते ऐसे जीवोंपर उनकी क्या दया होती है? चूँकि सर्वजीवोंके सम्बधमें इन सबका उद्धार हो, ऐसी भावना रहती है। अतएव वे सर्वजीवोंपर दया करने वाले हैं। तो ये योगीश्वर १४ प्रकारके इन ससारी जीवोंके प्रति दयासे सहित हैं। ये १४ प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हैं। क्रोध मान माया लोभ और मोह और ६ नोकषायें— हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद इन सब २४ प्रकारके विकल्पोंसे ये निवृत्त हैं। इनका वे ग्रहण नहीं करते। एक तो कोई विकल्पको जका लेना, राग करना—इन दो बातोंमें अन्तर है।

राग व रागानुराग सभी रागोंसे योगियोंकी दूरवर्तिता— कोई पुरुष यो समझकर कि यह मानवजीवन बड़ा दुर्लभ है, सुयोगसे प्राप्त किया है तो ज्ञानसाधना करके, परमात्मदर्शन करके अपने इस दुर्लभ मानव जीवनको सफल करना चाहिये। इसकी साधना करनेका यह सुन्दर अवसर है। जिस साधनाके प्रतापसे निकटकालमें ही ससारके समस्त सङ्कटों से छुटकारा पाया जा सकता है। तो इस मानवजीवनको सुख से रखना उपयोगी समझ करके जो देहका राग करते हैं, वह राग मूढ़ता

राग नहीं है, राग अवश्य है, किन्तु उस रागमें भी यदि राग हो और अपने उद्देश्यकी सुधि भूलकर विकल्प मचाये जायें तो वे सब मूढ़ता भरे राग हैं। ऐसे ही गृहस्थीमें धनका रखना भी उपयोगी है, उससे जीवन चलता है। तो जीवन चलाना है एक आत्मसाधनाके लिए, क्योंकि इस जीवनमें एक सुबुद्धि प्राप्त की है, और कुछ ज्ञानस्वरूपका परिचय भी हुआ है तो इस अवसरसे लाभ उठाना है, ऐसा जानकर गार्हस्थ्य जीवनमें उपयोगी होते हुए इस धन आदिकका कोई राग करे तो वह मूढता भरा राग नहीं है। राग है, विभाव है, किन्तु अपने आपकी सुधि न रखकर केवल लोकमें धनी कहलाने के लिए और उसमें अपना बड़प्पन जतानेके लिए जो चाह होती है वह मूढता भरा राग है। जैसे कोई किसी परिजन मित्र जनके सम्पर्कमें यहाँ रहना पड़ रहा है तो वहां तो प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से गुजारा है और ऐसा शान्त प्रसन्न रहकर गुजारा करने की स्थितिमें धर्मदृष्टि रह सकती है। अतएव परिजनका, कुटुम्बका राग करना मूढ़ता भरा राग नहीं है, राग अवश्य है, किन्तु अपना उद्देश्य ही भूलकर जो परिजन मित्रजनोंमें रति करते हैं, उनमें मोह रखते हैं उनका राग मूढता भरा राग है। ये योगीश्वर इन सब रागोंसे भी दूर हैं। वे अपने में विभावपरिणमनोंसे विरक्त ही रहना चाहते हैं।

योगियोंकी चतुर्दशपूर्वगर्भता व चतुर्दशमलवर्जितता—ये योगेश्वर १४ प्रकारके पूर्वोंको अपने गर्भमें रखे हुए हैं। १४ पूर्वोंका बहुत बड़ा विस्तार है। हैं ये १२वें अङ्गके भेद, १२वें अङ्गके भेदोंमें एक भेद है पूर्वका किन्तु इसका प्रमाण सबको मिलाकर उसके मुकाबले में भी विशेष रहता है ऐसे १४ पूर्वोंके ज्ञाता योगीश्वरोंका मैं वंदन करता हूं। ये १४ मलोंसे रहित हैं, दोषोंसे रहित हैं, विकल्पोंसे दूर हैं। जिनको एक सहजज्ञानके दर्शनकी कला प्राप्त है और इसी कारण जिनकी परमात्मतत्त्वकी ओर रहने की धुनि रहती है उनको बाह्यविकल्पोंमें फंसनेकी आवश्यकता ही क्या है? वे विकल्पोंसे दूर रहते हैं। फंसा कोई भी बाहरी बातोंमें नहीं है। जो लोग गृहस्थीमें हैं वे गृहस्थीमें फसे नहीं हैं किन्तु अपने विकल्पोंसे फसे हैं। कोई बहुत बड़ा चक्रवर्ती भी हो, अटूट वैभवका स्वामी हो फिर भी यदि उसके पास सही ज्ञान है तो वह तो उस सब वैभवसे, समस्त परिजनों से अपने को पृथक् निरखता है। वह तो यही समझता है कि ये सब कुछ मैं नहीं हूं। उसे तो एक ऐसी सहज कला प्राप्त हुई है कि क्षण भरमें ही सर्वप्रकारके विकल्पोंसे दूर हो जाया करता है। तो ऐसे ही आत्मगुणोंके अधिकारी वे योगीश्वर हैं। उनका मैं वंदन करता हूं।

वंदे चउत्थभत्तादि जावछम्मासखवणपडिवएणो ।
वंदे आदावंते सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे ॥१८॥

चतुर्थभक्तादिक्षपणयुक्त योगियोंका वंदन—मैं ऐसे योगियोंकी वंदना करता हू जो चतुर्भक्तसे लेकर ६ महीने पर्यन्त उपवासको धारण करते हैं। चार बारके आहार त्यागका नाम एक उपवास है। जैसे अष्टमीका उपवास किया जा रहा है तो सप्तमीके शामका भोजन न करना, अष्टमीके दोनों बारका भोजन न करना और नवमीके शामका भोजन न करना ऐसे चार बारके आहारका त्याग एक उपवासमें होता है। तो यह संज्ञा एक साधारण लोकव्यवहारकी दृष्टिसे दी गई है। योगियोंको तो एक उपवास में योगियोंकी एक वेलाका त्याग होता है, क्योंकि योगी दिनमें एक बार ही तो आहार लेते हैं। वेलावोंमें बताया गया है कि दो वेला एक दिनमें होती हैं तो जबसे उन्होंने उपवास धारण किया तबसे तो २ वेलाका त्याग रहा और एक वेला पारणाके दिनका त्यागमें गिन लिया। यों एक उपवास को चतुर्भक्त कहते हैं। ऐसे छह महीना पर्यन्त जो उपवास धारण करते हैं ऐसे योगीश्वरोंको नमस्कार करता हू। उपवास की भी अधिकाधिक सीमा ६ महीनकी है। ६ महीने से अधिकका उपवास करना नहीं बताया है पर एक दृष्टान्त मिलता है बाहुबलि स्वामीका जो कि १ वर्ष तक निराहार रहे। तो उन्होंने १ वर्ष तक निराहार रहनेकी प्रतिज्ञा न ली थी। वे तो तपश्चरणमें ऐसा रत हो गये कि एक वर्ष तक निराहार रुहे रहे। तो यह बात दूसरी है। आदिनाथ स्वामी भी ६ माह तक निराहार रहे, उसके बाद फिर ६ माह तक बराबर अन्तराय आते रहे। प्रतिज्ञापूर्वक आहारका त्याग तो ६ महीने तकका होता है। इससे इस वंदनामें बताया है कि एक उपवाससे लेकर ६ महीना पर्यन्त उपवास धारण करने वाले योगियोंका मैं वंदन करता हू।

निराहार आत्मस्वभावकी दृष्टिका बल— देखिये उन योगियोंने अपने आपमें कितना अद्भुत आनन्दधाम प्रकाश पाया है जिसके बलपर छह महीने तक वे निराहार रहते हैं फिर भी प्रसन्न रहते हैं। तो उनको इस प्रसन्नताकी कौनसी कुञ्जी मिल गयी? बाह्यमें दृष्टि रखने से तो वह प्रसन्नताकी कुञ्जी नहीं मिल सकती। बाह्य परिग्रहोंमें दृष्टि लगाकर यदि शान्तिके प्रसन्नताके स्वप्न देखें तो व्यर्थ है। परपदार्थोंकी आशा किए रहनेमें ही मोहियोंका सारा जीवन व्यतीत हो जाता है। लोग तो सोचते हैं कि हम गृहस्थीमें रहकर इतने इतने काम करलें, य बच्चे हमारे समर्थ हो जायें, इनको काममें लगादें, फिर हम पूर्ण स्वतन्त्र होकर शान्तिसे अपना

जीवन गुजारेंगे। आखिर यही सोचते-सोचते, उन्हीं कामों को करते करते सारा जीवन गुजर जाता है पर शान्तिका मार्ग नहीं मिल पाता। तो उन योगियोंने ऐसी कौनसी चीज प्राप्त करली है जिसके बल पर वे ६-६ माह तक उपवास कर लेने पर भी सदा प्रसन्नचित्त रहा करते हैं? तो उन्होंने अपने आत्मस्वरूप को पहिचाना, आत्मस्वरूपमें ही दृष्टि रखी जिसके बलपर वे सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं।

मोक्षरुचिका निर्णय—भैया! थोड़ा यह भी सोचना होगा कि हम आपको मोक्ष चाहिये या नहीं। शब्दोंसे तो हर एक कोई कह देगा कि हाँ हाँ मोक्ष चाहिये। भगवान ने मोक्ष पाया, वह मोक्ष मुझे क्यों न मिले? परन्तु मोक्ष स्वरूपका वर्णन करें उसे सुनकर हाँ कह दें तब मोक्षकी जिज्ञासा समझना चाहिये। मोक्ष क्या कहलाता है? केवल आत्मा रह गया। शरीर नहीं, परिजन नहीं, वैभव समागम कुछ भी नहीं, केवल आत्मा ही रह गया उसका नाम मोक्ष है। जो विवेकी पुरुष हैं, जिनका संसार निकट है वे भी मोक्षकी बात सुनकर अपनी अभिलाषा रखेंगे कि हां हमें तो मोक्ष चाहिये। तो मोक्षमें हुआ क्या? केवल आत्मा ही रहा। तो अब उसके भोजनपानका कोई प्रसंग तो न रहा, कोई प्रकारका विकल्प न रहा तो वह मुक्त आत्मा अपने आपमें प्रसन्न रहता है। तो ऐसे ढंगसे भी सोचें कि हम मुक्त बनेंगे और वहां फिर अनन्तकाल तक सदाके लिए भोजन पानका परिहार हो जायेगा। जो बात सदाके लिए दूर हो गई उसे हम क्यों अधिक चाहें ऐसा भी तो अपने चित्तमें सोचा जा सकता है। इन योगीश्वरोंके उपवासकी बात सोच कर और सिद्ध प्रभुके सदा काल निराहार अनाहार रहनेकी बात सोचकर ही अपने आपमें भी कुछ उत्साह बनायें। ये योगीश्वर बड़ी गर्मीके समयमें सूर्यके सम्मुख स्थित होकर आत्मध्यान किया करते हैं, वे अपने ज्ञानसुधारसका ऐसा पान किया करते हैं कि जिस अमृतपानसे वे ऐसा तृप्त रहते हैं कि ऐसी गर्मीमें सूर्यके अभिमुख बैठे हुएमें वे शीतल बने रहते हैं, अमृतपान किया करते हैं। ऐसी गर्मीके समय सूर्यकी गर्मीमें स्थित वास्तविक शूर ऐसे योगियोंकी मैं वन्दना करता हूं।

> बहुविहपडिमट्ठाई णिसिज्जवीरासणेक्कवासीय।
> अणीट्ठिअकडुवदीवे चत्तदेहे य वदामि ॥११॥

नानाप्रतिमायोगस्थ योगियोंको नमस्कार—कहते हैं कि जो बहुत प्रकार के प्रतिमायोगसे स्थित रहते हैं। जैसे कोई यह नियम ले ले कि मैं आज रात्रि भर कायोत्सर्ग मुद्रामें खड़े रहकर ध्यान करके अपना समय बिताऊँगा

अथवा गर्मीके समयमें इस पर्वतपर इस शिला पर इतने पहर तक एक आसनसे ध्यानमें समय लगाऊँगा, ऐसे नाना प्रकारके कठिन तपश्चरणक योगको जो धारण करते हैं ऐसे योगीश्वरों को मैं वंदन करता हूं। जो नाना विशुद्ध आसनोंमें रहकर अधिक समय तक ध्यान किया करते हैं अथवा अनेक योगी एक मृतकासनसे (मुर्देकी भाँति) पड़े हुए ध्यान करते हैं, एक करवटसे लेटे हुए ध्यान करते हैं, जो एकान्तमें बसकर किसीका सहारा न तक कर निरपेक्ष होकर ध्यान करते हैं, जिन्होंने इस ममताको त्याग दिया है, देहसे निराला अपना आत्मतत्त्व जिन्हें विशद ज्ञात हो रहा है, यह हूं मैं इनसे निराला। होता है कोई ऐसा विशुद्ध ज्ञान कि जिस ज्ञान में यह बात समायी रहती है कि यह हूं मैं सबसे निराला एक ज्ञानमात्र। ऐसे ज्ञानमात्र योगीश्वरोंकी मैं वंदना करता हूं।

योगियोंका योग—योगी कहते हैं उन्हें जो अपने अन्तस्तत्त्वमें के योगमें लगते हैं। कहाँ जुड़ना है? अपने आत्मामें। किसे जुड़ाना है? अपने उपयोगको प्राय लोग जानते हैं कि हमारा उपयोग दुकानमें गया, मकानमें गया, घरमें गया। तो यह गया—ऐसा जिसे कहते हैं वही तो उपयोग है। लोग कहते हैं कि मेरा दिमाग घरमें है, वहाँ अपना क्या कुछ रह रहा परमें? अरे वह है एक ज्ञानकी दशा। ज्ञान परकी ओर अभिमुख होकर परमें खिंच रहा है इसको कहते हैं ज्ञान परमें चला गया। तो क्या ज्ञान बाहरमें जाता है? अरे अपना उपयोग ही तो अपना वैभव है, वही अपने में से बाहर दृष्टि करके घटा दिया तो यहाँ घटी आयी कि नहीं? यही उपयोग जब आत्मस्वरूपमें जुड़ जाता है, इस उपयोगका योगस्वभावमें हो जाता है तब यह समृद्धिशाली हुआ। जोड़ देनेपर निधि तो बढ़ती है। उपयोग जब अपने ज्ञानस्वरूपमें ठहरता है तो अपनी समृद्धि बढ़ जाती है। तो अपना उपयोग, अपना अन्त ज्ञायकस्वरूप आत्मामें जुड़े इसका नाम है योग। ऐसे योग जो बनाये रहते हैं उन निर्ग्रन्थ साधुवों को योगी कहते हैं।

सिद्ध और योगी दोनोंकी आराध्यता—साधु और सिद्ध दो ही तो आराध्य हैं। एक तो सिद्ध हो गये, मायने आत्माका प्रयोजन पूर्ण हो गया, मिल गया, अब कुछ करनेको बाकी नहीं रहा, वे तो हुये सिद्ध, जिनकी हम पूजा करते हैं। अरहंतके बाद सिद्ध होते हैं अरहंत भी सिद्ध ही हैं, विकास उनका भी पूर्ण है। और एक होते हैं साधक, जो कि सिद्ध दशाको प्राप्त करनेकी साधना किया करते हैं। इन ही साधकोंका नाम है योगी। संसारमें बस दो ही सारभूत आत्मा हैं। ऐसी वृत्ति ही सार है, परपदार्थोंमें

लगनेका काम तो असार है, उससे आत्माका गुजारा नहीं चलता। अपने आपमें उपयोग जुड़े तो इसमें आत्माकी भलाई है। ऐसे योगी पुरुषोंका मैं मन, वचन, कायकी सभाल करके वन्दन करता हू।

ठाणी मोणवदोए अब्भोवासी य रुक्खमूली य।
धुवकेसमंसुलोमे निप्पडियम्मे य वदामि ॥१२॥

कायोत्सर्गासनयोगीका अभिवन्दन—जो योगी पुरुष कैसे होते हैं उनका कुछ वर्णन इसमें किया है। योगीका अर्थ है आत्माके स्वरूपमें उपयोगको जोड़ने वाला। आत्माका स्वरूप है सहजज्ञानानन्द। इस स्वरूपमें उपयोग जोड़ना अर्थात ज्ञानमें ज्ञान और आनन्दका स्वरूप समाये रहना इसको कहते हैं योग। ऐसा जो कार्य है वह कैसा होता है? उसकी विशेषतायें बतायी जा रही हैं। कोई कायोत्सर्गसे ध्यान कर रहे हैं खडे निश्चल, जैसे बाहुबलि महाराज एक वर्ष तक निश्चल खडे रहे। आश्चर्यकी बात है कि एक वर्ष तक निद्रा भी न लगी, जरा मुडे भी नहीं, बैठे भी नहीं, ऐसा कैसे होगा? तो आजकल भी तो हीन संहननके धारी पुरुषोंमें ऐसे साहसी अब भी पाये जाते है जो ११-१२ घंटे खडे रहकर ध्यान कर सकते हैं, एक दो रात्रि दिन जागरण करते हुए ध्यान कर सकते हैं। जो विशेष उत्कृष्ट संहननके धारी हैं उनकी बात तो अनोखी ही है। तो जो स्थानी हैं, कायोत्सर्गसे खडे हुए हैं ऐसे योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हू।

मौन योगियोका अभिवन्दन—मौन व्रतसे रहने वाले योगी यह योगियों की खास विशेषता है। न रखें वे योगी मौन तो वे बहुत कम बोलते ह और जब बोलते हैं तो हित, मित, प्रिय वचन बोलते हैं। गृहस्थोंको भी तो अपने आत्मस्वरूपमें अपना उपयोग लगानेकी बात रुचा करती है, तो उनको अपना जीवन इतना गम्भीर बनाना होगा कि कम बोलें। और जब बोलें तो दूसरोंके हितमित प्रिय वचन बोलें तो ये योगी अधिकतर मौन व्रतमें रहते हैं। तीर्थंकर जब योगी होते है तब वे केवलज्ञान प्राप्त होने तक तो मौन व्रतसे ही रहा करते हैं। ऐसे भी अनेक योगी हैं जो योगके प्रसगमें एक अपने आपको निरखते है, अपने आपके निकट रहते, अपने ही स्वरूपसे बात करते। ये सब अन्तरङ्ग योग हैं। तो जो मौन व्रतके धारी हैं ऐसे योगीश्वरोंका हम वन्दन करते है।

योग्यविहारी योगियोका अभिवन्दन—जल तटके निकट रहने वाले अथवा आकाशमें विचरने वाले ऐसे योगी एक उत्कृष्ट आत्मबल रखते हैं कि जलके तटपर शीतकालमें यत्र तत्र ठंडके दिनोंमें निष्कम्प होकर विराजें यह उनका बुद्धि बल है, आत्मबल है। और ऐसे ही अनुपम आत्मबलसे

उनके ऋद्धियां उत्पन्न होती हैं जो कि आकाशमें विहार करते हैं, निर्मलता जिनकी स्पष्ट विदित होती है। जो रहते हैं आकाशमें या विहार करते हैं, उनके निर्मलता स्पष्ट विदित हो रही है कि एक इस मायामयी दुनियासे कुछ काम था ही नहीं, तो अब स्पष्ट दिखता है कि आकाशमें विहार करते हैं, ऐसे तपस्वी योगीश्वरोंका मैं वदन करता हूं। वृक्षमूलमें विहार करने वाले योगीश्वर कितने आत्महितमें निष्णात हैं। जैसे कोई पुरुष वृक्षके नीचे रातदिन रहता है तो उसकी कैसी मुद्रा रहती है? गृहस्थ भी अगर कोई कहीं आसरा न होनेसे वृक्षोंके नीचे रहता हो तो उसके कितना परिग्रह है, कितनी खटपट है और उसको १ जगह छोड़कर दूसरी जगह जाना हो तो विकल्प नहीं करना पड़ता। थोड़ा उस वृक्षके नीचे ठहरा। उसको एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे जानेमें कोई तकलीफ नहीं होती है। वह अनायास ही एक वृक्षके नीचेसे दूसरे वृक्षके नीचे चल देता है। अथवा जैसे पक्षीगण रैनबसेरा किया करते हैं, अभी किसी वृक्षपर बैठे हैं उड़कर किसी दूसरे वृक्षपर बैठ गए। उन्हें एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जानेमें कुछ भी तकलीफ नहीं होती है। वे पक्षी अनायास ही उड़ जाते हैं। इसी तरह ये योगीश्वर हैं जो कि जंगलोंमें वृक्षोंमें निवास करते हैं। इन्हें एक जगहसे दूसरी जगह जानेमें रंच विलम्ब नहीं लगता। जब चाहे अनायास ही चल देते हैं। तो लोकमें सारभूत काम एक यही है- अपने आत्मस्वरूपकी सभाल करना, अपने आपके निकट रहकर संतुष्ट रहना। अन्य समस्त परवस्तुओंका परित्याग करें वे योगीश्वर किसी भी प्रकारकी इच्छायें नहीं किया करते।

केशश्मविरक्त श्रीयोगियोंका अभिवन्दन—उनके योगियोंके केश श्मश्रु बाल आदिक भी बढ़ जाते हैं तो वे कितने निस्पृह विदित होते हैं कि जब वे बढ़ गए तो अधिकसे अधिक ४ महीने तक ही रखते हैं। उसके बाद केशलुञ्च करते हैं। यदि किसी साधुको चार माहका पता ही न रहा, ६ माह या एक वर्ष हो गए, तो उतने दिनोंमें उनके बहुत बढ़ जाते हैं, तो बढ़ जानेपर कुछ व्यवहारमें आये हों तो वे उतने बड़े बाल नहीं रख सकते हैं, उन्हें केश लोंच करना होता है। तो उनमें एक कितना उच्च वैराग्य है। भले ही कोई केशलोंच करता है, लोग जुड़ गए हैं, देख रहे हैं, बड़ा साहस बनाकर केशलोंच करे, लेकिन फर्क है उस एकान्तमें केशलोंच करने व लोगोंके बीच केशलोंच करनेमें। यहाँ अनेक लोगोंके बीच केशलोंच करते हुएमें यद्यपि अन्दरसे उतना वैराग्य नहीं है, फिर भी लोगोंको दिखानेके लिए, लोगोंमें अपने वैराग्यका प्रदर्शन करनेके लिए वे थोड़ा कष्ट सहन

करके भी बड़ी जल्दी केशलोंच करते हैं, अपनी मुखमुद्राको प्रसन्न भी दिखाते है, यों उसमें बनावटकी भी अनेक बातें आ जाती हैं, एकान्तमें जो केशलोंच होता है उसमें बनावट नहीं आ सकती है। और उस एकान्त स्थानमें केशलोंच करनेमें वीतरागभावोंकी पुष्टि होती है। तो ऐसे योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हू।

निष्प्रतिकर्म योगियोंका अभिवन्दन--ये योगीश्वर निष्प्रतिकर्म होते हैं। उनके कोई शृङ्गार नहीं। उन योगीजनोंको जब किसीसे कोई प्रयोजन नहीं रहा तो वे घरमें कहाँ तक रहें, परिजनोंमें भी राग न रहेगा तो वे परिजन क्या उन योगीजनोंके साथ चिपके रहेंगे, वस्त्रोंमें भी उनके राग नहीं रहा तो वस्त्र भी उनसे चिपके न रहेंगे। राग न रहनेके कारण निवृत्ति होती है तो वहाँ वही निर्ग्रन्थ मुद्रा रह जाती है। उनकी मुद्रामें कोई शृङ्गार नहीं, वे निष्प्रतिकर्म हैं। वे योगीश्वर इतना भी नहीं करते कि अगर देहमें मैल चढ़ा हुआ है तो खूब मलकर उस मैलको छुटाते हों। उनको शरीरके साफ रखने की दृष्टि ही नहीं है। वे जानते हैं कि यह शरीर तो एक दिन जला दिया जायगा, इसकी अधिक खुशामद करनेसे क्या लाभ है? हाँ चूँकि इस शरीरसे धर्मसाधनाका कुछ काम लेना है इसलिए इसकी थोड़ीसी सभाल रखना चाहिए, पर इसे तैल साबुन क्रीम पाउडर वस्त्राभूषण आदिसे सजाना, यह तो एक मूढ़ताभरी बात है। तो जहाँ इस शरीरको सजानेकी कोई आवश्यकता ही न रही वहाँ ठूठ जैसा पड़ा है। जैसा चाहे मलिन शरीर हो गया हो तो पड़ा रहने दो जैसाका तैसा, उससे तो यह मैं आत्मा बिल्कुल निराला हू। इस देहको छोड़कर तो जाना ही है। उस देहसे उन्हें ममता नहीं है, ऐसा उनका अन्तरङ्गभाव स्वच्छ है, जिनको लगन लगी है अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करते रहनेकी उनको ये सब बातें फीकी लगती हैं। तो जो योगीजन शृङ्गाररहित है उनका मैं वन्दन करता हू।

जलमललित्तगत्ते वंदे कम्ममलकलुसपरिसुद्धे।
दीहणहमसुलोमे तवसिरिभरिये णमसामि ॥ ३॥

देहविरक्त योगियोंका अभिवन्दन--ऐसे योगीश्वरोंको नमस्कार हो जिनका दर्शन करनेसे ऐसा भाव बनता कि जिन भावोंके कारण भव भवके पातक कट जाते हैं। भला इस लोकमें किन जीवोंका सहारा लिया जाय कि पाप कट सकें। जो खुद पाप करते हैं, जो खुद मोह रागद्वेषमें लिप्त हैं उनका सहारा लेनेसे वह भाव नहीं बन सकता जिसका सहारा लेने से पाप कटा करते हैं। माना कोई इष्ट पुत्र मित्र हैं, उनका सहारा तकनेसे,

उनमें स्नेह रखनेसे, उनकी सेवासे, उनके सहवाससे इस जीवको शान्ति कहाँ प्राप्त होती है। अशान्ति ही बढ़ती है? रागमें किसी अशान्तिके रूप को ही अज्ञानीजन शान्ति मान लेते हैं। रागमें क्षोभ ही होता है और उस क्षोभमें ये विषय साधन वाला क्षोभ है इस कारणसे शान्ति माना है। वस्तुतः शान्ति वहाँ है जहाँ रंचमात्र भी क्षोभ नहीं है। तो जो क्षोभ के पुञ्ज हैं, विषयकषायके जो निधान हैं, ऐसे स्त्री पुत्र मित्रोंका सम्पर्क रखनेसे, उनका सहारा तकनेसे इस आत्माको क्या लाभ मिलेगा? ऐसे योगीश्वरोंकी शरणमें कोई जाय तो वहां लाभ मिलेगा। योगी जलमल आदिकसे लिप्त हैं उनका शरीर तो ऊपरसे मलिन किन्तु रत्नत्रयधारी आत्माके रहनेके कारण पवित्र है, ऐसे पवित्रआत्माके गुणोंपर दृष्टि रखकर जो उनकी सेवा उपासना करता है उसे शान्ति प्राप्त हो सकती है।

शान्ति और अशान्तिकी निजभवाधीनता—भैया! शान्ति और अशान्ति के लिए केवल एक दिलकी ही तो गति करना है। विषयकषायोंकी ओर दिल भेजा जाय तो अशान्ति हो गई, और नहीं भेजता तो क्या गुजारा नहीं चलता? चलता है। जैसे कल्पनामें समझ लो, किसी इष्टरूपके देखने में समय गुजरा, आकर्षण किया, विकल्प मचाये, दीनता बनी, पराधीनता बनी और ऐसा योग न जुड़ा होता, किसी योगीके निकट बैठे होते, और अपना मन एक विशुद्ध ज्ञानमें रहता तो क्या समय न निकल सकता था? अरे उससे और अच्छा गुजारा होता है। लेकिन मोहमें जीव यह मानते कि ऐसा विषय मिलाये बिना मेरा गुजारा ही नहीं। इतिहासोंमें या आजकल भी जो कुछ लोग ऐसे हैं कि जिन्होंने यह ठान लिया कि अमुक कामिनीके बिना मेरा गुजारा ही नहीं। जैसे किसीका चित्रपट मिला तो वह यह ठान लेता कि मेरा तो पाणिग्रहण इससे ही हो और अन्नजल छोड़ देता है और वह समझता है कि ऐसा मिले बिना प्राण टिक ही नहीं सकते। और कल्पना करो कि यदि आपका उस इष्टसे संयोग न जुड़ा होता तो क्या ठीक ठीक समय न गुजरता? तो ऐसे योगियोंके निकट बैठनेसे दिल बदलता है, उपयोग शुद्धतत्त्वकी ओर रहता है तो उनका समय बहुत अच्छा निकलता है। ऐसे योगीश्वरोंका बाहरमें शरीर देखो तो अत्यन्त मलिन शरीर है, फिर भी वे पवित्र आत्मतत्त्वमें अपना उपयोग बसाये रहते हैं। धन्य है उन योगीश्वरोंको जिनके भीतर ही भीतर ज्ञान बड़ी पैनी धारसे चलकर ऐसा प्रवेश कर गया कि बस निजज्ञानप्रकाश ही समा गया है, वही जिन्हें प्रिय लगता है और प्रकट यह सब असारता जान ली गई है, ऐसे योगीश्वरोंकी उपासनासे शान्ति प्राप्त होती है।

प्रक्षालितकर्मकलङ्क योगियोका अभिवन्दन—यहां जिनको कुछ बताना चाहते हैं वे सब यह शरीर हैं, असार हैं, मिट जाने वाले हैं। और जो सही चीज है, परमार्थ आत्मा है उसे यहां कोई जानता नहीं। किसको क्या बतायें, और परमार्थ जो स्वरूप है उसे कोई आत्मा जान ले, मान ले तो अन्तस्तत्त्वको मानकर फिर वे किसीको कुछ बतानेका भाव भी नहीं कर सकते, विकल्प भी उनके नहीं होता। अहो, यह काम न किया इस जीवने और तो सारे असार काम कर डाले, धन जोड़ लिया तो क्या है, आखिर मरण तो होगा ही, फिर क्या रहेगा अपने पास सो तो बतावो। सबसे बड़ी विपत्ति है यह अज्ञान। बाह्यकी ओर आकर्षण किया। जिसे इज्जत समझा है लोगोंने उस इज्जतको तो धूलमें मिला देना होगा, तब अपना कल्याण बन सकता है। उसमें रखा क्या है। किसीने कुछ समझा, किसी ने कुछ जाना तो क्या वह प्रभु है? अरे जिन्हें हम अपने विषयमें कुछ समझाना चाहते वे तो हमसे भी अधिक विषयकषायोंसे मलिन जीव हैं। उनसे मेरे आत्माका क्या सम्पर्क? तो जो योगीश्वर होते हैं वे इन कर्म कलंकोंसे रहित होते हैं। कलंक यही तो हैं रागद्वेषआदिक विकल्प। आत्मामें कलंक लदा है रागद्वेष, कल्पना, इच्छा, चिन्ता चाह आदिकका। इस कलंकमें रहते हुए आत्माको चैन नहीं है। अब यह निमित्तनैमित्तिक सम्बंधकी बात है कि ऐसे रागद्वेषमोहका कलंक छाया हो आत्मापर तो कार्माणवर्गणा कर्मरूप बनती है और उनके उदयमें फिर ऐसा ही रागादिक छाता है। हम लोग उन कर्मोंको तो गाली देते हैं जिनकी शकल सूरत नहीं मालूम, केवल पुस्तकोंमें पढ़ रखा है—कार्माणवर्गणायें होती हैं अथवा युक्ति अनुमानसे निर्णय बना लिया है ऐसे उन कर्मोंको तो गाली देते हैं, पर यह नहीं निरख रहे कि जो तन्मय बनकर तत्कालमें तादात्म्यरूपसे रहकर मेरेको बरबाद कर रहे हैं, वह है असलमें कर्मकलंक। जिस उपयोगमें रागद्वेषमोहभाव छाया हुआ होता है उस उपयोगमें कोई शुद्धवृत्ति तो नहीं ठहर सकती शाश्वत दूरमात्र है इतना भी सम्भव नहीं है, इन विषयकषायके विकल्पोंके निकट थोड़ा ज्ञानप्रकाश यह आत्मा बनाये रहे। शत्रु शत्रु अगर लड़ते हैं तो दो शत्रुवोंकी सत्ता तो है परस्परमें, मगर ये विभाव ऐसे शत्रु हैं कि विषयभाव है तब शुद्धभाव नहीं। और जब शुद्धभाव है तब विषयभाव नहीं। हां, अंशोंकी दृष्टिसे तो यह निर्णय बताया जा सकता है कि कितने अंशमें कषाय है, कितने अंशोंमें विषयकषायोंकी मलिनता है और कितने अंशोंमें शुद्धता है, पर विषयभाव और शुद्धभावका साक्षात् विरोध है, ऐसे कर्मकलंकोंको जिन्होने दूर किया है

ऐसे योगीश्वरोंको नमस्कार करता हू ।

वृद्धकेशश्मश्रू नख व तपःश्रीभरित योगियोंका अभिवन्दन– योगी ऐसे परमविरक्त हैं कि जिनके नख बाल आदिक बहुत बड़े हो गए हैं, पहिले छंदमें बताया था कि जिन योगियोंके केश बढ़े हो गए हैं, वे ऐसे ध्यानमें रत रहे कि ४-६ माह तक केशलोंच न किया। केश मूँछ दाढ़ी आदिक बढ़ गए तो उनके उन बढ़े हुए बालोंकी महिमा नहीं गायी गई, किन्तु उनका ऐसा ज्ञानस्वभावमें उपयोग जुड़ा कि जिस ज्ञानयोगमें उनको बाहरमें कुछ भी सुध बुध नहीं है, नख बढ़े हैं, केश बढ़े हैं, उनको सुनकर हम भीतर की स्वच्छतापर दृष्टि डालते हैं ऐसे शुद्ध भाव वाले योगीश्वरोंको मैं नमस्कार करता हूं, जो तपश्रीसे भरित हैं—तप है एक लक्ष्मी। लक्ष्मी अगर प्रसन्न हो जाय अर्थात् निर्मल हो जाय तो कहते हैं कि वह समृद्धिशाली बन जाता है। लक्ष्मी प्रसन्न हो जाय तो आत्माको सारे सुख मिलेंगे यह बात बिल्कुल सही है मगर समझें तो सही कि इसका अर्थ क्या है? लक्ष्मीका अर्थ क्या है? जो आत्माका चिन्ह है, लक्षण है उसे लक्ष्मी कहते हैं। ज्ञानलक्षणको लक्ष्मी कहते हैं। ज्ञानलक्ष्मी जिनकी प्रसन्न है, जिनका ज्ञान निर्मल हो गया है, जिनकी अन्तरङ्गलक्ष्मी प्रसन्न हो गई है उनको सर्वसमृद्धियाँ मिल गई। दुःख आकुलता, चिन्ता, विकल्प आदिक यदि होते हों तो चाहे किसीके अरबोंकी भी सम्पत्ति हो, पर उसे समृद्ध नहीं कह सकते। खुद तो वह बड़ा दुःखी है। जो ज्ञानादिक लक्ष्मीसे चढ़े बढ़े हुए हैं ऐसे योगीश्वरोंको मैं नमस्कार करता हू।

णाणोदयाहिसित्ते सीलगुणविहूसिये तवसुगंधे।
ववगयरायसुदड्ढे सिवगइपहणायगे वंदे ॥१४॥

ज्ञानोदयाभिषिक्त योगियोंका अभिवन्दन—ऐसे योगीश्वर जो ज्ञानके उदयसे अभिषिक्त है, अर्थात् ज्ञानजलसे जिनका अभिषेक हुआ है, अभिषेक होनेसे अनेक बातें मर्मको विदित होती हैं। अभिषेक होनेसे शीतलता आती है तो संसारके विकल्पोंका जो संताप छाया था तो यह ज्ञानभाव आया तो शीतलता आ गयी। उपयोग बनाकर परख लीजिये। जब ज्ञानमें केवलज्ञानका ही स्वरूप रहता और कोई न बसा होता, किसी की कल्पना नहीं होती, उस समय तो यह आत्मा एक बादशाह है, नायक है, प्रभु है। अब इसके कौनसी कल्पनायें रह गयीं, कौनसा विकल्प रह गया? जब ज्ञानमें ज्ञान समाया है तो उसे सब कुछ मिल गया। यही है सर्वार्थसिद्धि। सर्वार्थसिद्धिमें रहना है तो ज्ञानानुभूतिमें रहे। ज्ञानानुभवके समय सर्व अर्थोंकी सिद्धि हुआ करती है, यही है अनुदिश धाम। जो अपने

आपकी एकमात्र दिशा है उस दिशाके अनुसार जिनका उपयोग बना है उसको प्रणाम हो। दिशा लक्ष्य को भी कहते हैं। लक्ष्यके अनुसार जो उपयोग बनता है वह उपयोग है अनुदिशधाम याने सर्वोत्कृष्टधाम। जिसका नियम है कि एक दो भवके बाद हो निर्वाण प्राप्त कर लें। ऊर्ध्वलोकमें बसने वाले अनुदिश सर्वार्थसिद्धि व अन्य अनुत्तर विमानसे मुक्ति नहीं मिलती। एक भव अथवा दो भव धारण करके मुक्त होते हैं, मगर अपने ही उपयोगके द्वारा अपनेमें ही बना लिया गया अनुत्तरधाम जिससे उत्कृष्ट और कुछ नहीं है उससे तो इसी भवमें मुक्त होना है, तो इन सब ज्ञानाभिषेकोंसे शीतलता अनुभूत की गई है। दूसरे अभिषेक से स्वच्छता प्रकट होती है। आत्माकी स्वच्छता यही है कि एक विशुद्ध रागद्वेषरहित सच्चा ज्ञान बना रहे। परवाह न करें कि ये परिजनके लोग क्या करते हैं? अरे सभी जीव अपने अपने भाग्यके अनुसार अपनी-अपनी व्यवस्था बनाते हैं। यह पुरुष तो सबका नौकर चाकर बन रहा है? इसे खुदको क्या मिलता है? धन जोड़कर रखा तो खुदको उससे क्या मिलना है? एक विकल्प विडम्बना बनायी जा रही है। परिजन बहुत अच्छे मिल गए तो उससे खुदको क्या मिलना है? वे परिजन क्या हित कर देंगे? बल्कि वे स्नेहका बन्धन बढ जानेसे बरबादीके ही कारण बन सकते हैं। इस मोहका तो परिहार किये बिना आत्माका गुजारा हो ही नहीं सकता, और परिजनका ही मोह छोड़नेकी बात नहीं, दुनियाके सभी परभावोंके मोह छोड़नेकी बात है। इन्द्रियका व्यापार बंद किया, मनकी दौड़ समाप्त की, सबके हाथ जुडे, हाथ जुड़नेके मायने हाथ जोड़ना नहीं, किन्तु इनमेंसे मेरे लिए कोई निमित्त बनता है तो क्षोभका निमित्त बनता है। पर विशुद्ध आनन्द का अनुभव करनेका कोई निमित्त नहीं बनता इसलिए हे सब परपदार्थ चेतन अचेतन, तुम अपने ही घर रहो, तुम्हारे हाथ जोड़ूं। मैं अब अपने निजस्वरूपमें बसूंगा, जिसके ऐसा ज्ञानका उदय चल रहा है। स्वच्छता तो उन महापुरुषके है। ऐसे स्वच्छ और शीतल शुद्ध आनन्दका अनुभव करने वाले योगीश्वरोंकी मैं वन्दना करता हूं।

शीलगुणविभूषित योगियोंका अभिवन्दन—बाह्य आभ्यंतर परिग्रहसे रहित ज्ञानध्यान तपश्चरणमें तल्लीन एक निजशुद्धज्ञानस्वरूपकी अपने आपकी प्रतीति रखने वाले योगीजन शीलगुणसे विभूषित होते हैं। आत्माका श्रृङ्गार शीलगुण है। शील कहो या गुण कहो, एक ही बात है। शील तो है एक व्यापकरूप। शीलस्वभाव सहजभावमें रहना और गुण है भेदस्वभावरूप। ज्ञानदर्शन चारित्र आनन्द गुणोंसे विभूषित रहना, अथवा

शीलसे विभूषित है कि इनकी निरन्तर दृष्टि आत्माके ज्ञानस्वभावपर रहती है। किसी भी समय इसका विस्मरण नहीं करते। इसका निरन्तर स्मरण ही जीवका शरण है। सो यही शरण वे गहते रहते हैं और गुणोंसे विभूषित होने से चारित्रमें विशेषता आयी। गुणोंके शुद्ध विकास होनेमें ही उनका शृङ्गार है, ऐसे शील और गुणोंसे विभूषित योगियोंको मैं वन्दन करता हूं।

तप सुरभित योगियोंका अभिवन्दन—जो तपस सुगंधित है, तपश्चरण करनेसे शारीरिक गंधमें भी विशेषता होती है, आत्मीय सुरभि तो उत्तम होता ही है। पर तपश्चरणके प्रतापसे रोगादिक नहीं रहते और कुछ अतिशय भी उत्पन्न हो जाते हैं। जब तपश्चरणके प्रतापसे ऋद्धियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं, शारीरिक सुगंध आदिक उत्पन्न हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जहाँ ऋद्धियाँ बतायी जायेंगी कि जिनका मल भी [illegible] औषधि बन [illegible] है, उसका स्पर्श हो जाय तो रोग दूर हो जाये इसमें अत्युक्तिकी बात भी नहीं है। तपश्चरणकी ऐसी महिमा है कि उनका शरीर, उनका रग रग जीवोंके रोगके दूर करनेका निमित्त हो जाता है, तो ये योगीश्वर तप सुगंध वाले हैं। अन्त.वातावरण शान्तिप्रद है इससे तो वे सुगंधित हैं ही. पर देह गंध भी उनकी सुरभित हो जाती है। ऐसे एक ज्ञानयोगमें उपयोग रखने वाले योगिजनोंको मैं वन्दन करता हूं।

दृढ़तम स्वोपयोगी योगियोंका अभिवंदन—ये राग दूर होनेसे अपने आपमें बहुत दृढ़तम हैं, कितने भी उपसर्ग आयें, विघ्न आयें, पर अपने स्वरूपसे चलित नहीं होते। देव, इन्द्र, चक्री आदिक उन योगियोंके प्रति क्यों झुकते हैं? उनके चरणोंमें क्यों झुकते हैं? उनके चरणोंमें क्यों वन्दन करते हैं? उनके आत्माकी विशेषता है। धन वैभव या ऊपरी इज्जत की विशेषता होने से कोई झुकता नहीं, और अगर धन वैभव आदिक विशेषताओंके कारण कोई झुकता भी है तो वह अन्तरङ्गसे नहीं झुकता। जिसका स्वार्थ पूरा सधता है वह हृदयसे कुछ चाहता है किसी धनिकको और जिसमें स्वार्थ बाधा आती है, स्वार्थसिद्धि नहीं होती हैं। वह धनिकों के प्रति झुकता तो है पर पीछेसे उनकी निन्दा करता रहता है, पर जिनका अन्त तत्त्व विशुद्ध हो [illegible] या है ऐसे ये योगीश्वर, इनकी ओर कोई झुकेगा तो विनयसे ही और अन्तर्भावसे झुकेगा। तो ये समस्त भक्तसमूह जो योगिराजके चरणोंमें आते हैं उसका कारण यह है कि उनमें राग नहीं है, और राग न रहनेसे ये स्वयं सुदृढ़ हैं जिनका चित्त अस्थिर है, जो अपने आपमें दृढ़ नहीं रह सकते इसका कारण है कि उनके विषयोंका राग लगा

हुआ है, उसकी धुन रहने के कारण किसी एक बातमें स्थिरता नहीं रहती। ये योगीश्वर रागद्वेषसे रहित हैं अतएव अपने आपमें सुदृढ हैं, ऐसे दृढ़तम उपयोग वाले योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हूं।

शिवगतिपथप्रणायक योगियोंका अभिवन्दन ये शिवगतिके प्रकृष्ट नायक हैं। नायक कहते हैं ले जाने वालेको। ले जानेमें खुद भी जाना जाना पडता है और दूसरे लोग भी उसके साथ रहते हैं। जो स्वयं मोक्ष-मार्गमें चले और दूसरोंके मोक्षमार्गमें चलने के निमित्त बने उसे नायक कहते हैं। तो ये योगीश्वर शिवगतिके मार्गके नायक हैं। इन्होंने मोक्षकी गली देखी है इसलिए वे निर्विघ्न होकर उस गलीसे चल रहे हैं। जैसे यहाँ जिन्होंने जो रास्ता देखा हो वे वहाँ निःशंक होकर बढते चले जाते हैं। इन योगीश्वरोंने मुक्तिमंदिरकी गली देखी है सो ये चल रहे हैं। और जो लोग मुक्तिके अभिलाषी हैं वे उन योगीश्वरोंके उपदेशके द्वारा उनकी सेवा करते हुए उनके पीछे चलते रहते हैं। तो ये योगीश्वर मोक्ष-मार्गके नायक हैं, ऐसे मोक्षमार्गके नायक को हमारा मन, वचन, कायसे वन्दन हो।

उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे य घोरतवे
वंदामि तवमहंते तवसंजमइड्ढिसंजुत्ते ॥१५॥

तपस्वी योगियोंका अभिवन्दन—जो उग्रतपके धारक हैं, बडे कठिन जो व्रतोंके धारक हैं, जैसे एक उपवास करके आहार लेना दो उपवास करके लेना, ३ उपवास करके लेना, ऐसा बढ़ाते जाते हैं तो इस तरहकी प्रक्रियावो वाले, इस तरहसे कठिन-कठिन अनशन आदिक जो तपश्चरण हैं ऐसे उग्र तपश्चरण करके भी जिनके शरीरकी दीप्ति कम नहीं रहती प्रत्युत बढ़ती जाती है और न अपने आत्माके किसी हितकार्योंमें व आवश्यक कार्योंमें हीनता आती है, ऐसे दीप्ततप वाले योगीश्वर हैं। जो तपश्चरणसे खूब और तपश्चरणके द्वारा अपने अन्तरङ्ग चैतन्यस्वरूपमें भी जाते हैं. प्रताप बढता रहता है, ऐसे तप्ततप योगीश्वर बड़ा तपश्चरण करके भी जिनके शरीरमें हीनता नहीं आती, शीलब्रह्मचर्य आदिक गुणोंमें किसी भी प्रकार हीनता नहीं आती, ऐसे बडे तपश्चरणके धारण करने वाले योगीजनोंका मैं वन्दन करता हू, जो तप और संयमके कारण आत्मसमृद्धिसे संयुक्त हैं। आत्मामें अनन्त शक्ति है इसमें रंचमात्र भी आश्चर्य नहीं। जो आश्चर्यो त्पादक कार्य हैं—जैसे आकाशमें गमन करना, छोटा बड़ा शरीर बनाना, पर्वतोंके भीतरसे विहार करना आदिकके समस्त कार्य तप और संयमसे उत्पन्न होते हैं, ऐसे अनेक अतिशयोंसे सम्पन्न योगीश्वरों को मैं नमस्कार

करता हू।

आमोसहिए खेलोसहिए जल्लोसहिए तवसिद्धे ॥
विप्पोसहीए सव्वोसहीए वदामि तिविहेण ॥१६॥

सर्वौषधिरूप योगियोंका अभिवन्दन—जिनके अङ्ग मल आदिके छूने मात्रसे रोग दूर हो जाता है ऐसे योगीश्वर जिनका ध्यान तप इतना बड़ा है कि वे यदि किसी पर हाथ रख दें, किसी रोगी को छू लें तो उनके छूने मात्रसे वे रोग दूर हो जाते हैं। यह बात मोही जनों को, आत्मस्वरूपसे अपरिचित जनोंको सन्देहजनक है लेकिन ऐसी ऋद्धियां हो जाना, ऐसे अतिशय हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उनके छूनेमात्रसे अनेक प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। उनके कफ, थूक, मलका भी स्पर्श हो जाय तो भी रोगियोंका रोग दूर हो जाता है। ऐसा पवित्र आत्मा यह योगी होता है। ज्ञानयोगके धारी साधु पुरुषोंके जिनके आत्मतत्त्वकी विशुद्धिके प्रतापसे इस शरीरके ऐसे मल भी औषधिरूप बन जाते हैं। जिन्हें आत्मस्वरूपका कुछ भान है वे अमूर्त चिदानन्दस्वरूप आत्मतत्त्वकी बार बार सुध लिया करते हैं। उनमें उस आत्मतत्त्वकी आराधनाके कारण अतिशय उत्पन्न हो जाया करते हैं। जिनका पसीना भी किसीको छू जाय तो रोगियोंका रोग दूर हो जाता है, ऐसे तपश्चरणमें कुशल योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हू। उनके शरीरकी स्पर्श की हुई वायु भी रोगीके लग जाय तो रोगियोंका रोग दूर हो जाता है। यद्यपि रोग दूर होनेमें उनके पुण्यका उदय कारण है, पर जैसे औषधि सेवन करने से रोग दूर हो जाते हैं तो अतरङ्ग कारण तो उनके साताका उदय है लेकिन औषधिका भी निमित्त होता है इसी प्रकार यद्यपि उन रोगियोंके रोग दूर होनेमें उनके साताका उदय ही कारण है लेकिन इन योगीश्वरोंका स्पर्श, इनका मल, इनके शरीरका पसीना आदिक निमित्त हो जाते हैं तो ऐसे परमपावन योगीश्वरोंको मैं मन वचन, कायसे वन्दन करता हू।

अमय महावीरसप्पि मवीए अक्खिणमहाणसे वदे।
मणवचिकायबलिणो य वदामि तिविहेण ॥१७॥

आहारातिशय ऋद्धिसम्पन्नयोगियोंका वन्दन—तपश्चरणके योगसे ऐसी समृद्धि जग जाती है कि यदि विषमिश्रित भोजन भी किसीके द्वारा इन योगीश्वरोंके हाथमें आ जाय तो वह भी अमृतरूप परिणम जाता है। जितने ये अन्य देशोंमे शृङ्गार विशेषण आदिक लोकमें माने जा रहे हैं इन सबके कुछ मर्म हैं। लोक प्रसिद्धि है कि महादेवने विष पिया और वह अमृत बन गया। वे महादेव ये योगिराज ही तो हैं। ये महादेव भी

पहिले निर्ग्रन्थ मुनि ही तो थे, इनमे अनेक अतिशय भी उत्पन्न हो गए थे, दशम विद्यानुवाद सिद्ध कर रहे थे उस समय विद्यामें मोहित होकर ये आगे न बढ सके, किन्तु अतिशय कुछ बढ़ा चढा हो गया था। ऐसा भी अतिशय योगियोंमें हो जाता है कि विष मिश्रित भोजन भी यदि इन योगियोंके हाथमें आ जाय तो वह अमृत बन जाता है। कोई कड़ुवा भी भोजन हो तो उन योगीजनोंके हाथ पर आने पर ही मधुर हो जायेगा, रूखा भी भोजन हो और वह इन योगीश्वरोंके हाथ पर आ जाय तो दूध घी आदिककी तरह मधुर बन जाता है। तो यह बात अत्युक्ति वाली नहीं है। आत्मदर्शनकी धुनि रखने वाले नाना परिषह उपसर्गों पर विजय पाने वाले योगियोंके विशुद्धदृष्टि होनेके कारण तपश्चरणमें इतना अतिशय हो जाता है कि ये घृतरस आदिक संयुक्त पदार्थ बन जाते हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ भावोंसे भी ऐसी बात बन जाती है। जब भाव निर्मल हो और भक्तिपूर्वक इन्हीं योगिराजोंको आहारदान किया जा रहा हो तो भावोंकी निर्मलता समताभावके कारण और विशेषभक्तिके कारण भोजन रूखा हो तो भी बहुत मीठा मालूम देता है। यदि कोई रूखा सूखा भोजन हो तो वह भी उन योगियोंके हाथमें आने से घी दूध आदिक की भाँति स्वादिष्ट और शक्तिसम्पन्न हो जाता है। जिन योगीश्वरोंकी इतनी महिमा है यह महिमा अन्तरङ्ग सामर्थ्यको बताने वाली है, कहीं ये इस कारण वंदनीय नहीं हैं कि ये भोजन करते हैं तो घी दूध जैसा स्वाद आने लगता है। ऐसे अतिशय जिस बल पर हुए हैं उस आन्तरिक तपश्चरण सत्य ज्ञान योगकी बन्दनाकी जा रही है। ये योगीश्वर अक्षीण महान ऋद्धि से सम्पन्न हैं। जिस रसोईमे ये योगीश्वर आहार करले उस रसोईका आहार कितने ही लोग कर जायें पर कम नहीं होता। ऐसे अक्षीण महान् ऋद्धिके धारी योगीश्वरोंकी मैं वन्दना करता हूं।

योगबलातिशयसम्पन्न योगियोंका वन्दन—ये योगीजन विद्वज्जनोंद्वारा वन्दनीय होते हैं। मनोबल इतना बढ़ा है कि समस्त द्वादशांगके अर्थ का अन्तमूहूर्तमें ही चिन्तवन कर जाते हैं। द्वादशांगश्रुत बहुत विस्तृत है। जितने ' ाज शास्त्र पाये जा रहे हैं धर्मसम्बन्धी वे सब शास्त्र किसी एक ही अंगके बराबरी नहीं कर पाते हैं। एक पदमे हजारों लाखों तो श्लोक समा जाते हैं। जो पदका प्रमाण है और ऐसे-ऐसे करोड़ों पदोंका एक-एक अंग एक-एक पूर्व होता है। तो आप अन्दाज कर सकते कि ११ अग १४ पूर्व अन्य भी १२वें अगके भेद और अन्तर्बाह्य इन सब श्रुतोंका प्रकरण कितना बड़ा है लेकिन इन समस्त श्रुतोंका चिन्तन अन्तमुहूर्तमें कर लें

ऐसा मनोबल योगियोंको प्राप्त होता है, वचनबल भी इतना महान है कि उस समस्त श्रुतको अन्तर्मुहूर्तमें बोल लें। बोल लेंगे पर वह सब अतिगूढ़ ध्वनि है। जैसे कोई पुरुष किसी स्तवनको एक घंटेमें पढ़ता है तो कोई आध घंटेमें ही पढ़ ले कोई १५ मिनटमें ही पढ़े और यदि वचनोंसे नहीं बल्कि अन्तर्जल्पसे भीतर ही भीतर कोई पढ़े तो वह कुछ ही मिनटोंमें पढ़ सकता है। यह तो बिना ऋद्धि वालोंकी बात है, जिन्हें वचनबलकी ऋद्धि प्राप्त हुई है वे समस्त द्वादशांगको अन्तर्मुहूर्तमें कह सकते हैं। कुछ अन्दाजा भी अपने में बना सकते। आप जो विनती पढ़ते हैं उसे जरा जोरसे खूब रागमें पढ़ें तो काफी समय लगता है, यदि उसे बिना रागके धीरे-धीरे पढ़ें तो कुछ कम समय लगता है, यदि मन ही मनमें पढ़े तो बहुत ही कम समय लगता है। तो फिर जो मनोबल वचनबल आदि ऋद्धिके धारी योगीश्वर हैं वे तो समस्त द्वादशांगको अन्तर्मुहूर्तमें, बोल लेते हैं। उन योगीश्वरोंके कायबल इतना प्रकट है कि बड़े-बड़े चक्रियों की सेनाको भी परास्त कर दे, पर वे योगी अपने कायबलका प्रयोग नहीं करते; कुछ प्रयोजन ही नहीं है अपने कायबलका प्रयोग करनेका। उन योगीश्वरोंके इतना कायबल प्रकट हुआ है कि बड़े-बड़े चक्रवर्तियोंकी सेनाको भी परास्त कर दें ऐसे तीन योगोंके बलऋद्धिसे सम्पन्न योगीश्वरोंको मैं मन, वचन, कायकी सभालकर वन्दना करता हू।

वरकुट्ठबीयबुद्धि-पदणु‌सारीय भिण्णसोदारे।
उग्गहईहसमत्थे सुत्तत्थविसारदे वंदे ॥१८॥

कोष्ठऋद्धि एवं बीजऋद्धिके धारक योगियोंका वन्दन— जिनको कोष्ठ बुद्धिकी ऋद्धि प्राप्त हुई है, जैसे कोठेमें जितने धान भर दिया, ताला लगा दिया तो वे उतने ही धान बने रहेंगे, जब खोलो तब उतने ही निकलेंगे, इसी प्रकार जिसने जितना ज्ञानार्जन किया है जितना ज्ञान प्राप्त हुआ है उसमें कम न होगा। कितने ही वर्ष व्यतीत हो लें पर ज्ञानमें कमी न आ सकेगी, ऐसी ऋद्धिको कोष्ठर धान्योपम ऋद्धि कहते हैं। अभी हम आप कुछ भी अध्ययन करें तो एक दो वर्ष हो उसका अभ्यास छोड़ देनेपर कमी आ जाती है पर कोष्ठऋद्धिसम्पन्न योगीश्वरोंके जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें कभी कमी नहीं आ सकती है, जिनके बीजऋद्धि उत्पन्न हुई है, जितना वह ज्ञान अर्जित करता है उससे कई गुणा उसका ज्ञान कुञ्जीरूपसे बढ़ता रहता है। जैसे आजकल कुञ्जीरूप पठन होता है तो जो कुछ पढ़ा दिया गया उसके बाद कुञ्जीसे वहनसे अपठित विषयों का भी अर्थ लगाया जा सकता है. इसी प्रकार जिनको बीजऋद्धि उत्पन्न

होती है वे जो कुछ सीखते हैं उससे उनका ज्ञान कम नहीं होता बल्कि कुञ्जीरूप बढ़ता रहता है, ऐसे बीजऋद्धिधारी योगीश्वरोंकी मैं वन्दना करता हूं।

पदानुसारी भिन्नश्रोतृत्व सूत्रार्थऋद्धिके धारक योगियोंका अभिवन्दन—एक पदानुसारीऋद्धि होती है। उस श्रुतमें किसी भी बीचकी जगहका कोई पद बोल दिया जाय तो वे आगे और पीछेके प्रसगके पदको भी जान जाते हैं। जैसे परीक्षाओंमें कभी ऐसा प्रश्न आता कि श्लोकका अन्तिम चरण या मध्यका या प्रारम्भका चरण बोल दिया और उस पदको पूरा करनेके लिए कह दिया तो उसके पूर्व और उत्तर पदकी पूर्ति कर दी जाती है, ऐसे ही वे योगीश्वर किसी जगहका कोई पद बोल दिया जाय तो वे उसके आगे पीछे के पदोंको सारे प्रकरणोंको जान जाते हैं, ऐसी पदानुसारी ऋद्धि उन योगीश्वरोंमें होती है, ऐसे ऋद्धिधारक योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हूं। एक भिन्न श्रोतृत्वकी बुद्धि होती है। चाहे कहीं लाखों आदमियों का जमघट हो, चाहे किसी चक्रवर्तीका कटक ही क्यों न हो, वे सभी लोग शब्द बोल रहे हों, पशु पक्षी भी बहुत बहुत बोल रहे हों पर ऐसे कोलाहलमें भी एक-एक व्यक्तिके एक एक जीवके शब्दोंको भिन्न भिन्न समझ लेना, सुन लेना, यह है एक ऋद्धि, ऐसी भिन्न-भिन्न परख करने वाले पैनी बुद्धिसहित योगीश्वरोंको मैं वन्दन करता हूं। वस्तुभावके सम्बधमें जिनका ज्ञान उत्कृष्ट है, जो सूत्रोंके अर्थमें निपुण हैं, अनेक सूत्र होते हैं जिनमें विभिन्न अर्थ बसे होते हैं, उनके यथार्थ अर्थ के लगानेमे जिनकी निपुणता है ऐसे सूत्रार्थविशारद योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हूं।

आभिणिबोहियसुदओहिणाणिमणणाणिसव्वणाणि।
वंदे जगप्पदीवे पच्चक्खपरोक्खणाणी य ॥१६॥

विशुद्धवृद्ध आभिनिबोधिक ज्ञानके धारक योगियोका अभिवन्दन—इसमें ज्ञानसम्पन्न योगीश्वरोंको नमस्कार किया गया है। योगी आभिनिबोधिकज्ञानके स्वामी हैं, ऐसे योगीश्वर होते हैं कि जिन्हें बहुत पदार्थोंका ज्ञान हो, कोई ज्ञानाभ्यास नहीं करना पड़ना। यद्यपि आभिनिबोधिकज्ञान इन्द्रियजन्य है लेकिन सामर्थ्य ऐसी प्रकट होती है कि इसके थोड़े व्यापारसे बहुतसे पदार्थोंका बोध कर लेते हैं इसका नाम आभिनिबोधिक मतिज्ञान है। आभिनिबोधिक बड़ा उत्तम शब्द है। एक मतिज्ञान तो आभिनिबोधिक का एक भेद है। जैसे बताया है मतिस्मृति संज्ञा चिन्ता, अभिनिबोध, ये सब मतिज्ञानके अनर्थान्तर शब्द हैं, अर्थात मतिस्मृति आदिक

मतिज्ञानके भेद हैं, तो जिनके ये सब मतिस्मृति स्मरण आदिक भेद हैं, उसका शुद्ध नाम है आभिनिबोधिक अर्थात् अभि और नि की पद्धति से जहां बोध होता है उसे अभिनिबोधिक कहते हैं। जो चक्षु इन्द्रियद्वारा जाना जाता है वह चक्षुइन्द्रि से ही जाना जाय, जो जिस इन्द्रियका विषय है वह पदार्थ उस इन्द्रियसे ही जाना जाय ऐसा नियम जहां पड़ा है उसे नियमित ज्ञान कहते हैं और जो निमित्तनैमित्तिक पद्धतिसे जिस सन्निधानकी आवश्यकता होती है ऐसे सन्निधान रूप अभिमुखता जहां इन्द्रिय और विषयकी होती है उसे कहते हैं अभिमुखसे उत्पन्न हुआ ज्ञान। तो अभिमुख और नियमित पदार्थका जहां बोध होता है उसे आभिनि-बोधिक ज्ञान कहते हैं।

विशुद्ध वृद्ध श्रुतज्ञानके धारक योगियोंका अभिनन्दन- आभिनिबोधिक ज्ञान जाने हुए पदार्थमें फिर तर्कवितर्क द्वारा अन्यथ ोंका जो चिंतन किया जाता है उसे कहते हैं श्रुतज्ञान। जैसे घड़ीको आँखोंसे देखा तो जो देखने में आया वह तो हुआ मतिज्ञान और उसके सम्बन्धमें यह जाना कि यह घड़ी है, यह आकार है, इसमें जो भी और चिन्तन चलते हैं वे हुए श्रुत-ज्ञान। बल्कि यह घड़ी सफेद है ऐसा जाना तो वह ज्ञान भी श्रुतज्ञान है। इसीको पहिले जाना, मगर जाना भर, यह सफेद है यह विकल्प न हो तब तो है आभिनिबोधिकका रूप और इतना भी विकल्प हो कि यह सफेद है तो वह श्रुतज्ञान बन जाता है। यदि इस ही घड़ीको कोई बकरी देखे तो उस बकरी ने जो जाना वह तो मतिज्ञान है, पर यह सफेद है, ऐसा उसने शायद न सोचा होगा या और ढंगसे सोचा होगा वह है उसका श्रुतज्ञानसे सम्पन्न योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हू जिनका यह ज्ञानश्रुतके सम्बन्धमें बेरोकटोक चलता रहता है। यहां साधुवोंकी भक्तिकी जा रही है। साधुवों का दूसरा नाम है योग। योगि पुरुषोंके ज्ञान सच्चा रहता है। योगियोंके मिथ्याज्ञान नहीं होता, तो वे सच्चे ज्ञान ५ प्रकारके हैं,—आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। ये ५ प्रकारके ज्ञानके विकास हैं। जहां इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंको जाना जाता है उसका नाम तो है मतिज्ञान और मतिज्ञानसे जानकर फिर उसमें कुछ और विशेष जानना उसका नाम है श्रुतज्ञान। जैसे आखोंसे देखा और देखते ही जान गए वह तो है मतिज्ञान, फिर उसके बारेमें जानना कि यह काला है, यह नीला है ऐसे आकारका है, कहां को बनी है, ये सब श्रुतज्ञान कहलाते हैं।

वधिज्ञानसम्पन्न योगियोंका अभिवन्दन—तीसरा ज्ञान है अवधिज्ञान।

अवधिज्ञानकी बात शास्त्रोंमें सुननेको मिलती है कि फलाने मुनिने फलाने के पूर्वभवकी बातें बतायीं। तो अवधिज्ञान आगे और पीछे दोनोंकी बातें जानता है, दूरकी बात जानता है, नीचेकी बात जानता है, ऊपर की बात जानता है, समस्त दिशाकी बात जानता है, मगर जानता है म्याद लेकर, पूरबमें इतनी दूर तक जाने, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिणमें इतनी इतनी दूर तक जाने, यों सीमा पड़ी रहती है, लेकिन मोटे तौरसे यह जान लो कि अवधिज्ञान नीचेकी बातें ज्यादा दूर तक की जानता है, ऊपरकी बातें कम दूर तककी जानता है। जैसे मान लो ऊपरकी बात एक लाख कोशकी जाने तो नीचेकी बात अरबों कोशोंको जानता है। ऊपरके देव ऊपरकी बातें तो बहुत कम दूर की जानते हैं मगर नीचे नरकों तक की बातें जानते हैं, तो अवधिज्ञानसे रूपी पदार्थ आत्मशक्तिके बिना इन्द्रिय, मन की सहायतासे जान लिया जाता है। कोई पूछे कि मैं पहिले क्या था तो अवधिज्ञानी साधु पिछले भवकी बातें बता देगा। एक शुद्ध अमूर्त आत्मा हो, आकाश हो, कोईसा भी पदार्थ हो, परमार्थ अमूर्त पदार्थकी बात अवधिज्ञान नहीं जान सकता। उसे तो केवलज्ञान जानेगा। दूसरेके आत्माको अथवा आकाशादिक पर अमूर्त पदार्थोंको अवधिज्ञान नहीं जान सकता है। तो ऐसे अवधिज्ञानके धारी जो योगी हैं उनको हमारा नमस्कार हो।

मनःपर्ययज्ञानसम्पन्न योगियोंका अभिवन्दन—चौथेज्ञानका नाम है मनःपर्ययज्ञान, याने तपश्चरण करके उन योगियोंमें ऐसा अतिशय प्रकट हुआ है कि दूसरेके मनकी अत्यन्त सूक्ष्म बातों को भी वे जान लेते हैं। यह पुरुष क्या सोच रहा है, कितनी दूरकी बात, कितने पहिलेकी बात, कितने आगेकी बात विचार रहा है, इन सब बातोंके मनःपर्ययज्ञानी योगी जान जाते हैं। ये सब ज्ञानके विकास हैं। हम उन योगियोंकी चर्चा सुनकर थोड़ा यह ध्यानमें लावें कि जैसा मेरा आत्मा है वैसा ही इन योगियोंका आत्मा है। जातिमें कुछ अन्तर नहीं है जो चेतन हम हैं सो चेतन ये योगीश्वर हैं। ये योगीश्वर उच्चज्ञानके विकासके अधिकारी हो गए, हम आप लोग विषयकषायके साधनोंमें पड़े हैं, उनकी अटक लगी है इसी वजहसे हम आप ज्ञानका उच्चविकास नहीं कर पाते। पर यह विषयकषायों की अटक हम आपको क्या काम देगी? यह परिजनोंका स्नेह, यह धन वैभवकी प्रीति यह विषयकषायोंकी रति, इनसे हम आपका गुजारा नहीं चल सकता है। आखिर ये सब छूटेंगे, बुढ़ापा आयेगा, फिर मरण अवश्य होगा, फिर आगे क्या होगा, सो तो बताओ? यदि आप कहें कि बुढ़ापेके

बाद फिर कहीं जाकर बच्चे बनेंगे तो भाई इस भवके बच्चे तो न रहे, अगर चूहा बिल्ली आदिकके बच्चे हो गए तो फिर क्या होगा ? अथवा कीट मकौडे हो गए तो फिर क्या होगा ? अथवा मनुष्य बच्चा भी हो गये तो शैथिल्य अज्ञान तो बालवत् ही होंगे, इससे इस शेष रही जिन्दगी से कुछ लाभ उठालें। जो बात इन योगियोंमें है वही बात हम आपमें है। फर्क इतना पड़ गया कि हम आप तो इन विषयकषायोंके प्रेमी हो गए और इन योगियोंने इन विषयकषायोंमें लात मारी, वे इन विषयकषायों की ओर दृष्टि नहीं करते, उनका ज्ञान अत्यन्त स्वच्छ हो गया है और उनमें एक ऐसा अतिशय प्रकट हुआ कि अत्यन्त शान्त चित्त रहते हैं और यहां हम आप लोग अशान्त हैं।

विपुलमतिमन पर्ययज्ञानीकी तद्भवमोक्षगामिताका नियम—मन पर्यय-ज्ञान दो तरहके होते हैं—एक ऋजुमन पर्ययज्ञान और एक विपुलमनःपर्यय-ज्ञान ऋजुमनःपर्ययज्ञान दूसरेके मनकी सीधी बातोंको जान जाता है। यदि वह दूसरा पुरुष मायाचारपूर्ण विचार करे तो उसके मनकी बातोंको ऋजुमनःपर्यय ज्ञानी नहीं जान सकता। जैसे किसी को किसीके प्रति है तो हत्या करनेका भाव, पर दिखावेमें उससे बड़ा स्नेह दिखाता है, तो ऐसे मायाचारपूर्ण भावोंको ऋजुमन पर्ययज्ञानी नहीं जान सकता। लेकिन विपुल मन पर्ययज्ञानी दूसरेके हर प्रकारके विचारोंका ज्ञान कर लेता है। यह विपुलमन पर्ययज्ञान इतना ऊँचा ज्ञान है कि दूसरेके मनकी कठिनसे कठिन बातको भी जान लेता है। यह बड़ा निर्मल ज्ञान है। इसके बाद केवल ज्ञान होता है। अवधिज्ञान भी जैसे तीन तरहके होते हैं—एक देशावधिज्ञान, दूसरा सर्वावधि ज्ञान और तीसरा परमावधि ज्ञान। सर्वा-वधिज्ञान और परमावधि ज्ञान हो तो नियमसे मोक्ष हो जाता है। इसी प्रकार जिसके विपुलमति मन पर्ययज्ञान हो नियमसे वह उसी भवसे मोक्ष जावेगा।

केवलज्ञानी परमयोगेश्वराधिपतिका अभिवन्दन—अब ५वां ज्ञान आता है केवलज्ञान। यह सबसे ऊँचा ज्ञान है। जिस भगवानको हम पूजते हैं वह केवलज्ञानी हैं। केवलज्ञानी उसे कहते हैं जो तीन लोक तीन काल की समस्त बातोंको यथार्थ जान जाय। इस आत्मामें ज्ञान तो सबके उतना ही है जितना कि प्रभुमें है। शक्ति देखो तो सबमें सर्वज्ञताकी है, लेकिन जब हमारा काम ही विषय सम्बन्धी है, कषायोंका आवरण है तो यह ज्ञान ढका हुआ है। प्रकट नहीं हो पाता। ये कषायें मिटें, मोह मिटे तो ज्ञान प्रकट हो। अब आप सोचिये कि आपको प्रभु बनना है या

संसारमे रुलना है। संसारमें रुलने वाले तो हैं अनगिनते तरहके और मोक्ष पाने वाले हैं सब एक तरहके। सबका एकसा ज्ञान है, एकसा आनन्द है, एकसी बात है। और संसारी जीवोंमे देखो—किसीके कैसी कषाय है, किसीके कैसी है, सबकी अपनी-अपनी बात है। पर्यायें भी तो अनगिनते है। वृक्ष, पृथ्वी, जल, वायु अग्नि, कीडा मकोड़ा, पशु पक्षी, देव, नारकी, मनुष्य आदिक अनगिनते तरहके हैं और ये भी अपने-अपने में अनगिनते तरहके हैं। तो ये सब कई प्रकारके दुःख भोगते हैं। तो दो बातें हैं ससारमे--रुलना और मोक्ष पाना। इन दो बातोंमें तुम्हें क्या मजूर है ? जो भी आप चाहेंगे सो मिल जायेगा, पर दिलसे चाहा जाय तो यह बात होगी, इसमे कोई सन्देह नहीं। आत्मामे यह रुचि हो जाय कि मुझे तो ससारमें नहीं रुलना है, मोक्ष पाना है तो वह जरूर मोक्ष पा लेगा। मोक्ष का स्वरूप जान लें और ससारका स्वरूप जान ले और इनका अन्तर समझ लें कि संसार तो इसका नाम है और मोक्ष इस ज्ञानानन्दके विकास का नाम है और उसमें रुचि हो जायेगी तो नियमसे मुक्ति प्राप्त होगी जहा केवल ज्ञानके द्वारा विशद सकल-सत् जाना जाता है सदाको।

परमलाभके उपायकी अरुचिपर विषाद–देखो तो सर्वाधिक बड़ी समृद्धिका लाभ हम आपको केवल भावोंसे मिलता है, कोई कठिनाई नहीं है, तो उस में तो रुचि न जाय और विषयकषायोंमें ही रमते रहें तो फिर उससे उत्पन्न दुःख कोई दूसरा तो न भोगने आयेगा। लेकिन हम आप दुःख भी भोगते जाते हैं और उन्हीं दुःखद कार्योंमें लगते भी जाते हैं। ऐसी हालत समस्त ससारी जीवोंकी है। कैसी शरीरमें फसे रहनेमें आफत है ? कहाँ तो यह प्रभुके समान ज्ञानानन्द वाला आत्मा, जो कि स्वतंत्र रहे, सुखी रहे, निर्विकल्प रहे, किसी प्रकारका क्लेश ही जहाँ नहीं है ऐसा विशुद्ध ज्ञान प्रकाश रहा करे, और कहा यह देह में फँसा है, बडे क्लेश भोग रहा है। यह शरीर हाड, मास, चाम खून, पीप, नाक, मल, मूत्रादिक महा अपवित्र चीजोंका पुतला है, ऐसे महा अपवित्र शरीरोंमे यह जीव फसा हुआ है और बडे बडे क्लेश सहन कर रहा है। भूख प्यासकी वेदनायें भी इस शरीर के कारण हैं। उसी प्रसंगमें चूँकि शरीरसे मोह है इसलिए रसोंके स्वादमे यह जीव आसक्त हो जाता है और अपने प्रभुकी सुध भी भूल जाता है। तो बड़ी विपत्तिमें पड़ा है यह जीव। सम्मान अपमानके दुःख भी यह जीव इसी शरीरसे बँधे होनेके कारण सहन करता है। यद्यपि अपमान है अच्छी चीज अप हो गया है मान जिसका उसे अपमान कहते है। अपके मायने है नष्ट होना। तो जिसका मान बिल्कुल नष्ट हो गया, भगवान बन गया

उसका नाम है अपमान, पर इस जीवने यह बुद्धि की कि जितना ऊँचा मान सम्पन्न मैं चाहता था उतना नहीं प्राप्त हो सका, उसका नाम अपमान मानता है। तो इस अपमानके क्लेशका कारण भी यह शरीर है। इसी प्रकार ठड, गर्मी, नाते रिश्ते, कुटुम्ब परिजन आदिकके समस्त प्रकारके क्लेशोंका कारण यह शरीर है। तो इन शरीरोंमें बँधा होनेके कारण यह जीव सदा दुःख भोगता रहता है। जो जीव अपनेसे बिलकुल भिन्न हैं उन्हें भी अपना मानकर उनसे प्रीति करते, कुछ समय तक तो परस्परमें प्रीति रहती है पर थोड़े ही समय बाद वह प्रीति खत्म हो जाती है और एक दूसरेके क्लेशके कारण बने रहा करते हैं। जरा-जरासी बातोंमें अनेक प्रकारकी खटपटें, अनेक प्रकारके विकल्प चलते रहते हैं जिससे यह जीव दुःखी रहता है। तो ये सारे दुःख इस शरीरमें बँधे होनेके कारण ही इस जीवको भोगने पड़ते हैं।

अनर्थमूल शरीरकी रुचिके कारण श्रेयोलाभकी अरुचि—यह शरीर समस्त अनर्थोंकी जड़ है, लेकिन इसी शरीरका इतना आदर रखते कि अपने शरीरको तो खूब आरामसे रखते और दूसरोंके प्रति सेवाका भाव भी नहीं जगता। जो अपने घरके लोग हैं उनके यदि कोई प्रकारकी शारीरिक वेदना हो जाय तो कहो उनके पीछे बड़ी हैरानी उठा लें पर अन्य लोगोंके प्रति जरा भी दयाका भाव नहीं उमड़ता। समस्त जीवोंमें जो यह छाँट कर ली कि ये इतने लोग तो मेरे हैं बाकी सब गैर हैं तो क्या यह जीवपर कम विपदा है? तो ये जीव इन विपदाओंको भोगते भी जाते हैं और इनमें ही चिपटते जाते हैं। बहुत बूढ़े हो गए, नाती पोते भी बहुत तंग करते, उस बूढ़ेके शिरपर लदते, मूछ पटाते, यदि कोई कहे कि अरे बाबा जी तुम क्यों बेकारमें कष्ट सह रहे हो, अमुक आश्रममें रहो, अमुक त्यागियोंके सगमें रहो तो फिर ये नाती पोते तुम्हें हैरान न कर सकेंगे, तो वह बूढ़ा यही जवाब देता है कि तुम कौन आ गए हमें बहकानेके लिए? अरे ये हमें चाहे जितना हैरान करें, पर ये हमारे नाती पोते ही रहेंगे और हम इनके बब्बा ही कहलायेंगे। तो ऐसा मान रखा है नाता रिश्ता कि बिल्कुल सच मालूम होता है। तो ये जीव जिन बातोंसे दुःखी भी होते जाते हैं उन्हीं बातोंको छोड़ना भी नहीं चाहते। ऐसा मोह लगा है, ऐसी कषाय लगी है जिसकी वजहसे हम आपका स्वरूप भगवानकी तरह होने पर भी अपने स्वरूपका विकास नहीं कर पाते। अब मोक्ष पाना है या ससारमें रुलना है—इन दो बातोंका विचार करना है। मोक्षमें तो है अनन्त आनन्द ही आनन्द, क्योंकि मोक्ष हो गया, कर्म दूर हो गए, अब शरीर न मिलेंगे,

अब कर्म न चिपकेंगे, निरन्तर सर्वज्ञ रहेंगे और अनन्त आनन्द वाले रहेंगे बताओ यह स्थिति पसंद है या मोह करके संसारकी विधि बनानेकी बात पसंद है? एक बार तो सभी कोई कह देंगे कि मोक्ष पानेकी बात अच्छी है, भगवान होनेकी बात अच्छी है किन्तु उसका प्रयोग करनेका जब कुछ प्रारम्भ करेंगे तो वहाँ ये मोही जीव फिसल जाते हैं। सोचते हैं कि क्या घरमें धर्म नहीं बनता। घरमें रहकर भी ऊँचे ऊँचे धर्म पाल लिए जाते हैं। बादमें बार बार फिसल जाते हैं। मोक्ष जैसी ऊँची स्थितिके पानेकी बात मनमें नहीं आ पाती।

केवलज्ञानी प्रभुकी सभक्ति वन्दना— जिन प्रभुकी हम आप पूजा करते हैं उन्होंने कितनी उच्च स्थिति प्राप्त की है, उन प्रभुका पूजन करते समय इस बातका चिन्तन करें कि धन्य हैं ये प्रभु, इन्होंने कैसी उच्च स्थिति प्राप्त की है। हमको भी इनकी ही जैसी स्थिति प्राप्त करनी है। यदि ऐसा चिन्तन किया जाय तो वह तो वास्तविक भक्ति हुई और यदि अपने परिवारके सुखी रखनेके लिए, अर्थ लाभके लिए, परिजनोंके खुश रखने के लिए भगवानकी भक्ति की जा रही है तो वह प्रभुकी वास्तविक भक्ति नहीं कहलाती। ये प्रभु हैं केवलज्ञानी। केवलज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको उन्होंने जान लिया है। ऐसे ही केवलज्ञानके धारण करने वाले योगियोंको हमारा नमस्कार हो। यद्यपि केवलज्ञानी योगीका नाम अरहंत प्रभु है लेकिन वे भी योगी कहलाते हैं। जहाँ साधुवोंके ५ भेद बताये हैं—पुलाक, बकुश कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। तो स्नातक नाम है अरहंतका। साधुवोंके भेदमें उन्हें योगी कह दिया तो वे परमयोगी हैं। जिन्होंने अपने आत्मस्वरूपमें योग किया है, जोड़ किया है उपयोगको ऐसा एक रस लगा दिया है कि केवलज्ञान हो गया है उन्हें परमयोगी भी कहते हैं और अरहंत भी कहते हैं। ये सब योगी जगतका जाननेके लिए प्रदीपके समान हैं, जैसे दीपक सबको प्रकाशित करता है ऐसे ही ये योगी समस्त पदार्थोंको यथार्थ स्पष्ट जानते हैं।

आत्मनिर्णयमें ही शान्तिमार्गकी प्राप्ति—भैया मैं क्या हूँ और जगत क्या है? इस निर्णयमें ही शान्तिका मार्ग पड़ा है। यह निर्णय सोच लो, है या नहीं। यदि यह निर्णय नहीं है तब बेकार है जिन्दगी। उन परिजनोंके मोहसे लाभ क्या मिलेगा? विकल्प किये जा रहे अपनी बुद्धि खो रहे, अपना बल भी खो रहे, अपनी जिन्दगी भी खो रहे, लाभ कुछ नहीं मिल रहा। लाभ इसी निर्णयमें है और ऐसा ज्ञान बनानेमें है कि मुझे तो आत्मलाभ लेना है, गुप्त ही गुप्त, कोई मत जानो मुझे, क्यों किसीको

जानता, कोई यदि मेरा नाम लेता है, मेरी प्रशंसा करता है तो यह मैं स्वयं अपनी सुध खोकर अपनेसे चिगकर विकल्पजालमें उलझ जाता हूं, जहाँ तत्त्व कुछ नहीं, सार कुछ नहीं। इन मोही जीवोंने पर्यायबुद्धिका कुछ परिचय किया है, कुछ मेरा नाम गाया है, कुछ मेरी नामवरी बनायी है तो जो असार बातें हैं, उन असार बातोंको सुनकर, देखकर, समझकर हम अपने स्वरूपसे चिगकर अपने सारभूत ऐश्वर्य का विनाश कर डालते हैं। तो उसमें तत्त्व हमें क्या मिला? ऐसी स्थिति बनती है तो बहुत ही उत्तम है कि मैं किसीके परिचयमें न आऊँ, किसीका परिचय ही न करूँ। और अगर होती है जानकारी तो वहाँ बल बढ़ाना चाहिये कि जान गए लोग तो किसे जान गए? इस शरीरको जान गए, मेरेको तो नहीं जान गए। यदि कोई लोग भला कह रहे हैं, मेरी कुछ प्रशंसा कर रहे हैं तो वास्तवमें वे मेरी प्रशंसा नहीं कर रहे बल्कि उनको दृष्टि इस शरीरपर है, इस शरीर की वे प्रशंसा कर रहे। यह शरीर मैं हूं नहीं। ये लोग तो इस शरीरकी (परपदार्थकी) दृष्टि रखकर कुछ कह रहे हैं। इस प्रकारका ज्ञानबल बढ़ायें, अगर परिचय हुआ है तो ज्ञानबल होना चाहिए और परिचय न करें, अपनेमें गुप्त रहें तो बहुत ही सहज ढगसे अपने आपके कल्याणकी बात मिल जाती है। तो इन व्यासगोंसे, इन विकल्पोंसे हमारा जो यह परमात्मस्वरूप है यह परमात्मस्वरूप ढक गया है। यह उघड़ रहा है इन योगियोंके। इसी कारण ये योगी वंदनीय हैं। तो यों उत्कृष्टज्ञानके अधिकारी योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हूं।

आयासतंतुजलसेढिचारणे जंघचारणे वंदे।
विउयणइड्ढिपहाणे विज्जाहरपण्णसवणे च ॥२०॥

अनेक चारण ऋद्धियोंके धारक योगियोंका अभिवन्दन—जो संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त हैं केवल ज्ञानस्वरूप मैं हूं—इस प्रकारकी जिनकी दृष्टि और धुन बन गयी है, इसी कारण जिनमें क्षमा, मार्दव आदिक दस प्रकारके धर्म उत्कृष्टरूपसे प्रकट हो रहे हैं इन योगियोंका ऐसा प्रताप है, ऐसा परम तपश्चरण प्रसिद्ध है कि इनमें अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अभी ऊपरके छंदमें ज्ञानऋद्धिका वर्णन था। अब यहाँ अन्य ऋद्धियोंकी बात बता रहे हैं। ऐसी ऋद्धियाँ पैदा हो जाती हैं। कि वे आकाशमें विहार करने लगते हैं। कोई योगी आकाशमें कदम रखकर चल रहे हैं और कोई बिना कदम रखे यों ही चल रहे हैं, ऐसी ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। कोई योगी तंतुचरण ऋद्धिके धारी हैं। एक सूतपर चलते हैं, अथवा सूतपर ही क्यों, कमलकी डंडी तोडनेपर जो उसमें से

अत्यन्त पतले तार निकलते हैं उनपर वे योगी चलते हैं पर वे तार टूटते नहीं। यों ही समझिये कि वे आकाशमें भी चलते हैं, ऐसी ऐसी विशेष ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। कुछ योगी जलचारण ऋद्धिधारी होते हैं। पानीपर चलते जायें पर पानीका स्पर्श भी न करें, ऐसे भी जलचारण ऋद्धिधारी योगी होते हैं। कुछ योगी आकाश-श्रेणियोंमें यों ही चले जाते हैं। कोई जघाके बलसे ही चले जाते हैं, कदम भी नहीं रखते आकाशमें। जैसे कुछ लोग मानते हैं कि हनूमान जी ऐसे पहाड़ लिए हुए उड़े चले जा रहे थे, ऐसे ही वे योगी जघाके बलसे आकाशमें उड़ते रहते हैं। देखिये ऐसे नाना प्रकारकी ऋद्धियोंके धारी योगी हैं जिनमें बुद्धिका बल भी अतिशय प्रकट हुआ है। चाहे थोड़ा पढ़े अथवा न भी कुछ पढ़े फिर भी उनका ज्ञान अपने आप विकसित होता जाता है। ऐसे अनेक प्रकारके ज्ञानोंको भी जिन्होंने प्रकट किया है ऐसे योगियोंको हम वन्दना करते हैं।

योगियोंके योगकी उपासना—योगियोंकी वंदना करते समय हमें उनके योगपर अधिक ध्यान देना चाहिए। धन्य है वह योग जिसके प्रतापसे ये योगी इतने उत्कृष्ट विकास वाले हैं। वे योगी क्या हैं? कि बाह्यपदार्थोंसे मोह छोड़कर परपदार्थोंकी उपेक्षा करके रागद्वेष हर्ष विषादकी परिणतिमें न उलझकर एक अपने सहज ज्ञानस्वरूपकी आराधना करना इसका नाम है योग, जो बिल्कुल सुगम है, सीधा है। यह आत्मा खुद ही तो धर्म करने वाला है और खुदका ही ध्यान किया जाना है। तो यहाँ कुछ अन्तर तो नहीं है जो हमारे उपयोगसे कुछ सरकना पड़े, कुछ कहीं जाना पड़े, जानने के लिए यह उपयोग ज्ञानस्वरूप है ही हमारा और ज्ञानस्वरूपको ही हमें जानना है। तो यह ज्ञानयोग कि हम खुद को जान जायें, इसमें कुछ कहीं जाना नहीं, श्रम करना नहीं। एक भाव भर भी बात है। तो ज्ञानके द्वारा ज्ञानके स्वरूप को जानते रहना यह योग किया है इन योगियोंने। जिस ज्ञानयोगके प्रतापसे ऐसी महिमा प्रकट हुई है, ऐसी ऋद्धि उत्पन्न हो जाती है-तो इन योगियोंकी वन्दना करते समय हमें उस योगकी महिमापर ध्यान देना चाहिये, वह योग मेरे द्वारा भी किया जा सकता है, जैसा इन योगियोंका आत्मा है ऐसा ही मेरा आत्मा है बल बढ़ायें और इन विषयकषायोंको असार जानकर इनकी उपेक्षा करें तो हम अपने ज्ञान का योग बना सकते हैं और अपने इस दुर्लभ मानवजीवनको सफलकर सकते अन्यथा तो जैसे संसारमें रुलते आये वही रुलना बना रहेगा। संसारका रुलना पसंद न करें, मोक्ष पानेकी बात पसद करें और उसका

ही यत्न करनेका भाव रखें।

गइचउरंगुलगमणे तहेव फलफुल्लचारणे वंदे।
अणुवमतवसि महते देवासुरवंदिदे वंदे ॥२१॥

फलफुल्लचारणादि ऋद्धिके धारक योगियोंका अभिवदन—सहज आत्मस्वरूपके ज्ञान और श्रद्धान तथा ज्ञायकस्वरूप ही अपनेको उपयोगमें बनाये रखनेके उद्यमसे आत्मामें ऐसा अतिशय प्रकट होता है कि अनेक प्रकारकी ऋद्धियाँ जग जाती हैं। पृथ्वीके ऊपर चार अगुल रहकर गमन करें, ऐसा उनमें अतिशय हो जाता है। तपश्चरणोंमें अनशन आदिक तपश्चरण प्रधान हैं। बाह्यमें अनशनकी अधिकता और अन्तरङ्गमें निराहारस्वभाव अविहारस्वभावी आत्माके ज्ञानस्वभावके रूपमें ध्यानकी प्रमुखता, इन दोनों आन्तरिक और बाह्यतपश्चरणके प्रतापसे शरीरमें अति हलकापन आ जाता है। और फिर एक आत्मीय अतिशय प्रकट होता है कि वे फिर जब विहार करते है तो जमीनके ऊपर चार अगुल विहार करते जाते है। चलते हैं इसी तरह जैसे कि कोई पृथ्वी पर चलता है। तो जिनमें हिंसाका बचाव एक अभ्यास ही हो रहा है। कोई फलचारण ऋद्धि वाले योगीश्वर हैं। जैसे पेड़ोंमें फल फूल लगे रहते हैं या नीचे पडे रहते हैं तो वे योगीश्वर उनपर गमन कर लें और उनको बाधा न पहुचे, इस प्रकारकी ऋद्धि इन योगियोंमें प्रकट हो जाती है। ये अपने शरीरको अणु बना लें, महान बना लें, अनेक प्रकारकी विक्रियायें होती हैं, ऐसी ऋद्धियोंसे सम्पन्न योगीश्वरोंका मैं वन्दन करता हू।

देवासुरवंदित अनुपमतपस्वी योगियोंका अभिवन्दन—ये योगीश्वर अनुपमतपमें महान् हैं, इन योगीश्वरोंको देव इन्द्र सभी वदन करते हैं, संसारमें चूँकि सारभूत काम अन्य कुछ नहीं है और न सारभूत पदार्थ ही यहाँ है, तो इन असारपदार्थोंको कब तक अपना मानता रहे यह जीव ? इन जीवों मे से कोई विरले ही जीव यथार्थ ज्ञानी होते ही हैं जिनको ऐसी बुद्धि जग गयी कि इस लोकमें अपने आप यह मैं ज्ञानप्रकाशमात्र हू, ऐसा अनुभव करते रहना, सिवाय इसके अन्य कुछ भी सार नहीं है। बाह्यमें किससे सहायता लेना, किनमें दिल फसाना, यहाँ कोई मेरा सुधार बिगाड करने वाला नहीं, किसको प्रसन्न करना, किसको क्या दिखाना, केवल मेरे लिए मैं ही ज्ञानरूपमें अनुभवा हुआ सारभूत हू अन्य कुछ नहीं, ऐसे जिनके ज्ञान विशेष जग जाता है ऐसे पुरुषोंको फिर विषयोंमें रुचि नहीं रहती। विषय वैसे भी क्लेशकारी हैं। एकमात्र भोगनेके समय जिसमें सेकेण्ड दो सेकेण्डके ही काम रहते हैं उतने समय थोड़ा यह सुख महसूस

करता है। बादमें तो पहिली अवस्थासे भी बड़ा दुःखी हो जाती है। एक कुछ क्षणभरके सुखको छोड़ दिया जाय जिसमें आगे पीछे दुःख लगा है और सुखके समयमें भी क्षोभ बराबर लगा हुआ है। एक थोड़े समयका लोभ छूट जाय और तीव्ररुचि जगे अपनेको ज्ञानस्वरूप अनुभवने की। एक प्रयोगात्मक अपने ज्ञानको इस तरह बनायें कि यह मैं जाननप्रकाशभर हू। इसे न लोग जानते हैं, न इससे कोई व्यापार करता है, ऐसा यह मैं एक गुप्त ज्ञायकस्वरूप हू, ऐसी जिनकी रुचि हुई है, ऐसी जिनकी भावना होती है उनको ये सब ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। ऐसे पुरुषोंको देव लोग, विद्वान लोग असुरजन जिनके ये ऋद्धियां पैदा हुई हैं, जो वीतरागतासे प्रभावित हैं वे वैराग्यकी मूर्ति समताकी मूर्ति शान्त इन योगीश्वरोंके दर्शन करके उनके चरणोंमे वन्दन किया करते हैं।

जियभय जियउवसग्गे जियइंदियपरीसहे जियकसाए।
जियरायदोसमोहे जियसुह दुःखे णमंसामि ॥२२॥

जितभय योगियोंका अभिवन्दन—इन योगीश्वरों ने भयको जीत डाला है। श्मशान भूमिमें रहकर योगी तपश्चरण करते हैं। कहीं मुर्दा जल रहा है, कहीं खोपड़ी पड़ी हुई है, जहासे ये लौकिक जन निकले तो यहां भूत रहा करते हैं ऐसी शका रखकर भय किया करते हैं, ऐसे भयानक स्थान, ऐसे जगलके स्थान कि जहां शेर चीता आदिक हिंसक जानवरोंकी बहुलता है, जैसे जंगलमें पथिक लोग चलते हुए भय खायें, शस्त्र आदिक ले करके यहासे निकलें ऐसे भयके स्थानोंमें भी ये योगीश्वर निःशक होकर ठहरते हैं। ऐसे भयोंके जीत लेनेका कारण क्या हुआ कि उन्होंने अमर एक ज्ञानस्वरूपकी ही रुचि की और उसे उपयोगके समक्ष रखकर यह अनुभव करते कि इसे तो कोई छू भी नहीं सकता, मार भी नहीं सकता। यह तो कहीं नष्ट नहीं हो सकता। यह तो यही है। भले ही यह परशरीर वियुक्त हो जाय पर यह मैं सदा इस ही में रहता हू, इसका कहीं वियोग सम्भव नहीं है। लोग जो मरने से घबड़ाते है वे मरणका भय नहीं करते किन्तु मोह जो बना हुआ है। उस मोहके कारण उनके डर बन गया है—हाय यह लाखोंका धन कमाया यह सब यों ही छूटा जाता है। परिवारजनोंसे भी प्रेम बढ़ाते रहे जिनसे बड़ा प्रेम पाते रहे। इस प्रेमके आदान प्रदानके कारण मोह दृढ़ हो गया था। सो अब वह मरने वाला पुरुष दुःख मानता है कि हाय मेरा कुटुम्ब भी मुझसे छूटा जा रहा है। तो शरीर की भी ममता जग गयी है, इस तरह मोहकी वृत्तिके कारण मरने वाले को क्लेश हो रहा है। जब वस्तुत्वपर दृष्टि पहुचे, मैं तो यह हूं, जिसका बाहर

कुछ है ही नहीं, जिसको दुनियाके लोग समझते ही नहीं। यह मैं अपने में ही रहता हूं अनादिकालसे, अपने ही स्वरूपमें रहता आया हूं और अब सदा अपने स्वरूपमें ही रहूंगा, ऐसे जो एक अपना ज्ञायक स्वरूप है बस इसके दर्शनकी ऐसी महिमा है कि उन्हें न मरनेका भय है न भूत प्रेतोंका भय है, न शेर चीतादि जानवरोंका भय है। कितना दृढ़ भेदविज्ञान है इन योगियोंका ?

जितभय योगियोंके दो उदाहरण—सुकुमाल मुनिका सुकुमाल शरीर जिसे गीदड़ीने दो तीन दिन तक भक्षण किया, पैरोंसे लेकर जंघा तक चीर डाला, किन्तु वे मुनि एक परमज्ञानज्योतिरूपके दर्शन करते हुए प्रसन्न थे, उनको विषाद न था और कदाचित ज्ञात भी होता हो कि यह शरीर खाया जा रहा है तो भेदविज्ञानके प्रतापसे इस ढगका ज्ञान हो रहा था कि जैसे बाहरमें किसी अन्य वस्तुपर कोई आक्रमण होता है। ऐसा दृढ़तम भेदविज्ञान जिन योगियोंके होता है उनको भय काहेका ? सुकौशल मुनि किशोर अवस्थाका ही था, जवानी भी पूरी न आ सकी और विरक्त होकर ऐसे समय विरक्त होकर कि उसकी स्त्रीके गर्भ था, तो मंत्रियों ने समझाया कि बच्चा हो जाने दो, उसको उत्तराधिकारी बन जाने दो तब तुम निर्ग्रन्थ होना। लेकिन वे न माने और यह कह दिया कि जो गर्भमें सतान है उसको हमने अभीसे राज तिलक कर दिया। अब राज्यका संभालना मन्त्रियोंका काम है। तो अब मंत्रीगण राज्यभार संभालें और जो संतान गर्भमें है उसको मैंने राजतिलक किया, ऐसा कह कर एक अपना पिंड बचाकर सुकौशल मुनि जंगल चले गए। जंगलमें तपश्चरण कर रहे थे, वहां सुकौशलकी मां आर्तध्यानसे व्याघ्री हुई थी। अब देखा सो मिथ्यात्वके कारण उल्टा ही उसने स्मरण किया कि इसके ही कारण मेरी यह दुर्गति हुई है। बच्चा निर्ग्रन्थ हो गया था तो मोहमें उस पर क्रोध आ जानेके कारण क्रोधमें आकर व्याघ्री हुई थी सो सुकौशलकी छातीमें पंजा मारा, इतने पर भी सुकौशल रच भी विचलित नहीं हुए। उसका क्या कारण था, सवपदार्थोंसे भिन्न ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव किए जा रहे थे। यह अनुभव जिन्होंने पाया उनका जीवन धन्य है। जीवन क्या धन्य है उनका परिणमन धन्य है, उनकी निजी दुनिया धन्य है। जिन्होंने ऐसे ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगका योग किया है तो ये योगीश्वर जितभय होते हैं।

भयविजयी ज्ञान—भय उन्हें होता है जिन्हें शरीरमें व्यामोह होता है, किन्तु जो अपने चैतन्यस्वरूप को इस शरीरसे निराला निरख रहे हैं

उन्हें किसी चीजका भय नहीं होता। उन्हें मरणका भी भय नहीं होता। वे तो समझते हैं कि यह मैं स्वयं परलोकस्वरूप हूं, परलोककी उन्हें यों चिन्ता नहीं कि वर्तमानमें वे अच्छी करनी कर रहे हैं, एक शुद्ध ज्ञानवृत्ति से रह रहे हैं। वे क्यों कल्पना करें ? जिसमें भव ही नहीं, जिसका स्वरूप जन्ममरण नहीं, ऐसे भवरहित, जन्ममरणरहित निजज्ञायक प्रभुकी आराधना करे, यह बात कहा जमती है ? जहा एक अपने आपके स्वरूप का ही अनुभव किया जा रहा है। इन योगीश्वरोंको शरीरकी वेदनाका भय नहीं है। शरीर तो शरीर ही है, शरीरमे फोड़ा फुसी हों, उष्णता आये, किसी प्रकारका बिगाड़ हो तो वह परपरिणमनरूप ही परिणमन है, वे शरीरकी ही अवस्थायें हैं। जो पुरुष शरीरका जितना लगाव रखता है वह उतनी ही वेदनाका अनुभव करता है। जिसका शरीरसे लगाव नहीं है वह शरीर की वेदनाका अनुभव नहीं करता। इन योगिराजोंके मरणका भय नहीं। वे जानते हैं कि मैं चैतन्यस्वरूप हूं। यह चैतन्य, यह सहजसत्त्व यह सहजज्योति बस यही तो मैं हूं, यही प्राण है, इसका कहीं वियोग ही नहीं हो सकता। जो मैं अपने स्वरूपसत्त्वसे हूं उसका कहां वियोग ? किसी भी पदार्थके स्वरूपका कभी वियोग नहीं होता और जो पदार्थके स्वरूपमें नहीं है वह चीज चिपक जाय या ऐसा परभाव इसमें प्रतीत हो जाय तो भी वह इसका है कहीं ? जो मेरा है वह कभी जाता नहीं बाहर। जो मेरा नहीं है वह कभी मेरेमें आता नहीं है, ऐसी दृढ़ता भेदविज्ञानमें जिससे उनको मरणका भय कहाँसे आयेगा ? अन्य अन्य भय भी - जैसे मेरा कोई रक्षक ही नहीं, बहुतसे लोग विरोधी हो रहे हैं, कोई मेरी बातका कहने वाला ही नहीं, मेरे पास कोई ऐसा सुरक्षित स्थान हो नहीं, कहीं कोई घटना न हम पर घट जाये, ऐसी कल्पनायें क्या जगायेगा। जिसने अपने सहज ज्ञानस्वरूपमे अपने को अनुभवनेकी ठानी है। दूसरी बात नहीं चाहता, अन्य बातोंको, विकल्पोंको अत्यन्त असार समझता है, ऐसा पुरुष किसी भी प्रकारके भयसे भयभीत नहीं होता। तो ये योगिराज भय पर विजय पाने वाले हैं।

जितोपसर्ग योगियोंका अभिवन्दन—योगिराज जितोपसर्ग हैं। कैसे भी उपसर्ग आयें उनको ये योगिराज अपने आत्मबलसे सहज ही जीत लेते हैं। कोई गाली दे रहा है, अपमान कर रहा है अथवा मारपीट रहा है तो भी वे उसपर द्वेषकी भावना नहीं लाते। यदि किसी दुष्टने, अपने कषायके अनुकूल वर्तनेमें शान्ति मानने वालेने दुर्वचन भी कह दिये तो वचन तो भाषावर्गणाके परिणमन हैं और वचनोंकी उत्पत्ति जिस विधिसे हुई है वह

है पुद्गल पुद्गलका संयोग व वियोग। जीभ चली, ओंठ चले, शरीरके अनेक अगोंका जो सयोग वियोग होता है वह है इन वचनोंका उत्पादस्रोत। आत्मा तो एक ज्ञानमूर्ति है। इस प्रसगमें जीवने यदि कुछ किया तो अपना ज्ञान किया, विकल्प किया, इच्छा की, रागद्वेष अधिकसे अधिक हो गया, पर जिस वस्तुका जो परिणमन होता है उसका फल उस ही वस्तु में हुआ करता है। निश्चयदृष्टिसे देखिये—प्रत्येक जीव जो भी भाव, क्रोधका भाव करता है तो उस क्रोधका फल दूसरा नहीं भोगता, खुदको ही भोगना पड़ता है। लेकिन मोह बना कैसे है? ऐसे कि देखो इसने मेरे बिगाड़के लिए कैसा काम किया? कोई दूसरा बिगाड़के लिए कुछ कर ही नहीं सकता। आत्मा भावभर बनाता है। जब विकल्पमात्र बना सकता है तो उन विकल्पोंके उत्पन्न होनेसे जो उनके तुरन्त क्षोभ आया वही तो उसका प्रयोजन बना। फल तो उसीने पाया है। जो जैसा भाव सोचता है वह उस भावका तुरन्त ही फल प्राप्त कर लेता है। जिस समय जो भाव किया उस भावमें जो सुख दुःख अथवा आनन्द समाये हैं वे उसे तुरन्त प्राप्त हो जाते हैं। तो जिन योगीश्वरोंने वस्तुस्वरूप समझा है और जिनके उपयोगमें वस्तुस्वरूप स्पष्ट रहा करता है वह अपमानभरे शब्दोंको सुनकर या सम्मान न हो सके—ऐसी उपेक्षा भरी चेष्टाको निरखकर रचमात्र भी मनमें विषाद नहीं लाते। कोई मारपीटका भी उपसर्ग करे तो पुद्गल पुद्गलका संयोग हो रहा है। लाठी और शरीरका जो सम्बन्ध होता है वही तो पिटाई कहलाती है। उसमें भी उन योगियोंके दृढ़ताकी बुद्धि रहती है और प्रकाश रहता है कि जो होता है सो होने दो। हम यदि विकल्प करें उस परिस्थितिको हटानेका, किसी भी प्रकारका हम विकल्प करें, अपने आपके स्वरूपसे चिगें तो इससे मेरे जन्ममरणकी परम्परा बढ़ जायगी। एक भव छूटता है तो छूटने दो। यदि उस कालमें विकल्प किया तो मैं अपना ससार बढ़ा लूँगा और ससार ही अनर्थ है, एक अमूल्य निधिको प्राप्त किए रहने के लिए उनमें इतना बड़ा बल बना हुआ है कि यदि कोई निर्बल भी उपसर्ग करे तो उसमें भी विचलित नहीं होते। ऐसे ये योगिराज उपसर्गके विजयी हैं।

जितेन्द्रिय योगियोंका अभिवन्दन—ये योगी जितेन्द्रिय हैं। इन्होंने इन्द्रियको जीत लिया है। इन्द्रिय को कैसे जीता? इन्द्रियसे उपेक्षा करके। कहीं इन्द्रियसे भिड़ना नहीं, पकड़ना नहीं, किन्तु इन इन्द्रियोंसे उपेक्षा करनेका नाम जितेन्द्रियपना है। इन्द्रिय जब उपभोग कहलाता है तो उस उपभोगके समयमें तीन साधनोंका सम्पर्क रहता है—द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय

और विषयभूत पदार्थ। स्पर्श, रस वाले ये विषयभूत पुद्गल पदार्थ ये तो आश्रयमें रहते हैं—जैसे खाया, सूँघा, छुवा तो ये पुद्गल ही तो विषयभूत हुए और यह विषय किया जा रहा है द्रव्येन्द्रियके साधनोंसे। आंखोंसे देखा, हाथसे छुवा, जिह्वासे चखा तो द्रव्येन्द्रियका साधन जुटाया और अनुभव किया जा रहा है भावेन्द्रियके द्वारा। इस द्रव्येन्द्रियके निमित्तसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाले पदार्थोंका जो ज्ञान किया जा रहा यह तो क्षायोपशमिक ज्ञान है। यह इन्द्रियावरणके क्षयोशमसे उत्पन्न होता है भावेन्द्रिय। तो पदार्थोंके उपभोगके प्रसंगमें तीन साधनोंसे काम पड़ता है। यदि इन्द्रियविषयोंका विजय करना है तो इन साधनोंसे उपेक्षा करनी पड़ेगी। विषय विजयका यह मूलमन्त्र है। इन तीन साधनोंकी उपेक्षाका उपाय यह है कि इसका जो स्वरूप है उसके विपरीत अपने स्वरूपकी भावना लगे। जिससे उपेक्षा करना है उससे उल्टा बनकर ही उपेक्षा की जा सकती है। तो देख लीजिए इन्द्रियके विषयभूत पदार्थ भोजन आदिक जो भोगने में आ रहे हैं ये पदार्थ पदार्थ हैं, पिण्ड हैं, संग हैं, परिग्रह हैं, कुछ चीज जैसी लगती है। लेकिन यह आत्मा निःसंग है, इसमें कुछ पिण्ड नहीं नजर आता, कुछ संग नहीं नजर आता। आकाशवत् निर्लेप निःसंग है तो इन संगोंसे, परिग्रहोंसे, विषयोंसे उपेक्षा करनी है तो अपनेको निःसंग अनुभव करना चाहिये। मैं इन बाह्यपदार्थोंसे रहित केवल ज्ञानप्रकाशमात्र एक निःसंग चैतन्यस्वरूप हूं—यह तो हुई विषयोंसे उपेक्षा।

अब द्रव्येन्द्रियसे इन आंख, कान आदिक इन्द्रियोंसे उपेक्षा करनी है तो इन्द्रियका स्वरूप देखो, ये इन्द्रियां जड़ हैं, पुद्गल हैं। मैं पुद्गलका स्वामी नहीं, पुद्गलका स्वामी पुद्गल है। मैं जड़ नहीं। मैं एक चैतन्यस्वरूप हू, तो जड़ पौद्गलिक इन द्रव्येन्द्रियोंसे विपरीत मैं चेतन हू और चेतनका स्वामी हू। यों अपनेको चैतन्यमात्र निरखकर द्रव्येन्द्रियसे उपेक्षा की जाती है। अब करना है भावेन्द्रियसे उपेक्षा। जो इन पदार्थोंके उपभोग के प्रसंगमें ज्ञान उलझा रहता है, उपयोग फँसा रहता है उस ज्ञानसे उपेक्षा करनी है। यह ज्ञान कहलाता है खण्डखण्ड ज्ञान। जिस विषयको हम उपभोग रहे हैं, उस विषयमें हमारा ज्ञान जो उलझ रहा है वह ज्ञानका एक टुकड़ा बन गया, ज्ञान तो अखण्ड है। जाने तो समस्त लोकको जाने। यह अखण्डात्मक ज्ञान विषयभोगोंके प्रसंगमें टुकडे टुकडे रूप बन रहा है। पर यह खण्डज्ञान मैं नहीं हू। मैं हू अखण्डस्वरूप। तो यों अखण्डस्वरूप निजआत्मा पर दृष्टि करे तो इन खण्डज्ञानोंकी उपेक्षा हो जायगी। तो यों इन विषयपदार्थोंसे और शरीरके आंख, कान आदिक इन्द्रियोंसे तथा

विकल्पात्मक, खण्डात्मक ज्ञानोंसे उपेक्षा जहा बनी रहती है और अखण्ड ज्ञानप्रकाशमात्र अपने आपको अनुभवनेकी रुचि और वृत्ति रहती है ऐसे योगीश्वर वास्तविक मायनेमें निःशंक होते हैं।

भोगविरक्तिकी आवश्यकता—भैया ! भोग भोगमें लगे रहनेसे पूरा तो न पड़ेगा। जीवन है, कुछ बल पाया है, कुछ बुद्धि पायी है तो ये मोही जीव इन सबका उपभोग विषयोंके भोगनेमें कर रहे हैं, पर ये विषयोंके भोग प्रसंग इस आत्माका जीवन नहीं निकाल सकते। तो आत्मा अविनाशी है। जैसी करना करता है उसके अनुरूप ही यह अपनी पर्याय पाता है, परिणति पाता है। उसका गुजारा भोगोंसे नहीं हो सकता। भोग तो कभी छूटेंगे ही। चाहे इन भोगोंको हम अपनी स्वच्छ बुद्धिसे छोड़ दें या ये भोग मेरे मरण पर स्वय छूट जायें या मेरी जीवित अवस्थामें भी ये भोग स्वय नष्ट हो जायेंगे। हर प्रकारसे इन विषयभोगोंका वियोग होगा ही। तब फिर यह बुद्धिमानी क्यों न कर ली जाती कि ज्ञान जगाकर इन विषयभोगोंको स्वय ही अपनी विशुद्ध ज्ञानबलके उपयोगसे छोड़ दिये जायें। ये योगीश्वर समस्त भोगोंसे, शरीरसे, ससारसे विरक्त होकर ये अपने आपके चैतन्यस्वरूपका अनुभवन किया करते हैं। इस कारण ये वास्तविक जितेन्द्रिय हैं।

जितपरीषहताका जयवाद—इन योगीश्वरोंने परीषहोंपर विजय प्राप्त किया है। मोही लोग, कायर लोग न भी परीषह आयें तो भी शरीरके आरामोंमें कुछ कमी समझकर अपने ऊपर उपसर्गका अनुभव करते हैं। कहते हैं कि अरे हमपर तो बड़ा कष्ट है ? अरे क्या कष्ट है ? ज्ञानी पुरुषोंकी वृत्ति तो देखो कि जिनपर भयकर परीषह भी आ पड़े। महीने महीनेभरके उपवासे, आहारके लिए निकले, अन्तराय हो गया, ऐसे कठिन परीषह जिनपर आयें उनपर भी ये योगीश्वर विजय प्राप्त कर लेते हैं। चक्रवर्तीकी पुत्री अनगशरा तीन हजार वर्ष तक जगलमें अकेले रही, कोई हरने वाला हरकर ले गया, किसीने उसका पीछा किया तो वह डरके मारे जगलमें छोड़ गया, पर उस अनगशराने परीषहपर विजय प्राप्त की, धैर्य धारण किया, तपश्चरणमें रत रही। शरीरपर वस्त्र भी न थे, किसी तरह से वल्कलोंसे तन ढाककर अथवा यों ही सारा जीवन व्यतीत किया तो जंगलमें तीन हजार वर्ष तक अकेले रहना यह कितना बड़ा परीषह है ? पर ज्ञान जगा, आत्माको निरखकर सतुष्ट रही, परीषहोंपर विजय प्राप्त किया। तो हम भी जरा-जरासी बातोंमें घबड़ायें नहीं, जरा-जरासी वेदनाओंमें घबड़ायें नहीं, जितपरीषह योगियोंके योगकी उपासना करें।

समस्त प्रकारके परीषहोंपर, उपसर्गोंपर, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करने वाले योगीश्वरोंको मैं वन्दन करता हूं।

जितकषाय योगियोंका अभिवन्दन—पुरुषोंमें महापुरुष वे ही कहलाते हैं जिन्होंने अपने अलौकिक निरापद ज्ञानस्वरूपमें रमनेका ध्येय बनाया है, जो विषयोंमें रमा करते हैं वे तो तुच्छ संसारी प्राणी हैं, अज्ञानसे ग्रस्त हैं, जिसमें कुछ सार नहीं, अत्यन्त भिन्न पदार्थ और जिस रागमें कुछ सार भी नहीं, जो दुःख उत्पन्न करने के लिए आया है, आत्माके स्वभावसे विपरीत है, मायारूप है। ऐसे रागमें अथवा परविषयोंमें मोह करना, राग करना, आकर्षण होना, ये तो सब तुच्छ काम हैं। जिस जीव के सम्यग्ज्ञानका उदय होता है, जिसने अपने आत्माका गौरव परखा है ऐसे स्वविभवके जानने वाले योगीश्वरोंको विषयोंमें रंच भी रुचि नहीं होती और कषायोंमें रंच भी लगाव नहीं होता। कषायें उत्पन्न होती हैं अपने पदानुसार, लेकिन उन कषायोंसे निवृत्त रहना, ऐसा विशुद्ध ज्ञान जागृत रखना कि ये कषायें मैं नहीं हूं, ये मायारूप हैं, मेरेमें मेरे को बरबाद करने के लिए उठी हैं। ऐसा जानकर उनसे लगाव न रखना, उनसे हटकर अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर ही आना यह ही जिनका पुरुषार्थ बना रहता है, ऐसे पुरुष ही महापुरुष कहलाते हैं। ये योगीश्वर जितकषाय होते हैं। इन कषायोंको जीत लिया है, देखिये किसी पर विजय पानेका सभ्यतापूर्ण उपाय यह है कि उससे उपेक्षा कर दी जाय। कषाय भावको जीतनेका और अर्थ क्या है? कर्मोंका उदय होता है उस कालमें उसके निमित्तसे ये कषायें उत्पन्न होती हैं आत्मामें, तो यह निमित्तनैमित्तिक प्रसंगकी बात है। आत्मा भी इस योग्य है अभी और कषायोंका उदय निमित्त भी चल रहा है तो ये कषायभाव उस योग्यताके माफिक उत्पन्न होते हैं। अब वहाँ क्या करें? उन कषायोंको कैसे पकड़कर हटायें, कोई पिण्डरूप तो हैं नहीं और पिण्डरूप भी हों तो अमूर्त आत्मा उसे पकड़ सकता नहीं। तो कषायोंको कैसे निवारा जाय? जैसे यहां लोकमें कोई ऊधमी बालक है तो उसको हाथ पकड़कर लोग अलग हटा देते हैं उस प्रकारसे हटाने योग्य ये कषायभाव नहीं हैं। इन कषायोंपर विजय पाना यही है अपने स्वरूपकी सुध लेकर उन कषायोंसे उपेक्षा कर लेना। बस यही कषायों पर विजय पा लेनेकी बात है। जिस पुरुषके ऐसे सम्यग्ज्ञान का उदय हुआ है उसको यदि यह कहा जाय कि उसे इतना प्रकाश मिला है कि हजारों लाखों सूर्योंसे भी अधिक है तो यह कहा जा सकता है। कि यह प्रकाश अलौकिक है। तो ये योगीश्वर उस ही ज्ञानप्रकाशमें रहकर

अपने विशुद्ध आनन्दसे तृप्त रहकर कषायोंसे उपेक्षा कर डालते हैं। कोई अद्‍भुत आनन्द मिले तो कषाय करने से उत्पन्न हुए कल्पित सुखकी उपेक्षा की जा सकती है। तो योग्य आत्मीय विशुद्ध सुगम स्वाधीन सहज आनन्द हुआ है उसके बलसे ये कषायोंसे उपेक्षा किया करते हैं ऐसे जितकषाय योगीश्वरोंको हमारा नमस्कार हो।

जितरागद्वेषमोह योगियोंका अभिवन्दन—ये प्रभु योगीश्वर रागद्वेष मोहके विजयी हैं। जो बात कषायमें समझी गई है, कषायों से निवृत्त होने के लिए, वह ही बात रागद्वेष मोहमें भी लगाना चाहिये। राग और द्वेष ये कषायें ही तो हैं। कषायोंके दो भेद हो गए हैं, कोई कषाय रागरूप है, कोई कषाय द्वेषरूप है और मोह जो है वह इन दोनों धारावों के मूलमें भरा हुआ एक विष सागर है। जैसे किसी बांधमें रुका हुआ कोई बड़ा तालाब है इसमें अगर बांध बीचमें न टूट कर अगल बगल टूट जाय तो बीचके स्तम्भकी अटक होनेके कारण इससे दोनों ओर दो धारायें बह निकलती हैं इसी प्रकार इस जीवका मोहभाव, अज्ञानभाव ये विषवत् हैं जिनका कि ये प्राणी आदर करते हैं, इस मोहभावसे राग और द्वेषकी दो धारायें बह निकलती हैं। जीवका वास्तविक आन्तरिक बसा हुआ शत्रु तो मोह ही है। कहावतमें कहते हैं कि यह तो आस्तीनका सॉंप है। अपनी ही बाहमें सुखपूर्वक रहने वाला सॉंप अपने को ही काट लेता है, ऐसे ही अपने स्वक्षेत्रमें, अपने ही प्रदेशमें रहने वाला यह मोहभाव इस आत्मा को ही बरबाद कर देता है। अथवा जैसे छेवले आदिक पेड़ोंमें उन्हीं में से लाख पैदा होती है और वह लाख बढ़कर छेवलेके पेड़को सुखा देती है ऐसे ही यह मोह मुझसे ही पैदा हुआ और मुझको ही यह सुखा डालता है। तो यह मोह इस अज्ञानभावके भीतकी आड़के कारण दो धाराओंमें बह गया है। एक धारा राग की और एक द्वेषकी। देखो तभी तो यह जीव राग और द्वेषके विकल्प बनाकर कितना दुःखी हो रहा है? है कुछ नहीं इसका इसपर खेद वह अज्ञानी नहीं कर पाता है। खेद होता है ज्ञानियों को। सभी ज्ञानियोंकी बात कह रहे हैं। जो करुणावान योगीश्वर हैं वे अज्ञानियोंके दुःखपर खेद करते हैं। देखो तो कैसा गजब है कि दुःखी तो हो रहे हैं अज्ञानी मोही जीव और उनका खेद मान रहे ये ज्ञानी जीव कि देखो ये संसारके प्राणी जरासा ही तो इनकी दृष्टिका फेर है। कोई बड़ा अन्तर नहीं। स्वमुखता और विमुखता मात्र ही तो अन्तर है। ये बहिर्मुख होकर कैसा दुःखी हो रहे हैं। वस्तुतः ज्ञानी उनके दुःखसे दुःखी नहीं हैं किन्तु ज्ञानी पुरुषोंने अज्ञानियोंकी यह मूर्खता निरखकर अपनेमें करुणा

भाव जगाकर अपने ही भावोंसे दुःख माना है, लेकिन विषयोंकी दृष्टिसे कहा जा रहा है और कहीं अज्ञानियोंके दुःखका खेद ज्ञानी मानते हैं इसका यह अर्थ नहीं है कि अज्ञानियोंका बोझ कुछ कम हो गया है क्योंकि अज्ञानियोंके दुःखमें कुछ दुःख ज्ञानियोंने भी माना है। अज्ञानी तो उतना ही पूरा दुःखी हैं जितना कि अज्ञान बसा हुआ है। तो यह मोह महान् अंधकार है और अज्ञान है। इन सब रागद्वेष मोह भावोंपर जिन योगियोंने विजय प्राप्त किया है उन्हें प्रणाम हो।

मोहका अनिष्ट साम्राज्य—इस जगत पर बहुत बड़ा साम्राज्य छाया हुआ है। यह किस किस जीवको किस रूपमें बरबाद करने के लिए आ उठ खड़ा हुआ है। पशु पक्षियोंका मोह उनके किस्मका है। वे भी अंडोंमें बच्चोंमें मोह करने की आदत बनाये हुए हैं। मनुष्योंके बच्चोंका मोह और किस्मका है यदि किसी बच्चेको उसकी मा गोदीसे उतार दे तो वह अपना अनादर समझकर दुःखी होता है। तो ये पशु पक्षी बच्चे आदि सभी इस मोहके द्वारा सताये हुए हैं। कुछ समझदार पुरुष होते हैं, कुछ कलायें सीख लें तो अब उनको नामवरीका यश कीर्तिका मोह हो जाता है। अरे तेरेमें नाम है किसका? तू तो निर्नाम है। ॐ निर्नाम शुद्ध चिदस्मि। अनुभव करो कि मै नामरहित शुद्ध चैतन्य हूं, इसमें अगर झूठ बात मालूम पडे तो न मानो और अगर सच्चाई मालूम हो तो अपने भले के लिए मान लेना चाहिये। मेरा कुछ नाम है क्या? नाम धरो, क्या नाम धरते? जो भी नाम धरोगे उसका, वही नाम है सबका। जब सबका वही एक नाम हो जाता है तब फिर नामकी बात तो नहीं रही। मानलो सभी मनुष्योंका नाम खचेड़ूमल रख दिया जाय तो कौनसा खचेड़ूमल चाहेगा कि मेरा नाम इन पत्थरों पर खुदाया जाय? अरे उस नाममें तो सभी का नाम आ गया। तो आत्माका जो भी नाम रखा जाय वह तो सबका नाम है। नामके मायने वाचक शब्द। इस नाम शब्दसे जो भी वाचक शब्द हैं वह किसका वाचक है? वह सबका वाचक है। फिर मैं ही तो नहीं आया। यह मैं नामरहित हो गया, इसका निर्णय कर लीजिए। सभी अनर्थोंकी जड़ इस नामका लगाव है तभी कुछ दार्शनिकोंने आस्रवका मूल कारण नाम बताया है। तो मैं नामरहित शुद्ध चैतन्य हूं। एक वह ज्ञान प्रकाश अथवा सामान्य प्रतिभासमात्र जिसमे हमारा उपयोग लगने पर प्रतिभास प्रतिभासमें जुड़ गया। अब वहाँ कोई विकल्प नहीं रहा, ऐसा जब निर्विकल्प अनुभव होता है उस समय तो यह वास्तविक रीतिसे जानता है और फिर उस स्थितिसे हटकर विकल्पोमें आता है,

जब यह परख करते हैं कि और मेरा तो यह स्वरूप है ऐसे इस निर्नाम शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें सुध न होने से यह अज्ञानी जीव यत्र-तत्र अपना उपयोग दे रहा है, अपना सर्वस्व समर्पण कर रहा है।

संसारी जीवोंका एक विकल्प ही व्यापार—अज्ञानमें जो रुचा उसीके आगे दीन बन जाना, कायर बन जाना, उसके रागमे बरबाद कर लेना। मोहियोंका यही एक मात्र रोजगार चल रहा है। कोई कहे कि अमुक का खूब रोजगार है और इस दूसरे भाईका कम रोजगार है, औरोंका तो बिल्कुल थोड़ा रोजगार है। अरे सबका एकसा रोजगार चल रहा है, चाहे लखपति हो, चाहे करोड़पति हो, चाहे गरीब हो, देहाती हो, शहरी हो, सभीका रोजगार एक किस्मका चल रहा है। दूसरा रोजगार है ही नहीं। जैसे किसी गाँवमें एक ही किस्मका रोजगार चल सकता है, जहां मानलो कोयला या अभरक निकलती है और कुछ बात ही नहीं तो वहां एक ही तरहका रोजगार है। तो ऐसे ही इस संसारमें एक ही किस्मका रोजगार चल रहा है, सबको देख लिया भीतरमें और कोई दूसरा रोजगार जानते ही नहीं, यह ही रोजगार चल रहा कि, परपदार्थों का आश्रय करना, परमें उपयोग देना, उनमें कल्पनायें बनाना, भली बुरी बातें सोचना, अनेक प्रकारके विकल्प बनाना, बस यही रोजगार इन संसारी जीवोंका चल रहा है। जैसे लोग कहते हैं कि यह साहब कपड़ेका रोजगार करते हैं, यह सर्राफेका रोजगार करते हैं, यह अमुक रोजगार करते हैं, पर वे सब तो एक विकल्पोंका ही रोजगार कर रहे हैं। दूसरी किस्मका रोजगार संसारमें रखा ही नहीं है। पर इन सब रोजगारोंमें इस आत्माको टोटा ही पड़ता है, नफेकी बात यहाँ नहीं समझमें आती। तो फिर शंका कर सकते हो कि जिस रोजगारमें नफेका नाम नहीं, टोटा ही टोटा पड़ता है तो वह रोजगार तो चल ही नहीं सकता। जहाँ पूरी पूँजी मिट गई फिर रोजगार कौन करेगा? प्रभुके निकट बैठकर यह प्रभु ही तो रोजगार कर रहा है अपने को भूलकर, इसलिए कहां पूँजी की कमी नहीं आती। यहाँ टोटा पड़ता जा रहा, विकल्प चलते जा रहे, पर विकल्प चल चलकर यह विकल्पोंका खजाना खाली नहीं हो पाता क्यों कि ये विकल्प बेसुध बेहोश मूर्छित लोग ही तो व्यापार कर रहे हैं, टोटा सहते जाते और इसी रोजगारमें लगे रहते। इतना भी न सोचा जाता कि इस रोजगारमें जब क्लेश ही क्लेश हैं तो इसको बदलकर देखो दूसरा रोजिगार करें। जब रागमें, द्वेषमे, मोहमें, विकल्पमे किसी प्रकार की शान्ति नहीं प्राप्त हुई तो इस रोजगारको छोड़कर अब जरा सम्य-

ज्ञानका निर्विकल्प होनेका ऐसा कुछ रोजगार देखें, पर अज्ञानियोंको यह बात मनमें नहीं आती। जब तक मोह भाव है तब तक शुद्ध पथ तो मिल ही नहीं सकता।

ज्ञानीयोगियोंके वैराग्यका एक मोटा कारण--इन योगोश्वरोंने मोहपर विजय तो पहिले ही कर लिया था। अब योगधारण करनेके बाद भी जो रागद्वेष शेष रह गए थे, अथवा जो भी रह गए उन पर अब ये विजयकर रहे हैं, उन सबको जीत रहे हैं, उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। किसी पुरुष को फांसीका हुक्म दे दिया जाय तो फिर उसे कुछ भी नहीं रुचता। कोई मिष्ठान्नकी अच्छी थाली भी उसके सामने रखदे तो भी उसे वह मिष्ठान्न नहीं रुचता, और भी अनेक प्रकारकी भोग सम्बन्धी चीजें उसके सामने हाजिर की जायें तो भी उसे नहीं रुचतीं, क्योंकि वह तो जानता है कि मेरे तो प्राण जाने वाले हैं, इसी प्रकार जिन योगीश्वरोंको जन्ममरणका भय लगा हुआ है वे योगीश्वर ससारके किसी भी विषयप्रसंगमें अपनी रुचि नहीं रखते। सम्यग्ज्ञानके बलसे ये योगीश्वर रागद्वेपमोहको जीत लेते हैं ऐसे वीतराग वीतद्वेप, वीतमोह योगियोंको मेरा नमस्कार हो।

जितसुखदु.ख योगियोंका अभिवन्दन--ये योगी सुख दु खके विजयी हैं, ये न सुखमे लगाव रखते हैं और न दु खमे। दोनोंको औपाधिक समझ रहे हैं। ये सुख दु'ख क्या हैं? कर्मोदयका निमित्त पाकर रागद्वेपादिक का मिश्रण होकर एक आनन्द गुणका विकार हुआ है सुख अथवा दु.ख। यह मेरा स्वरूप नहीं है। ज्ञानी योगी इन सुखोंमे लगाव नहीं रखते। एक क्षणकी भी बेहोशी ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक के मोहनीय कर्मका बन्ध करा देती है। इतना ऐब भरा है इस मोहमें, इस बेसुधीमें और फिर जो निरन्तर यह बेसुधी ही बनाये रहते हैं उन्हें तो संसारसुभट कहा गया है। पर जिन योगीश्वरोंने भी भय किया उन परतत्त्वोंसे भी ये संसारी जीव भय नहीं करते, बल्कि उनमें ही रमा करते हैं। सुख दु ख एक कल्पना भरा भाव है। कल्पनायें करके अभी दु'खको ही बदल कर सुखरूप भी किया जा सकता है। कल्पनायें करके ही सुखको दु ख रूपमें ढाल सकते हैं, दु खको सुखरूपमे ढाल सकते हैं। इनका आधार कल्पनायें हैं। कोई इष्टवियोग हो गया तो कोई तो खुश होता है चलो एक बन्धनसे तो मेरा निकलना हुआ अब मैं स्वतन्त्र हो गया, अपने आत्माके स्वरूपकी आराधना करूँगा और इस ससारके संकटोंसे दूर होनेका उपाय बना लूँगा और कोई इष्टवियोगमें अत्यन्त क्लेश मानता है। दु'ख उसने कल्पनाओंसे ही तो किया, कोई विषयोंमें सुख मानता

है, उसे बड़ी मौज है, सब प्रकारके साधन मिले हुए हैं, खाने पीनेका बहुत सुन्दर इन्तजाम है, वह इन विषयोंसे सुख मानता है। तो ये सब काल्पनिक चीजें हैं। आत्मा तो इन कल्पनाओंसे परे अमूर्त विशुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वरूप है और उसका आनन्द भी अविचल अखण्ड स्वाधीन है, ऐसा समझने वाले योगीश्वरोंने सुख दुःख पर विजय प्राप्त किया है, ऐसे सुख दुःखके विजयी योगीश्वरोंको मेरा नमस्कार हो।

एव मए भित्थुया अणयारा रायदोसपरिसुद्धा।
संघस्स वरसमाहिं मज्झवि दुक्खक्खय दितु ॥२३॥

योगभक्तिमें अभ्यर्थना—जिस प्रकार मेरे द्वारा स्तवन किया गये ये अनगार योगीश्वर जो रागद्वेषसे दूर रहते हैं वे सघको उत्तम समाधि प्रदान करें और मेरे भी दुःखका क्षय करें। यह प्राकृत योगभक्ति में अन्तिम छन्दके द्वारा योगिस्तवनमें अपना उद्देश्य प्रकट किया है। वस्तुतः समाधि और दुःखका क्षय तो स्वयको स्वयं ही करना है लेकिन जो समाधिभावमें चले हैं, जिनके दुःखका क्षय हो रहा है ऐसे योगीश्वरोंकी भक्तिसे, उनके सन्निधानसे उनके उस भीतरी पुरुषार्थके स्मरणसे भक्तमें अपना बल प्रकट होता है और उससे वे समता प्राप्त करते हैं, दुःखका क्षय करते हैं। ये योगीश्वर अनगार हैं, घर रहित हैं, इनका अब द्रव्य घर भी न रहा। ईंट, पत्थर महलों वाले घरमें ये योगीश्वर अब नहीं बसते। जगलमें झाड़ियोंमें, गुफाओंमें स्वतन्त्र यत्र तत्र विहार करते हैं। उनके भावमें घर भी नहीं रहा। उस बीते हुए समयकी कल्पनायें तक भी नहीं करते। जिनका ध्येय बदल गया। जो एक उत्कृष्ट ध्येयमें आ गए उनको व्यतीत बातोंकी कल्पना नहीं जगती कि कैसा सुख भोगा था, क्यों कि अब ये द्विज हो गए ना। दूसरी बारका जन्म हुआ है। ऐसे ये निर्ग्रन्थ अनगार पुरुष मुझे समतापरिणाम दें और दुःखोंका क्षय करें। ये रागद्वेषसे रहित हैं। जहा रागद्वेष हैं वहा समता नहीं और दुःखोंका क्षय भी नहीं। समता और विगतक्लेशता प्राप्त करनेका उपाय तो राग द्वेषसे रहित होना है। सो जो इस उपायमें सफल हो रहे हैं ऐसे रागद्वेषसे रहित योगियोंका यहाँ स्तवन किया है और उस सघकी कुशलता और अपनी कुशलताकी चाह की है कि वास्तविक जो कुशलता है, स्वस्थता है वह बनी रहे और अपने इस विशुद्ध अविकार ज्ञानस्वभावमें स्थित रहें, इस प्रकारकी योगभक्ति करके प्रार्थना की गई है।

लघुयोगभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः,
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्था
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः ॥१॥

योगभक्तिमें योगियोंके स्तवनपूर्वक हितकी अभ्यर्थना—संस्कृत भाषामें निबद्ध योगभक्ति पहिले हो गयी थी और प्राकृत भाषामें निबद्ध योगभक्ति अभी अभी समाप्त हुई है। अब जिन अवसरोंमें योगभक्ति करना आवश्यक है और जो अवसर ऐसे माने गए हैं कि बड़ी योगभक्ति न करके लघुयोगभक्ति करके भी अनुष्ठान पूर्ण किया जा सकता है उस अवसरमें लघुयोगभक्ति पढ़ी जाती है। इस योगभक्तिमें तीन छंद हैं, किन्तु तीनों छंदोंमें शीघ्र ही योगियोंके सम्बन्धमें क्या विचारा जाना चाहिए, उसका संक्षिप्त और उत्तम वर्णन है। इस प्रथम छंदमें कहते हैं कि वे मुनिगण श्रेष्ठ मुझे धर्म प्रदान करें। योगियों की उपासना के उद्देश्यमें केवल यह चाहा गया है कि मेरेमें धर्मका विकास हो। जिस महापुरुषका जिस पर अधिकार है उससे उसकी वाञ्छा करे, उस जगह अधिकार करे तो उसकी सिद्धि हो सकती है। पर जो वस्तु है ही नहीं उनके पास अथवा जिस वस्तुका उन्होंने परित्याग कर दिया है उसकी वाञ्छा करनेसे कोई सिद्धि नहीं है। योगी धर्ममूर्ति कहलाते हैं। धर्म हम कहाँ देखें, ऐसी यदि चित्तमें अभिलाषा हुई है तो योगियोंको देखने लगें, इनकी मुद्रामें, इनके उठने बैठनेमें, इनके वचनोंसे और अनुमानसे समझ गए इनके उस चित्तप्रसारमें धर्मका विस्तार पड़ा हुआ है, ऐसे धर्ममूर्ति मुनिगण श्रेष्ठ मुझे धर्म प्रदान करें।

वर्षा ऋतुमें योगियोंका योग—ये मुनिराज तीन ऋतुवोंमें तीन ऋतुवों के कठिन परीषह सहकर भी अपने ज्ञानस्वरूपकी उपासनाके कर्तव्यसे विचलित नहीं होते। वर्षाकालमें जब कि विद्युत् जगह-जगह थोड़े-थोड़े समय बाद चमक रही है, जहाँ बिजलीकी बड़ी गर्जनायें चल रही हैं और मेघोंकी भी गर्जनायें चल रही हैं, जहां मूसलाधार जलधारा पड़ रही है ऐसे वर्षाकालमें ये योगीश्वर वृक्षोंके मूलमें अधिवास करते हैं। यहां अधिवास शब्द लिखा है जो कि एक छंदमें तुक पूर्तिके लिए नहीं, किन्तु एक मर्म बतानेके लिये है। वास प्रवास अधिवासमें अन्तर है। वासमें तो प्रायः स्वामित्व बसा हुआ है, हमारा इस घरमें वास है। प्रवासमें अपने

कौलिक निवास स्थान तो छोड़कर किसी अन्य जगहमें स्वामित्व बसाया है और अधिवासमें किसी प्रसंगको पाकर उस प्रसंग तक ठहरनेका अर्थ बना हुआ है। ये योगीश्वर वर्षाकालमें वृक्षोंके नीचे निवास किया करते हैं।

शीत और ग्रीष्म ऋतुमें योगियोंका योग--ये योगी शीत ऋतुमें रात्रिके मध्य निर्भय होकर किसी भी मैदानमें कहीं भी इस प्रकार देहका उत्सर्ग करके ठहरे हैं जैसे कि मानो कोई काठ पड़ा हुआ हो। ऐसा शीतकाल जिसमें बन्दरोंका अभिमान नष्ट हो जाता है। जब बहुत तेज शीत पड़ती है तो बन्दर भी उससे हार मान जाते हैं। जहाँ तुषार पड़ रहा है, शीत-वायु चल रही है ऐसे समयमें रात्रिके समय अति शीत पड़ती है उस समय ऐसे देहका ममत्व छोड़कर साधुजन विराजे हुए हैं जैसे कि काठ पड़ा हुआ हो। शरीर निश्चल और भीतर ही गुप्त ही गुप्त अपने स्वरूपके दृढ़ किलेमें ठहर कर समताका अनुभव किया करते हैं। ये योगीश्वर ग्रीष्मकालमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त हुए और पर्वतोंके शिखर पर स्थित हुए, अन्य अनेक स्थानोंमें रहकर परीषहोंका विजय करते हैं। ये योगी क्या हैं? ये मोक्ष की नसैनी हैं। इनका कर्तव्य, इनका आचरण, रत्नत्रय ये मोक्षकी मानो नसैनी हैं। ऐसे ये मुनिगणोंमें श्रेष्ठ योगी मुझे धर्म प्रदान करें, एक ज्ञानस्वभावकी उपासना करनेकी धुनि बनावें। इन योगियोंके यही तो है सो उनके इस गुणस्मरणको करके यह भक्त यह भाव भाता है कि मुझमें इसही मत धर्मका विकास हो।

योगियोंके योगसाधनाकी धुनमें संस्थानविचय धर्मध्यानकी विशेषता--योगसाधक पुरुष अपनी योगसाधनाकी धुनमें इन ही प्रक्रियावोंमें आराम मानते हैं और इस ही की साधनामें अपना समय व्यतीत करते हैं। जैसे कोई मोही लोभी दुकानदार दुकानकी चीजोंके संभालनेमें धरनेमें जोड़नेमें अपना समय व्यतीत करते हैं, तो योगीपुरुष इन योगसाधनोंके यत्नमें अपना समय बिताते हैं। कभी किसी आसनसे बैठकर उस ज्ञायकस्वभाव अन्तस्तत्त्वका ध्यान करते हैं, कभी वीरआसनसे कभी कुक्कुटासनसे, कभी मृतकासनसे काठकी तरह निश्चल पड़े रहकर एक इस अन्तस्तत्त्वकी भावना किया करते हैं। ध्यानसाधनामें संस्थानविचय धर्मध्यानका बहुत बड़ा सहयोग है। इस धर्मध्यानमें मुख्य विषय तो यह है कि लोक और कालके आकारका विचार करना। लोकका आकार- जितना महान है, ३४३ घनराजू प्रमाण है। उसका विस्तार-निरखना और इस लोकमें जहां जहां जो जो रचनायें बनी पड़ी हुई हैं उनका चिन्तन करना, यह लोकके

आकारका चिन्तन है। इस आकारके चिन्तनका यह साक्षात् प्रभाव पड़ता है, यह मन अपनी उद्दण्डता छोड़ देता है। मन नामवरीके लिए उद्दण्ड रहा करता है। नामवरी भी किसकी? इस भवमूर्तिकी। जैसे कोई पूछे कि हमें बताओ संसार क्या है? तो ये विचित्र देहधारी प्राणी हैं संसार। स्थावर कीट पतिंगे मनुष्य पशु पक्षी आदिक इनको बता देवे यही है चलता फिरता संसार। इन प्राणियोंका जहाँ जहाँ निवास है, जिस जिस प्रकारका इनके देहका आकार है वे सब संस्थानविचयमें गर्भित हैं। इनका चिन्तन करना। तो जब लोकका इतना विशाल रूप निरखा इस ज्ञानीने तो सहसा यह विकल्प टूट जाता है कि काहेका नाम, काहे की ममता? कितनी जगहमें अपना ममत्व करना, स्थान तो इतना विशाल है। आज यहाँ जीवित हैं। यहाँसे चलकर अन्यत्र कहीं उत्पन्न हो गए। कितनी जगह उत्पन्न होनेके स्थान? ऐसे विशाल लोकाकारका चिन्तन करके विकल्प वासना टूट जाती है।

लोक और कालके विस्तारकी अश्रद्धामें नामवरीके लगावकी आपतितता— इस जीवको सबसे कठिन विपदा लग रही है और खासकर इस मनुष्यको कि इतने नाममें लगाव रख रक्खा। इस ध्यानमें विरले ही पुरुष रहे कि मैं नामरहित शुद्धचैतन्य हूं— ऐसी प्रतीति करना, ऐसा अनुभव जगना, ऐसा अपनेको मानना यह है अमृतपान। मैं नामरहित शुद्धचैतन्यमात्र हू। नाम रखा है मायावी लोगोंने। नाम रखा है मायावी भवमूर्तिका। मेरा कोई नाम नहीं। मैं नामरहित शुद्धचैतन्य हूं। मोही जन नामका लगाव रखकर फिर क्षेत्रकी ममता किया करते हैं। जितनी भी ममता प्रकट हो रही है उन ममताओंका यह नाम आधार बन गया है। बड़े-बड़े मकान बनाना, यह अमुकका भवन है, इस प्रकार वह एक नामके लगावका ही तो श्रम है। बड़े-बड़े फर्म, बड़े रोजगार बड़ी कम्पनियां, करोड़पति अरबपति, जो इतने बड़े आरम्भ बढ़ाये हुए हैं पुण्यके उदयमें प्राप्त हुए, इसकी चर्चा अभी नहीं कर रहे, किन्तु भावकी ओरसे चर्चा कर रहे हैं कि इतने बड़े वैभव सम्पदामें वे पड़े क्या हैं? किसे क्या दिखना? कौन किसका मालिक? केवल एक मायामय संसारमें अपनी मायामूर्तिका नाम अपना बनाकर चाहते हैं कि लोग जान जायें कि यह कितना धनी है। अरे वह है क्या? एक अमूर्तआकाशवत् निर्लेप केवल चैतन्यमात्र, और यह प्रभु मायाजालमें गुंथकर इतने कष्ट सह रहा है। तो सब अनर्थोंका मूल यह नामका लगाव है। तो क्षेत्रमें जो यह ममता बढ़ी हुई है। मेरा क्षेत्र उतना है जितनेमें नाम हो, जितने मे शासन प्राप्त हो, जितना शासन क्षेत्र हो,

जितने में अधिकार हो। यह इस नामके लगाव पर विडम्बना आयी है। ये सब विडम्बनायें ही तो हैं। विडम्बना कहते उसे हैं कि जहा हाथ तो कुछ न लगे और परेशानी बहुत हो। तो इस ससारमें जो श्रम किया जाता है, जो व्यवहार किए जाते हैं उन सब क्रियावोंमें हाथ कुछ नहीं लगता। इससे और बढ़कर क्या उदाहरण होगा कि ये धर्मके काम--शास्त्र सुनना, शास्त्र बाचना, उपदेश करना, समारोह करना, पूजा करना आदिक इनकी प्रवृत्तिमें भी भीतर यह लगाव पड़ा हुआ है कि यदि नामके लगावकी चर्चा धन क्षेत्रमें की है तो यहा भी तो विडम्बना हुई। विडम्बना कहते उसे हैं कि हाथ कुछ न लगे और परेशानी बनी रहे। यह भावमात्र जीव अपने भावोंसे, विकल्पोंको, विभावोंको कर करके इतना परेशान हो रहा है। तो संस्थानविचय धर्मध्यानमें जहा लोकके इतने विशाल आकारका चिन्तन चलता है वहा फिर यह ममता नहीं ठहरती।

कालके सम्बधमें यथार्थ विचार—अब कालके आकार पर विचार कीजिए। कालमें लम्बा चौड़ा आकार नहीं, किन्तु उसकी जो भी मुद्रा है भूत, वर्तमान, भविष्यकी, उस रूपमें निरखना है। भूतकाल कितना गुजर गया? अनन्तकाल। जिसकी आदि ही कुछ नहीं। कल्पनामें यदि कालकी आदि लेबोगे कि काल इस समयसे, इस क्षणसे शुरू हुआ है, इस दिनसे शुरू हुआ है तो क्या यह माना जा सकता है कि उस दिनसे पहिले समय ही कुछ न था। समयका प्रारम्भ अनुमानमें नहीं लाया जा सकता। प्रारम्भ है ही नहीं। अनादि है और इस कालकी अनादिके परिज्ञानसे यही भी जान जायें स्पष्ट कि प्रत्येक सत् भी अनादि से है। जबसे काल है तबसे प्रत्येक सत् है। जो ये सब पुद्गल आदिक पदार्थोंके समुदाय दिख रहे हैं ये पदार्थ कबसे हैं? जबसे यह समय है तबसे ये पदार्थ हैं। समय कबसे है? उसकी आदि बन ही नहीं सकती। समयके बारेमें यह कल्पना नहीं बन सकता कि इस दिनसे पहिले समय न था। इसी प्रकार इन सत्पदार्थोंके सम्बधमें यह कल्पना नहीं बन सकती कि यह जीव इस दिन पहिले कुछ भी न था, इस दिन हो गया। अथवा कोई पुद्गलपरमाणु इस दिन कुछ न था, इससे पहिले कुछ न था इस दिन हो गया। किसी भी पदार्थके बारेमें आदिकी कल्पना उठ नहीं सकती है। तो यह काल अनादिसे है।

क्षेत्रकालके विचारके समय लौकिक वैभवकी असारता—देखो अब तक अनन्तकाल व्यतीत हो गया, इस कालमें कितने चक्रवर्ती हो गए? अनन्त-चक्रवर्ती कहो तो गलत न होगा। कितनी उत्सर्पिणी व्यतीत हो गयी, अव-

सर्पिणी व्यतीत हो गयी ? इन सभीमें चक्रवर्ती उत्पन्न तो होते हैं और एक एक कालमें १२ चक्रवर्ती हो जाते हैं। उत्सर्पिणीमें भी और अवसर्पिणीमें भी। और ऐसे ऐसे ५ भरत और ५ ऐरावत इन १० क्षेत्रोंमें होते हैं, और ५ महाविदेहोंमें १६० नगरियोंमें प्रत्येकमें तो ये चलते ही रहते हैं। वहां काल विभाग इस प्रकारका नहीं है। यों असीम उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकाल व्यतीत हो गए तो क्या कहा जाय, कितने वैभववान पुरुष हो गए ? क्या रहा ? कुछ भी नहीं रहा। सबने अपने अपने पुण्योदयकालमें विवल्प मचाये। किन्हीं विरले पुरुषोंने विरक्ति भी रखी। हम आप सबने कितने भव धारण किये ? जरा उस काल की अनादिता सोचकर स्पष्ट समझ लीजिए, अनन्तभव व्यतीत कर डाले। उन भवोंमें पाया क्या ? विडम्बना की। किसी भवमें बड़े राजा महाराजा भी हुए कि सब जनता और बड़े बड़े राजा भी चरणोंमें पड़े रहे। सबपर अधिकार बना, उस समय इस जीवको लगता होगा ऐसा कि मैं प्रभु हूं, मैं इनका मालिक हूं, ऐसी अनेक बार स्थितियाँ पायीं, पर रहा क्या ? उस समय भी हमने विडम्बना ही पायी। जहाँ मिलेजुले कुछ नहीं, परेशानी ही रहे, उसको कहते हैं विडम्बना। तो जब कालका स्वरूप विचारा जाता है तो इसको यह बुद्धि उत्पन्न होती है कि अनादि अनन्तकालके समक्ष ये १०-२०-३० वर्ष क्या गिनती रखते हैं, उतने समयके लिए नामका लगाव रखकर तन, मन, धन, वचनका श्रम करना, यह इस जीव के लिए अहित भरी बात है।

संस्थानविचयधर्मध्यानमें पार्थिवी धारणाका योग—इस ही संस्थानविचय धर्मध्यान में धारणाओं द्वारा ध्यान की साधना बतायी है। पार्थिवी धारणामें चिन्तन चलता है कि एक बहुत बड़ा समुद्र है, मानों हजारों लाखों योजनोंके विस्तार वाले समुद्रमें चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है। देखिये यह सब कल्पनाओंसे सोचा जा रहा है, अब इनमें कल्पनायें कर करके जहाँ आत्माका उपयोग ले जायगा उस क्षणमें इस कल्पना से ऊपर चढ़े हुए उन्नत आत्मामें सहज उन्नतभाव हो जायगा। इस विशाल समुद्रके बीच एक मेरुपर्वतके समान विशाल लम्बा चौड़ा ऊँचा एक कमल नाल है जिसपर विस्तृत कर्णिका है, उसपर कमल विकसित है, उसपर एक आसन है, इतना ऊपर अपनेको कल्पनामें ले जाया गया है। इस मनका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। इतने ऊँचे स्थित यह मैं अरहंतके समान हूं। समान समान सोचते हुए भूल गए भेद। मैं अरहंत हूं। अपने गुणोंको निरखकर उपयोगको इस विशुद्ध स्वरूपमें ले जाया गया है। साथ ही इस

भूमितलसे ऊँचे चढ़कर इस भावमें जो विराजमान किया गया है सो उससे कितना ही भार, कितने ही विकल्प हट जानेमें पूर्ण सहयोग मिलेगा, और ऐसी निर्भार स्थितिमें यह प्रभुसम अपने स्वरूपका विचार कर रहा है। अब इसका उपयोग सहजज्ञान दर्शन आदिक गुणोंमें लग रहा है। यहाँ भेद उपासना टालकर अभेद उपासनाको भी अवसर इसे मिल सकता है।

संस्थानविचयधर्मध्यानमें आग्नेयी धारणाका योग– पार्थिवी धारणामें चल रहा है चिन्तन, और इस ही चिन्तनके अनन्तर जब शरीरका ऐसा फैलफुट आकार भूलकर एक सामान्यतया एकत्रिकोण आकारमात्र रह गया है। जैसे कि पद्मासनमें बैठे हुए पुरुषके चारों ओर यदि सीधी लैन लगा दी जाय तो चारों ओर न लगेगी, तीन ओर लगेगी। और वह एक त्रिकोण बन जायगा। इस मूर्तिके चारों तरफ आग्नेय मन्त्रके प्रतीक र र र का पंक्तिबद्ध वर्ण प्रसार बना हुआ है। आधा र तो शिखाकी भाँति ऊपर ही चढ़ा करता है और यदि आकार सहित भी र हो तो भी ऐसा लम्बा खिंचकर अपना आकार रखता है। जैसे अग्निकी शिखा जल रही हो और फिर यदि आकाररहित रकार हो तो उसका एक जुड़वा शिखा और एक टुटुमा शिखा ऐसी तीन शिखा के रूपमें उसकी मुद्रा बनती है। वह र अग्निका प्रतीक है। यह बात कुछ सही विदित होती है। तो अपनी इस मुद्राके चारों ओर (र र र) र र र प्रतीक फैला हुआ है और मध्यस्थानमें जहा एक दो कमल की कल्पनायें हुई है और कल्पनायें भी क्या? इस शरीरकी रचना में भी एक मापदण्डमें ५-६ स्थानपर ऐसी मुद्रा पड़ी है जो कुछ कमल पखुड़ियोंकी मुद्राके रूपमें हैं। एक उनमेंसे नाभिकमल देखें जो कि १६ दलका है, सोलह पत्रोंका है, जिन सोलह पत्रोंपर सोलह स्वर लिखे हुए हैं। व्यञ्जनोंकी अपेक्षा स्वरका महत्त्व विशेष है। ये स्वर स्वय राजन्ते। ये स्वयमें ही विराजमान, स्वयं ही उच्चार्यमान, स्वय शोभायमान हैं। इनकी सत्ताके लिए, प्रयोगात्मक अस्तित्वके लिए अर्थात् इन स्वरोंके बोलने के लिए किसी दूसरे वर्णकी अपेक्षा नहीं रखी जाती। ऐसे स्वराजित कमलके दलोंके बीचकी कर्णिकामें हँ का बीजमन्त्र लिखा हुआ है जिनकी रेफसे एक ऐसी चैतन्य प्रतपन शिखा विकसित हुई है कि जिस ज्वालासे यह अष्टदलकमल जल गया है। वह अष्टदलकमल क्या है? अष्टकर्मोंका प्रतीक। और उसकी शिखा ऐसी बढ़ी कि उस अष्टदलकमलको जलाकर चारों ओर शिखा फैल गयी। तो वह भवमूर्ति समस्त भस्म हो गया, अब वहाँ कुछ नहीं रह गया। तो एक भस्ममात्र शेष रह गयी। ये योगी अथवा

कोई ज्ञानी इस ध्यानके समयमें अपने आपमें आग्नेयी धारणा विधिसे आत्माका चिन्तन कर रहे हैं। अब इस धारणाके बाद उसका चिन्तन मारुतीधारणामें चलेगा।

संस्थानविचयधर्मध्यानमें मारुतीधारणाका योग—आग्नेयी धारणामें इस ज्ञानी आत्माने अपने आपको समस्त भारोंसे रहित ज्ञानमात्र अनुभव किया है। कर्म देह विभाव सब जल गए हैं। अब इस अनुरूप कुछ यहां वहां मानो भस्म पड़ी हुई है, कुछ शेष रह गयी है, निःसार। तो अब मारुतीधारणा आती है। मारुतीधारणामें वायु बड़े वेगसे बह रही है। तो इस धारणामें प्रारम्भ तो वायुवेगसे हुआ। अब वह वेग विशुद्ध ज्ञानवेगके रूपमें आ या हुआ है, और इस विशुद्ध ज्ञानवायुके वेगसे रही सही जो भस्म थी वह सब उड़ रही है। जो किञ्चित्मात्र सम्बंधका भार था, निःसार भी भस्मका सम्बंध अथवा लगाव था वह भी उड़ गया है। उस प्रचंड वायुवेग से भस्म उड़नेके बाद यह बहुत ही निर्भार हुआ।

संस्थानविचयधर्मध्यानमें वारुणीधारणाका योग—इसके बाद अब वारुणी धारामें यह ध्याता आया है। इस धारणामें यह निरख रहा है कि चारों ओर घनघोर मूसलाधार वर्षा बरस रही है, जिस वर्षाके प्रवाहसे बड़े बड़े ढेर भी बह जाते हैं। तो वही वर्षा एक ज्ञान वर्षारूपमें भावमें आकर यह वर्षा सूक्ष्मरूपसे स्पर्श किए हुए भस्म आदिक शेष निःसार वे परतत्त्व सब बहे जा रहे हैं। और उस जलसे इस ज्ञानजलसे अब यह बिल्कुल विशुद्ध हो गया है। इस ज्ञानधारासे इसके आत्माका मानो अभिषेक हो गया है, पूर्णरूप से सब कुछ धुल गया है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानोपयोगमें रहकर यह जीव रूपस्थध्यानमें आता है।

रूपस्थध्यानका योग—यह मैं आत्मा अनन्त चतुष्टयसम्पन्न वीतराग सर्वज्ञदेवकी तरह विशुद्ध चित्प्रकाशमात्र हूं। सोहं, जो वह है सो मैं हूं। जो प्रभुका स्वरूप है सो यहाँ यह मैं हूं, इस प्रकार प्रभुके व्यक्त स्वरूपसे अपने स्वरूपकी तुलना रखते हुए अब रूपस्थ-ध्यानमें है। अरहंत प्रभुके ध्यानको रूपस्थ ध्यान इस कारण कहते हैं कि अरहंतसे और उत्कृष्ट अवस्था जो सिद्ध प्रभुकी है वह औपचारिकरूपसे भी रूपी नहीं है, सर्वथा रूपातीत है। उसकी अपेक्षा अभी यह अरहंत प्रभु सकल परमात्मा हैं सो ये रूपस्थ हैं, आकार प्रकार मूर्त देह इनमें वह आत्मा अवस्थित है अतएव हम अरहंत प्रभुको किसी मुद्रामें आकारमें, स्थापनामें इस विधिमें हम सोच सकते हैं लेकिन जो आकार सोचा जाता है वह अरहंतदेव नहीं। उस मुद्रामें रहकर भी उस मुद्रासे निराला, निराहार, निर्विहार निर्विकार,

निर्नाम वह प्रभु एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है। इससे रूपस्थ ध्यानमें समस्त ऋद्धि वैभव अतिशय सम्पन्न प्रभुकी तरह अपनेको विचारा जा रहा है। कभी रूपस्थ ध्यानका चिन्तन करते हुएमें चूँकि वह एक तुलनात्मक ध्यान है तो हर्ष और विषादका एक मिश्रण जैसी भी स्थिति आ जाती है। प्रभु के उस गुणको विचारकर तो प्रमोद छाया हुआ है। कितना विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप इस लोकमें जो सर्वस्व हितरूप है, इससे परमपद और क्या कहा जाय? आत्माकी सुरक्षित अवस्था इसके अतिरिक्त और किसे बतायी जाय? एक परम उत्कृष्ट वैभवसम्पन्न है। समवशरणमें जो भी अतिशय है अथवा देहादिक सम्बन्धी जो भी अतिशय हैं उनके अन्दर आन्त-रिक जो अतिशय है उस सर्व अतिशय समृद्धियोंसे सम्पन्न प्रभुका ध्यान किया जा रहा है।

रूपस्थ ध्यानमें भक्तकी भावुकता— इस ज्ञानीने ध्यानमें अपनेको रूप-स्थ ध्यानमें प्रभुकी तरह गुप्त सुरक्षित मजबूत निरखा है, अब उसको क्लेश कहाँ है? पर इसी बीच जब पर्यायकृत वर्तमान हीनता पर दृष्टि पहुचती है कि प्रभुवत कहाँ तो मेरा स्वरूप, कहाँ यह देहका बन्धन, कहाँ तो निष्काम आनन्दघन आत्मस्वरूप और कहा ये रागादि, ये विपदायें, इन वर्तमान विभाव विपदाओंकी ओर कुछ नजर करके यह खिन्न भी होता है और तब रूपस्थध्यानमें प्रभुभक्तिमें एक हर्ष विषादसे मिश्रित अश्रु बिन्दु भी भलक उठते हैं। ऐसे उस परमभक्तिभावमें भी इस ज्ञानी जीव की कितने ही कर्मोंकी निर्जरा होती है और रागभाव अनुराग भक्तिभाव के कारण एक विशिष्ट पुण्यप्रकृतिका बन्ध होता है, पर ज्ञानी पुरुषोंका ध्येय केवल एक आत्मविशुद्धिका है, सिद्धिकी प्रसिद्धिका है।

रूपातीतध्यानमें संस्थानविचयधर्मध्यानकी सम्पूर्णता—रूपस्थ ध्यानमे अपने आपमें अनन्त बलकी, अनन्त चतुष्टयकी भावना करके अपने को सुदृढ़ बनाकर रूपातीत ध्यानमें आते हैं, केवल अब चित्प्रकाशमात्र अनु-भव करते हैं। इस विशुद्ध श्रद्धाके कारण जो वैभव ऋद्धियां समृद्धिया जगती हैं उन पर अब इनकी रंच दृष्टि नहीं, उनका रंच चिन्तन नहीं। केवल एक शुद्ध स्वरूपका चिन्तन है, उस चित्प्रकाशका चिन्तन है जो अपने ही सत्त्वके कारण सहज रहता है। ये योगीश्वर यों संस्थानविचय धर्मध्यानके इन प्रकारोंमे ध्यान करते हुए अपनी विशुद्धि बढ़ाते हैं। संस्थानविचय कितना महत्त्वपूर्ण ध्यान है यह कहा जा रहा है और इस की शीघ्र और सुगम मुद्रा है। लोकका आकार और कालका विस्तार उपयोगमें रहता है तो यह जीव बेसुर नहीं होता। नाम, यश, कीर्ति,

पोजीशन आदिक समस्त ऐबोंको एकदम छोड देता है। इस विस्तारके विज्ञानमें ऐसा ही अद्भुत अतिशय भरा हुआ है।

कूपमण्डूकवत् लोकविस्तारके अज्ञानियोंके मोहका प्रसार—वे जीव अधिक मोही होते हैं जिन्हें इस दुनियाके विस्तारका पता नहीं। जो आँखों दिखते हैं, जो प्रयोगमें आते हैं, जो चलते फिरते परिचय बनाते हैं, बस इतनी ही दुनिया मेरे लिए सब कुछ है और इस प्रकार दृढ़तासे इस अल्पक्षेत्रको सब कुछ मान रहे हैं, जैसे कूपमण्डूक। उस कुवेंके बीचके उतने क्षेत्रको ही सारी दुनिया समझता है। कोई महासरोवरसे उड़कर आया हुआ हंस कुवेंके तटपर बैठ जाय और मेढक पूछे कि तुम कहाँसे आये हो? तो वह बताता है कि हम मानसरोवरसे आये हैं। वह मानसरोवर कितना बड़ा है? अरे बहुत बड़ा है। वह मेढक अपनी एक टाँग पसारकर कहता है—क्या इतना बड़ा है? जैसे कि बच्चे लोग कोई हाथ फैलाकर किसी बातको पूछते हैं—क्या वह इतना बड़ा है। तो हंस कहता है—अरे इससे बहुत बड़ा है। तो दूसरी टाँग पसार कर मेढक पूछता है, क्या इतना बड़ा है? अरे इससे भी बड़ा। तो तीसरी तथा चौथी टाँगोंका फैलाकर भी पूछता है—क्या इतना बड़ा है? अरे इससे भी बड़ा तो मेढक एक कोनेसे दूसरे कोनेमें उछलकर पूछता है—क्या इतना बड़ा है? अरे इससे भी बहुत बड़ा। तो मेढक कहता है कि सब झूठ। है ही नहीं, इसी प्रकार कूपमण्डूकवत् जिनकी दृष्टि है ऐसे मोहीजन कितने अंधेरेमें हैं और उसी अंधेरेमें दुःखी रहकर ये जीव मोह करते, आकुलतायें मचाते हैं।

मोहियोंकी परदृष्टिका विस्तार - दुनियाका परिचय न होना, क्षेत्रके विस्तारका पता न पड़ना, यह भी इस जीवकी उन्नतिमें बाधक है। अज्ञान ही तो है। लोक काल विस्तार भी जिन्हें विदित नहीं, जिनकी दृष्टिमें नहीं आता कि यह काल अनन्त है और यह पर्याय इतने समयकी है। ये दोनों बातें जिनकी दृष्टिमें नहीं हैं; बिल्कुल इससे उल्टा श्रद्धान है कि मरते होंगे दूसरे लोग। हम तो सदा रहेंगे। मोही जीवोंकी ऐसी प्रकृति होती है। दूसरोंका मरण देखकर तो निरख लेते हैं कि यह मर गया, अब यह असहाय रह गया। पर घरके ये जिन्दा रहे हुए पुरुष अब अनाथ हो गए, पर अपने बारेमें यह ख्याल नहीं करता कि मैं भी इस तरह गुजरूँगा या मेरे घरके लोग गुजर जायेंगे। मोही जीवोंको अपने बारेमें इस कालका ज्ञान नहीं है। और न यह ज्ञान है कि यह समय तो अनन्त काल तक चलेगा। इसी कारण इन मोही जीवोंका पोजीशन, कीर्ति

यश नाम मौज आदिक ऐबोंका लगाव हो गया है।

ज्ञानजलसे भावकलङ्कका प्रक्षालन—नामवरी, परिजन आदिके स्नेह, ये सब कलंक हैं, ये कलक धुलेंगे तो इस ज्ञानजलसे धुलेंगे। यह भावकलक है। कोई पौद्गलिक कलक लगा हो तो उन्हें किसी चीजसे धो डाला जाय, खूब जल डालकर मलमलकर धो डाला जाय, और जो कर्मकलंक पौद्गलिक कलंक लगा है वह यों नहीं लगा है क्योंकि आत्मा अमूर्त है, मूर्तमें मूर्त चिपकता है और उसे धोया जा सकता है, पर इस कर्मकलंक का चिपकाव कुछ और अनोखे ढगका है। वहां निमित्तनैमित्तिक भावोंके रूपमें चिपक हो गई है। यह चिपकाव बड़ा कठिन है। अन्य चिपकावसे विलक्षण है।

जैसे शरीरपर कमीज कोट आदिक पहिने हुए हैं तो यह चिपकाव तो झट अलग किया जा सकता है, पर भीतर भावमें जो स्त्री पुत्रका स्नेह बसा है और इस निमित्तनैमित्तिक भावमें आश्रयभावमें जो स्त्री पुत्रका चिपकाव लगा है यह चिपकाव इन कमीज कोट आदिकसे कठिन है। जहा जाय, वहीं चिपकाव है, कहीं चैन ही नहीं पड़ती। घरमें रहते हैं तो प्रेम अथवा कलहरूप में वह दु ख दे रहा है। छोड़कर जाते हैं तो अपनेको उन बिना अकेलासा समझकर वहा भी दु खी रहते हैं। कोट कमीजके चिपकाव को हटा देना सरल है, किन्तु स्त्री पुत्र वैभव परिजनका चिपकाव चिपक न होकर भी कितना कठिन है। इसी तरह आत्मा मूर्त नहीं है, और मूर्तमें मूर्तकी तरह कर्म पुद्गल का चिपकाव नहीं है। यदि होता यह ऐसा तो इसका धो देना भी आसान था, किन्तु यह चिपकाव तो निमित्तनैमित्तिक रूपमें बढ़ा है। यह भावकलंक यह कैसे धोया जायेगा? यह ज्ञानभावसे ही धोया जायेगा। निर्मल विकाररहित विशुद्ध अपने ही सत्त्वके कारण सहज जो चित्प्रकाशस्वरूप है, उसके ज्ञानसे उसके, उपयोगसे उसमें ज्ञानको समाया जानेकी स्थिति से धोया जा सकेगा। तो ये योगीश्वर यों ध्यान के प्रतापसे मोक्षश्रेणी में भी पहुच जाते हैं। श्रेणी तो अब भी हैं लेकिन जो एक प्रयोगात्मक श्रेणी जिसे क्षपकश्रेणीके रूपमें कहा उसपर भी वे अधिकार करते हैं, ऐसे योगीश्वर मुझे धर्म प्रदान करें। उनके स्मरणके प्रसादसे मुझे भी धर्मस्वरूप की प्राप्ति हो।

> गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
> सिसिरे बाहिरसयणा ते साहु वंदिमो णिच्चं ॥२॥

त्रिकालपरीषहविजयी साधुवोंका अभिवन्दन—लघुयोगभक्तिके प्रथम छंद में तीन ऋतुवोंके परीषहोंके विजयकी बात न अतिसक्षेपसे, न अतिविस्तार

से, किन्तु मध्यमपद्धतिसे बताया गया था। अब इस द्वितीय छंदमें तीन कालके परीषहोंका विजय अतिसंक्षेप रूपसे कहा जा रहा है। वे साधु जो ग्रीष्मकालमें पर्वतोंके शिखरपर स्थित हैं, जो वर्षाकालमें वृक्षके मूलमें अधिवसित हैं जो शीतकाल की रात्रिमे शयन करने वाले हैं उन साधुवों का हम नित्य वन्दन करते हैं। कितना संक्षेपमें और ऋतुओंके परीषहोंका कथन कर दिया गया है। ग्रीष्मकालमें लोगो को अपने घरमें भी चैन नहीं मिलती। घर तप जाता है तब फिर पर्वत शिखरके तपनेकी कहानी कौन कहे? किन्तु ये साधु अपने उस ज्ञानामृतके पानसे निरन्तर शीतल बने हुए साधु शीतकालमें गिरिशिखरपर अवस्थित हैं। तेज बरषात चल रही हो, उस समय वृक्षके नीचे ठहरना मैदानमें ठहरनेसे भी कठिन है। मैदानमें तो वर्षाकी नन्हीं नन्हीं बूँदे सहन हो सकती हैं पर वृक्षोंके मूलमें जो वृक्षों पत्तोंसे गिरने वाली मोटी मोटी बूँद हैं वे तो भारसहित इनपर गिरती हुई वेदनाका कारण बन जाती हैं किन्तु ये करुणामूर्ति योगीश्वर वृक्षके मूलमें इस कारण अवस्थित हो गए हैं वर्षाकालमें कि इस देहपर प्रासुक बिन्दुवोंका पतन न हो, वृक्षके पत्तोंपर गिरने वाली बूँदे प्रासुक मानी जाती हैं। ये करुणामूर्ति वर्षाकालके वृक्षके मूलमे अधिवसित रहते हैं और शीतकालमें रात्रिमें अत्यन्त अधिक शीत पड़ती है सो सभी जानते हैं। तो वे रात्रिमें शीतकालमें बाहरी मदानोंमें सोये होते हैं। सोयी हुई बातको यों कहा है कि यद्यपि वे अल्पकाल ही सोते है, एक करवट निद्रा लेते हैं पर शीतकालमें सोये हुएसे पड़कर ज्यादा ठंड लगती है और बैठ जाये आसन से अथवा कुकुरू तो वहाँ ठंड कम हो जाती है। तो शीतपरीषहविजय प्रसंग में कहा जा रहा है कि ये योगीश्वर शीतकालमें रात्रिमें बाह्यमैदानमें पडे रहते हैं। ऐसे तीनों कालके परीषहोंके विजयी और उस उस प्रकार अवस्थित होकर ध्यानमें तल्लीन होने वाले साधु योगी वंदनीय हैं, उनको हम नित्य वंदन करते हैं।

> गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
> पाणिपात्रपुटाहारास्ते याति परमा गतिम् ॥३॥

एकान्तवासी, करपात्राहारी योगियोंका स्तवन व मंगलवाद– अब यह योगभक्तिमें चल रही लघुयोगभक्तिका अन्तिम छन्द है। जो दिगम्बर साधु गिरिकी गुफावोंमें जंगलोंमें जो बसते हैं ऐसे पाणिपात्रपुटमें आहार लेने वाले दिगम्बर साधु उत्कृष्टगतिको प्राप्त होते हैं। ये दिगम्बर कहलाते हैं। दिशा ही जिनका अम्बर है, वस्त्र है, तो शरीर और यह दिशा इनके बीचमें कुछ आड़ नहीं है। जो शरीरसे लगा हो वही तो शरीरका वस्त्र है,